श्रीमद्‌—जयसेनाचार्यविरचित

श्रीप्रतिष्ठापाठ सटीक

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीमद्-आचार्यप्रवर वसुबिंदु-अपरनाम

जयसेनविरचित

प्रतिष्ठापाठ ।

भाषाटीका सहित

जिसको

शोलापुरनिवासी श्रेष्ठिवर्य दोशी हीराचंद नेमचंदने

अपने ज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थ

प्रकाशित किया ।

भाद्रपद श्रीवीरनिर्वाण, सं० २४५२.

प्रकाशक—
शेठ हीराचंद नेमचंद दोशी
मंगलवार पेठ, शोलापुर

मुद्रक—
श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ,
जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस
९ विश्वकोष लेन, बाघबाजार, कलकत्ता।

प्रस्तावना।

यह प्रतिष्ठापाठ भगवत् श्रीकुंदकुंदस्वामीके पट्टशिष्य श्रीमत् जयसेनाचार्यका बनाया हुवा है, भगवत्कुंदकुंदस्वामीने श्रीमत् जयसेनाचार्यको आज्ञा की कि—प्रतिष्ठापाठ बनाओ। उसपरसे श्रीमत् जयसेनाचार्यने यह प्रतिष्ठापाठ दो दिनमें बनाया जिससे भगवत्कुंदकुंद स्वामीने उनका नाम वसुबिंदु रखा, वसु माने आठकर्म, बिंदु माने नाश करनेवाला ऐसा वसुबिंदु नामका अर्थ है यह प्रतिष्ठापाठ बहुत प्राचीन है, इसमें शासन देवताका पूजन नहीं है, जिससे सब दर्शनीक श्रावकोंकू इस प्रतिष्ठापाठसेही मन्दिरप्रतिष्ठा, वेदीप्रतिष्ठा, मंडपप्रतिष्ठा करानी उचित होगी सबब कि दर्शनीक श्रावक शासनदेवताका पूजन कभी भी करता नहिं ऐसा पंडित आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृत ग्रंथमें लिखा है—

आपदाकुलितोपि दर्शनिकः तन्निवृत्यर्थम्। शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते पाक्षिकस्तु भजत्यपि॥

पंडित आशाधरजीने जो प्रतिष्ठासारोद्धार लिखा है सो पाक्षिकके वास्ते है जिससे उसमें शासन देवताका पूजन लिखा गया है। शासनदेवता कुदेव हैं। ऐसा पंडित आशाधरजी अपने अनगारधर्मामृत ग्रंथकी टीकामें लिखते हैं सो कुदेवताका पूजन दर्शनीक श्रावक कैसे करेगा? नहि करेगा। इस प्रतिष्ठापाठके आधारसे प्रतिष्ठा हुई हैं सो नीचे लिखे मुजब—

१ खुरजामें पंडित शेठ मेवारामजीने कराई।

२ इन्दोरमें संवत १९७० में ब्रह्मचारी शीलचंदजी जयपुरवाले और पंडित हजारीमलजी वडनगरवालेने कराई।

३ भिंड जिल्हा ग्वालियरमें पंडित शीलचंदजी ब्रह्मचारीजीने तथा और किसी पंडितने कराई।

४ इन्दोर स्टेटके खातेगांवमें पंडित हजारीलालजीने संवत् १९७९ में कराई।

५ दो प्रतिष्ठा संवत् १९७९ में ललितपुरमें पंडित सुंदरलालजी वसवावालोंने और पंडित नन्हेलालजी और पंडित मोतीलालजी बुन्देलखंडवालोंने कराई। संवत् १९७९ में दो प्रतिष्ठा हुई।

६ एक प्रतिष्ठा सुजानगढ़में पंडित धन्नालालजी केकड़ीवालोंने कराई।

७ एक प्रतिष्ठा दिल्लीमें पंडित सुन्दरलालजी और नन्हेलालजीने कराई।

८ संवत् १९८० में वेसवा जिल्हा हाथरसमें पंडित सुन्दरलालजीने कराई।

९ संवत् १९८१ में व्यावर नयानगर जिल्हा अजमेरमें पंडित सुन्दरलालजी और पंडित पन्नालाल गोधाजीने कराई।

१० इस साल नवा नगर मारवाड़में फालगुन सुदी ५ को पंडित पन्नालालजी केकड़ी वालोंने कराई।

और भी कई जगे हुई है सो यह प्रतिष्ठापाठ बहुत प्रामाणिक ग्रंथ है इसको कोई कोई शासन देवताभक्त पंडितलोक नांव रखते हैं सो उनकी गलती है, शुद्धाम्नायवाले दर्शनिक श्रावकको तो इसही प्रतिष्ठापाठके आधारसे प्रतिष्ठा करानी चाहिये।

— हिराचंद नेमचंद सोलापुर।

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीमदाचार्यवसुविंदु-अपरनाम जयसेनस्वामिविरचित

प्रतिष्ठापाठः ।

हिंदीवचनिकया संकलितः ।

भाषाकारका मंगलाचरण ।

दोहा ।

ऋषभ आदि चउवीस मम, मंगल करहु जिनेश । जास चरण कज रज लगत, जाय विघ्न अरु क्लेश ॥ १ ॥
पूर्वाचार्यपरंपरा जयवंतो जगमाहिं । वनौं ताकी शरण गहि भवभय नाहिं रहाहि ॥ २ ॥
स्याद्वादादि पतीनिकों वाक्-भानूदय होय । मिथ्यामत तम लोकमें, नहि प्रसरै जगमोह ॥ ३ ॥

अब श्री ग्रन्थकर्ता वसुविंदु नामाचार्य द्वितीय नाम जयसेन स्वामी इष्ट विशिष्ट आदीश्वर जिनकूं नमस्कार करै हैं ।

शार्दूलविक्रीडितं छंदः।

स्फूर्जत्केवलबोधसिंधुविसरे यद् विंदुवद् भासते, यस्य श्रीपरमेष्ठिनो जिनपतेर्नाभेयसूनोस्त्रयं।
लोकानां सकलासुभृत्करुणया धर्मो द्विधा द्योतितस्तस्मै श्रीमदनंतचिन्मयकलासंबिभ्रते स्तान्नमः॥ १॥

अर्थ—जा श्रीयुक्त परमेष्ठी नाभिपुत्र जिनेन्द्रका दैदीप्यमान केवलज्ञानरूप समुद्रका फैलावमें तीनलोक विंदु समान भासै है। ऐसा समस्त प्राणीनिकी करुणाकरि द्विप्रकार मुनि श्रावकरूप धर्मको उद्योत कियो सो श्रीमान् अनन्त ज्ञान दर्शन सुखकलाने धारण कर्ताके अर्थि नमस्कार होहु॥ १॥ तथा—

सर्वानर्थ्यगुणार्णवान् जिनवरान् स्वर्मोक्षसिद्धिप्रदान् भव्यानां हितकाम्यया प्रतिहतैकांतप्रवादामयान्।
धर्मं तीर्थममुत्र दानयजनत्यागप्रतिष्ठापनाशुद्धयुद्बोधविधानकैर्बहुविधैर्यैरुक्तमानौमि तान्॥ २॥

अर्थ—अजित आदि समस्त प्रार्थनीक गुणके समुद्र अर स्वर्ग मोक्षकी सिद्धिके देनेवाले, अर भव्य जीवनिकूं हितकी कामनाकरि दूर कियो है एकांत हठरूप योग जिनने ऐसे जिनेन्द्रकूं नमस्कार करूं हूं अर तिन जिनेश्वर इसलोकमें दान यजन त्याग भाव अर प्रतिष्ठाकी शुद्धि कूं प्रगट करनेवाले बहुप्रकार विधान करि धर्मतीर्थ जो है सो प्रगट कियौ॥ २॥

श्रीमद्वीरजिनेंद्रभास्करकराः स्याद्वादमुद्रांकिता जीयासुर्नयभेदभावनपरा अज्ञानहृद्ध्वांतहाः।
चार्वाकादिमतानि यत्र नितरां खद्योतपद्योपमान्यासन्ते खलु नित्यमात्मधिषणामार्गास्तु संचारिताम्॥ ३॥

अर्थ—तथा श्रीमान स्याद्वाद मुद्राकरि अंकित श्री वीरजिनेन्द्ररूप सूर्यके किरण नयभेदके भावनमें तत्पर अज्ञानरूपी अन्धकार दूर करने वाले जे हैं ते जयवंते वर्तौ जहां वौद्ध चार्वाकादिकके मिथ्या मतरूप खद्योत ज्यों आगिया नाम पशु (जंतु) विशेषका मार्ग की उपमानैं प्राप्त होय हैं और निश्चय करि नित्य ही आत्मीक ज्ञानके मार्ग सम्यक् प्रकाश भावने प्राप्त होय हैं॥ ३॥

द्रव्यभावमलनाशनतो ये, स्वात्मबुद्धिमवलंब्य निस्तुषाम्।
केवलावगममाप्य चिन्मयं ज्योतिरभ्ययुरीड्यते मया॥ ४॥

अर्थ—जे द्रव्य कर्म जे ज्ञानावरणादि प्रकृति अर भावमल जे ज्ञानावरणादि प्रकृति योग्य रागद्वेष कारण इन दोन्यूंका अत्यंत नाशतैं

निःकलंक निरावण निज ज्ञानने अवलंबन करि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय सव कर्मका अभावत चिन्मात्र ज्योतिने प्राप्त हुए हैं ते सिद्ध परमेष्ठी मैं करि पूजिये हैं अर्थात् मैं उनकी स्तुति करूं हूं ॥ ४ ॥

रथोद्धता छंदः ।

आजवंजवमुदीर्णपातकज्वालमालविकरालमुत्पथं ।
देशनातिशयसौधवर्षणाच्छांतिमीयुरनघा दिगंबराः ॥ ५ ॥

स्रग्धरावृत्तम् ।

शिक्षादीक्षाविधानात्सकलमुनिगणे नेतृतां संविधाय
कृत्वोदासीनतां ये निजपरमहितानंदने संयुजानाः ।
आचार्या आर्यभव्यैः कृतचरणसपर्याः स्तुता विघ्नशांत्यै
भूयासुर्मारदर्पप्रकदननिपुणाः शास्त्रसम्पत्तिमूलाः ॥ ६ ॥

अर्थ—उत्कट पापकी ज्वाला समूहकरि विकराल उन्मार्ग रूप आजव जव जो आवागमनरूप संसार जो है ताहि उपदेशका अतिशयरूप अमृतसंबंधी वर्षाकरि शांतिभावनै प्राप्त किये ऐसे निःपाप दिगम्बर जे हैं ते शिक्षा दीक्षाका विधानतैं समस्त मुनि संघमें निर्यापकताने प्राप्त होय वैराग्यरूप साम्यभाव करि आत्महितका आनन्दनै जोडैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी जे हैं ते शोभित भव्यनिकरि किया है पूजन स्तुति जिनका ऐसे होत संते मेरे विघ्नकी शांतिके अर्थि होऊ अर कामदेवके विकारका निर्मूलनमें निपुण और शास्त्रनिकी निजसंपत्तिके मूलभूत ॥ ५—६ ॥ ऐसैं ये दोन्यू श्लोक युग्म हैं ।

बसंततिलका छंदः ।

ये पाठका निखिलमागममर्हसाधून् संपाठयंति बहुवत्सलताप्रवृत्त्यै ।
ते द्वादशांगजलधिप्रकरार्थरत्नान्यापादयंतु हृदि मे मतिभूषणार्थं ॥ ७ ॥

अर्थ—जे उपाध्याय परमेष्ठी समस्त आगम कहिये जिनसूत्र जो है ताहि बहु वात्सल्यताकी प्रवृत्तिके अर्थि साधु जे हैं तिनने पढावैं हैं ते मेरे हृदयविषैं ज्ञानकी संपत्तिके निमित्त द्वादशांग समुद्रका प्रकर्ष अर्थरूप रत्न जे हैं तिननें प्राप्त करो अर्थात् देवौ ॥ ७ ॥

ऋद्धिप्रवृद्धिविहितात्मगुणप्रकर्षा मुक्तावलीप्रभृतिघोरतपोऽभियुक्ताः ।
ते साधवः शमदयादमधैर्यशीलाः स्तुत्या भवंतु दुरितक्षपणाक्षमायै ॥ ८ ॥

अर्थ—अर साधु परमेष्ठी है ते नानाप्रकार ऋद्धिनिकी वृद्धिकरि कीये है आत्मगुणका प्रकर्ष जिनने तथा मुक्तावलि तथा रत्नावलि आदि घोर तप करि युक्त ऐसे समभाव दया इंद्रियदमन और धैर्य स्वभाववान मेरा पापका विनाशरूप क्षमाके अर्थि स्तुति करने योग्य होऊ ॥ ८ ॥

चैत्यालयानां मनसा विचिंत्य माहात्म्यमारात् तदनूनभक्त्या ।
स्वांतप्रकाशं प्रणिपत्य मूर्ध्ना पीठस्थलीं संप्रति पूजयामि ॥ ९ ॥

अर्थ-समस्त अकृत्रिम कृत्रिम चैत्यालयनिकौ माहात्म्य शीघ्र बहु भक्ति करि मनमें आदरपूर्वक चितवनकर अपना मनमे प्रकाशरूप मस्तक करि नमनकरि तिन चैत्यालयपतिकी पीठभूमि जो ताहि प्रत्यक्ष पूजूं हूं ॥ ९ ॥

शिखरिणी छंदः ।

जिनानां विंबानि प्रकटितपराम्नायमहितैः कृतान्यकॢप्तानि त्रिभुवनजनानंदकरणात् ।
प्रमह्यानि प्रोच्चैर्हरिमनुजचक्रेश्वरगणैर्नमस्यामो भक्त्या समवसरणस्थेश्वरधिया ॥ १० ॥

अर्थ—उत्कृष्ट प्रगट किये हैं उत्तम आम्नाय जिननें ऐसे महाव्रतीनिकरि प्रशंसा करनेयोग्य ऐसे श्रावकवरनिकरि किये अथवा अकृत्रिम जिनेन्द्रदेवनिका विंब कहिये प्रतिमा तीन जगतका प्राणीनके आनन्दका करवातैं प्राचीन इन्द्र नरेंद्र चक्रवर्ति आदि उत्तम गणकरि पूजित जे हैं तिनमें समवशरणमें विराजमान परमेष्ठी ही है ऐसी बुद्धि करि भक्तिभावधरि नमस्कार करूं हूं ॥ १० ॥

द्रुतविलंबित छंदः ।

विशदबुद्धिरियं गुरुभक्तितो भवतु मे श्रुतवारिधिपारदा ।
भगवती परमेश्वरगीर्यया वरविधानविधौ कुशला भवेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—श्री गुरु कुंदकुंदादिकी भक्ति करि या शास्त्रसमुद्रका पार देनेवारी भगवती दिव्यवाणी निर्मल बुद्धिरूप करौ या करि प अर्हंतकी वाणी शुभ विधानका दानमें निपुण होय ॥ ११ ॥

उपजाति छंदः।

काले गृहस्था विकला गृहादिकार्येष्वनुष्ठानमुपाचरंति।
अल्पावबोधद्रविणप्रभावा न धर्मकार्ये बहुधा यतंते ॥ १२ ॥

अर्थ—इस पंचमकालमें गृहस्थ हैं ते अपना गृह पुत्र कलत्र आदि कार्य विषैं विकल हुवे संते आत्मिक कार्यका अनुष्ठान कहिये निज कृत्यपणाने आचरन करै है अर अल्पज्ञान और अल्प द्रव्यका प्रभाव युक्त भये इस ही हेतु धर्मसंबंधी कार्यमें बहुधा यत्न नहीं करै हैं ॥ १२ ॥

प्राप्यापि केचिद्विभवं तदीयसंरक्षणोपार्जनदत्तचित्ताः।
स्वायुःसमाप्तिं किल तैलभावाभावाद्यथा दीपगणा लभंते ॥ १३ ॥

अर्थ—अर कितनेक पंचमकालका गृहस्थ धन वै भवने प्राप्त हो करि हू उसधनका संरक्षण और उपार्जनमें दिया है चित्त जिनने ऐसे हुए संते निश्चय अपनी आयुकी समाप्तिहीनें जैसे दीपसमूह तेलका अभावतैं प्राप्त होय है तैसैं प्राप्त होय हैं ॥ १३ ॥

ये नश्वरं वैभवमाकलय्य क्षेत्रेषु सप्तस्वतिवापयंति।
तैर्लब्धमीशत्वफलं मनुष्यभवस्य सारं सुगृहीतुकामैः ॥ १४ ॥

अर्थ—अर जिनने इस वैभवकूं विनाशीक जान्या ते इस वैभवकूं सप्त क्षेत्रनिमें कि जिन मन्दिर, जिनविंब, जिनप्रतिमा प्रतिष्ठा, यात्रा दान, पूजा, जीर्णोद्धारमें अतिवापन करै हैं कि वोवै हैं तिनने मनुष्य भवका सार ग्रहण करि अपना ईशत्व फलनें पायो ॥ १४ ॥

येनार्थसम्पत्तिमता जिनेन्द्रबिंबं प्रतिष्ठापितमात्मकृत्यैः।
तेनाधिकल्पं यशसापि पुण्यप्रभूतिना व्याप्तमशेषविश्वं ॥ १५ ॥

अर्थ—जिस प्राणी द्रव्य संपत्तिवानने आत्मकल्याणनिमित्त जिनेन्द्रको एक हू बिंब प्रतिष्ठापन किया ता प्राणीने कल्पपर्यंत यश करि पुण्य संपदाकरि समस्त जगत् व्याप्त किया ॥ १५ ॥

वदरीफलमात्रबिंबतो हृदये पूर्वमनाप्तमाप्यते।

भवकोटिसमुत्थमेनसां निचयं स्फेटदमेयदर्शनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—ये पुरुष वदरीफलमात्र जिनविंवकाहू प्रतिष्ठापन करै है ते पूर्व हृदयमें नहीं प्राप्त भया औसा अर कोटि भवसे उत्थित भया औसा पापका समूहने स्फेटन करनेवाला अनुपम सम्यग्दर्शनको प्राप्त हूजिये है । भावार्थ—वदरीफल मात्र जिनविंवकी शांत मुद्राका ध्यान करि सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है ॥ १६ ॥

तीर्थादौ भरतेश्वरेण भगवत्सन्देशनालब्धितो गार्हस्थ्ये रसखंडमंडलघनैरष्टापदे निर्मितः ।
चैत्यानां निवहस्तु तत्र जिनराड्विंबानि संस्थापितान्येवं भूतभाविष्यदैहिककलां पूज्येश्वराणां पृथक् ॥ १७ ॥

अर्थ—प्रथम चक्रवर्ती जो है तानै तीर्थकी आदिमें केवलज्ञानरूप अतिशय तीर्थमें गृहस्थाश्रम दशामें श्रीभगवान ऋषभेश्वरका उपदेशका लाभतैं पटखंड मंडलका अतुल धनकरि कैलाशगिरि मध्ये चैत्यनिका समूह निर्मापण किया अर वहां जिनेन्द्र प्रतिबिंब स्थापन किया औसे भूत वर्तमान भविष्य अर्हंत तीर्थंकरोंका न्यारा न्यारा विंव अथवा चैत्यालय स्थापित कीया ॥ १७ ॥

तीर्थेऽजितेशः सगरादिभिस्तथा कृता प्रतिष्ठा जिनसद्मनां शुभा ।
अनादिसन्तानभवा स्वरूपसत्प्रतिक्रियालम्भनभावतः स्मृता ॥ १८ ॥

अर्थ—अर दूसरा श्री अजिततीर्थंकरका अवसरमें सगरआदि महाभव्योत्तमने जिनमंदिरनिकी शुभ प्रतिष्ठा की औसैं अनादिकालका संतानसै उत्पन्न हुई आत्मीक स्वरूपको समीचीन प्राप्ति करानेवारी भावनिकरि स्मरण कियी जानो ॥ १८ ॥

साक्षाच्चिदानंदघनाभिरामे या देवबुद्धिः किल तत्स्वरूपं ।
दृष्ट्वा तदीयस्मरणं न किं स्यादेवं तयोर्वै चिदचित्प्रभेदः ॥ १९ ॥

अर्थ—अब इहां साक्षात् तीर्थंकरका दर्शनमें अर धातु पाषाणमय ताका विंवमें समानता दिखावै हैं। निश्चयकरि साक्षात् चिदानंद घन तीर्थंकरका शरीरमें देवपनाकी बुद्धि है सो ताका स्वरूप जो प्रतिविंवकूं देखिकरि ताका स्मरण नाहीं होय कहा ? अर्थात् होय ही होय । याप्रकार तिन दोऊमें चेतन अचेतनको भेद है। अर्थात् अन्य भेद नाहीं ॥ १९ ॥

धन्याः पूर्वजनुःप्रवाहमहितोत्साहा धराभूषणा मानौनत्यदयादमादिगुणिनः पुण्यानुबंधोदयाः ।

भोक्तारः कमलाचलार्थवनिताभोगस्य मत्युन्नताः शक्तास्ते हि जिनेन्द्रविंबभवनानुष्ठापने नेतरे ॥ २० ॥

अर्थ—अर जे धन्य पुरुष पूर्व जन्मका प्रवाह करि उन्नत भया उत्साह जिनकैं अर पृथिवीका भूषणरूप अर मान उन्नतिता दया दम गुणका धारक अर पुण्यानुबन्धका उदयकूं धरनेवारे अर लक्ष्मीरूप चंचल वारविलासनीको भोगनेवारे अर ऊंची बुद्धिका पात्र हैं ते श्री जिनेन्द्रका विंब वा मंदिरका स्थितिकरणमें समर्थ होय हैं। अन्य वराक रंक नहीं होय है ॥ २० ॥

युतिरयुतिरिति स्याद्विप्रकारोपदेशाद् विकलसकलधर्माध्यासतो मोक्षमार्गे।

तदिह मुनिवराणां वीतरागत्वभावस्तदितरभविकानां दत्तिरिज्या प्रधाना ॥ २१ ॥

अर्थ—श्री जिनेन्द्रदेवने मोक्षमार्ग निमित्त विकलधर्म श्रावकधर्म अरु सकलधर्म मुनिधर्म इनका अध्यास कहिये आश्रयतैं दोय प्रकार उपदेश हेतुतैं युति कहिये योग अर्थात् सरागता अर अयुति कहिये अयोग अर्थात् वीतरागता असैं होय है। ता कारण इहां मुनिवरनके औदासीन्य भाव प्रधान है, और तिनसे इतर श्रावकनके दान अरु पूजारूप धर्म प्रधान है ॥ २१ ॥

अतो महाभाग्यवतां धनसार्थक्यहेतवे।

नान्योपायो गृहस्थानां चैत्यचैत्यालयाद्विना ॥ २२ ॥

इति जिनबिंबप्रतिष्ठासमर्थनम्।

अर्थ—या कारणतैं महाभाग्यवान गृहस्थकैं धनलाभका सार्थकताहेतु चैत्य जे जिनविम्ब अरु चैत्यालयका निर्मापण विना अन्य उपाय नाहीं है ॥ २२ ॥

ऐसैं जिनविंबप्रतिष्ठाका समर्थन किया।

अनंतकालप्रसरादिदानींतनावसर्पिण्यवभासमानः।

आद्यो युगादौ पुरुरीशितायं दयानिधानो वृषमादिदेश ॥ २३ ॥

अर्थ—अनंतकालका विस्तारत इदानींतन कहिये इ अवसर वर्तमान जो अवसर्पिणीकाल तामें आभासमान ऐसा आदिजिन युगकी आदिमें सर्वेश्वर दयालु है सो धर्मोपदेशतौ हूवौ ॥ २३ ॥

तं विश्वदृश्वांतिमतीर्थनाथश्चराचरज्ञानविलोकितार्थः ।

श्रीगोतमाख्यं गणिनं सभायामुद्दिष्टवान् सप्तसमृद्धिपराग्यं ॥ २४ ॥

अर्थ—विश्वकूं देखनेवाला चराचर ज्ञानकर विलोकित किया है पदार्थ जाने ऐसा अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्धमाननामा उस धर्मकूं सप्त ऋद्धिसमृद्ध गोतम नायक गणधरनें उपदेश करता भया ॥ २४ ॥

तेनातिकारुण्यरसप्रयोगात्तं द्वादशांगेन परा मुनींद्राः ।

पदार्थसार्थं विकसय्य तत्त्वप्रकाशमात्रं सहसोपदिष्टाः ॥ २५ ॥

अर्थ—ता समय श्रीगौतम स्वामीने अत्यंत करुणारसके योगतैं ता उपदेशकूं द्वादशांगरूप रचनाकरि अपर मुनींद्र जे हैं ते सहसा ही पदार्थ समूहने प्रकाशकरि तत्त्वमात्र उपदिष्ट किये ॥ २५ ॥

ततः प्रभृत्यद्यगुरुप्रवाहपरम्पराप्राप्तममुं यथार्थं ।

श्रीकुन्दकुन्दो यशसा चरित्रवृत्तेन कुन्दो विभरांबभूव ॥ २६ ॥

अर्थ—ताके आगे अवार गुरुपरंपरा करि प्राप्त भया अर्थकूं यथार्थ यश अरु चारित्र धारणकरि उज्वल कुंदकुंद नायक श्रीगुरु धारण करता भया ॥ २६ ॥

॰ चतुर्थकालस्य सपक्षनागप्रमाणमासे त्रिकवर्षशेषे ।

श्रीवीरनाथः शिवमाप तस्मादनु त्रयं केवलिनां बभाषे ॥ २७ ॥

अर्थ—इस अवसर्पिणीका चौथाकालका साढा आठ महिना अरु तीनवर्ष बाकी रहे तदि श्रीवीर जिन मुक्तिकूं प्राप्त भये ता पीछे तीन केवली प्रकाशमान रहे ॥ २७ ॥

श्रीगोतमश्चापि सुधर्मनामा जम्बूमुनीशस्तदिमे द्विषष्टिः ।

सम्वत्सरांते परतो निवब्रुरतः पर केवलिनां समाप्तिः ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीगौतम स्वामी १ सुधर्मस्वामी २ जंबूस्वामी ३ ऐसें ये तीन क्रमतैं वासठिवर्ष काल पर्यंतमें निर्वाण गये । या पीछै केवलीपदकी समाप्ति होती भयी ॥ २८ ॥

ततः परं विष्णुसुनंदिमित्रापराजिगोवर्धनभद्रवाहाः ।

इमे च पञ्च श्रुतकेवलांका बभूवुरिष्टाः शतवर्षकाले ॥ २९ ॥

अथ—ता परैं विष्णुनामा १, नंदिमित्र २, अपराजित ३, गोवर्धन ४, भद्रबाहु ५, ऐसैं पांच ये श्रुतकेवली सौ वर्ष पर्यंत अनुक्रमतैं इष्ट होते भये ॥ २९ ॥

विशाखप्रोष्ठिलनक्षत्रजयसेनाहिसेनकाः । सिद्धार्थो धृतिषेणश्च विजयो बुद्धिमांस्तथा ॥ ३० ॥

गङ्गासेनो बुद्धिसेन इमे पूर्वावधारिणः । शतं त्र्यशीतिसहितं कालमीयुः सुदेशने ॥ ३१ ॥

अर्थ—तातैं आगे विशाखाचार्य १ प्रोष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजयसेन, ८ बुद्धिमान ९ गङ्गसेन १० और बुद्धिसेन ११ ऐसे ये ग्यारामुनि पूर्वके वेत्ता एकसौ तियासी वर्ष पर्यंत उपदेशमें व्यतीत करते भये ॥ ३०–३१ ॥

नक्षत्रो जयपालश्च पांडुध्रुवसुकंशकाः ।

सविंशं द्विशतं वर्षं रुद्रसंख्यावधारिणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुव, कंसाचार्य ये पांच मुनि दोयसे बीसवर्ष पर्यंत ग्यारा अंगधारी होते भये ॥ ३२ ॥

सुभद्रश्च यशोभद्रो भद्रबाहुर्महायशाः । लोहाचार्य इमे पञ्च प्रथमांगप्रवादिनः ॥ ३३ ॥

शतमष्टादशयुतं व्यतीयुस्तु दिगम्बराः । षट्शतं सत्र्यशीत्यग्रं समाः पूर्वांगधारिणः ॥ ३४ ॥

अर्थ—सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश और लोहाचार्य ये पांच मुनि पहिला अंगधारी एकसौ अष्टादशवर्ष पर्यंत दिगम्बर मुनि काल [illegible]ीत करते भये ऐसैं छहसौ तियासीवर्ष पर्यंत अंगपूर्वका धारी हुआ ॥ ३३–३४ ॥

अथ—अनंतकालका विस्तारत इदानींतन कहिये इ अवसर वर्तमान जो अवसर्पिणीकाल तामें आभासमान ऐसा आदिजिन युगकी आदिमें सर्वेश्वर दयालु है सो धर्मोपदेशतौ हुवौ ॥ २३ ॥

तं विश्वदृश्वांतिमतीर्थनाथश्चराचरज्ञानविलोकितार्थः ।
श्रीगोतमाख्यं गणिनं सभायामुद्दिष्टवान् सप्तसमृद्धिपूर्णं ॥ २४ ॥

अर्थ—विश्वकूं देखनेवाला चराचर ज्ञानकर विलोकित किया है पदार्थ जाने ऐसा अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्धमाननामा उस धर्मकूं सप्त ऋद्धिसमृद्ध गोतम नायक गणधरनें उपदेश करता भया ॥ २४ ॥

तेनातिकारुण्यरसप्रयोगात्तं द्वादशांगेन परा मुनींद्राः ।
पदार्थसार्थं विकसय्य तत्त्वप्रकाशमालं सहसोपदिष्टाः ॥ २५ ॥

अर्थ—ता समय श्रीगौतम स्वामीने अत्यंत करुणारसके योगतें ता उपदेशकूं द्वादशांगरूप रचनाकरि अपर मुनींद्र जे हैं ते सहसा ही पदार्थ समूहने प्रकाशकरि तत्त्वमात्र उपदिष्ट किये ॥ २५ ॥

ततः प्रभृत्यग्र्यगुरुप्रवाहपरम्पराप्राप्तममुं यथार्थं ।
श्रीकुन्दकुन्दो यशसा चरित्रवृत्तेन कुन्दो विभरांबभूव ॥ २६ ॥

अर्थ—ताके आगे अवार गुरुपरंपरा करि प्राप्त भया अर्थकूं यथार्थ यश अरु चारित्र धारणाकरि उज्वल कुंदकुंद नायक श्रीगुरु धारण करता भया ॥ २६ ॥

चतुर्थकालस्य सपक्षनागप्रमाणमासे त्रिकवर्षशेषे ।
श्रीवीरनाथः शिवमाप तस्मादनु त्रयं केवलिनां बभाषे ॥ २७ ॥

अर्थ—इस अवसर्पिणीका चौथाकालका साढा आठ महिना अरु तीनवर्ष बाकी रहे तदि श्रीवीर जिन मुक्तिकूं प्राप्त भये ता पीछे तीन केवली प्रकाशमान रहे ॥ २७ ॥

श्रीगोतमश्चापि सुधर्मनामा जम्बूमुनीशस्तादिमे द्विषष्टिः ।

सम्वत्सरांते परतो निव्रुरतः परं केवलिनां समाप्तिः ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीगौतम स्वामी १ सुधर्मस्वामी २ जंबूस्वामी ३ ऐसें ये तीन क्रमतैं वासठिवर्ष काल पर्यंतमें निर्वाण गये । या पीछै केवलीपदकी समाप्ति होती भयी ॥ २८ ॥

ततः परं विष्णुसुनंदिमिलापराजिगोवर्धनभद्रवाहाः ।

इमे च पञ्च श्रुतकेवलांका बभूवुरिष्टाः शतवर्षकाले ॥ २९ ॥

अथ—ता परैं विष्णुनामा १, नंदिमित्र २, अपराजित ३, गोवर्धन ४, भद्रवाहु ५, ऐसैं पांच ये श्रुतकेवली सौ वर्ष पर्यंत अनुक्रमतैं इष्ट होते भये ॥ २९ ॥

विशाखप्रोष्ठिलनक्षत्रजयसेनाहिसेनकाः । सिद्धार्थो धृतिषेणश्च विजयो बुद्धिमांस्तथा ॥ ३० ॥

गङ्गासेनो बुद्धिसेन इमे पूर्वावधारिणः । शतं त्र्यशीतिसहितं कालमीयुः सुदेशने ॥ ३१ ॥

अर्थ—तातैं आगे विशाखाचार्य १ प्रोष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजयसेन ८ बुद्धिमान ९ गङ्गसेन १० और बुद्धिसेन ११ ऐसे ये ग्यारामुनि पूर्वके वेत्ता एकसौ तियासी वर्ष पर्यंत उपदेशमें व्यतीत करते भये ॥ ३०–३१ ॥

नक्षत्रो जयपालश्च पांडुध्रुवसुकंशकाः ।

सविंशं द्विशतं वर्षं रुद्रसंख्यावधारिणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुव, कंसाचार्य ये पांच मुनि दोयसे वीसवर्ष पर्यंत ग्यारा अंगधारी होते भये ॥ ३२ ॥

सुभद्रश्च यशोभद्रो भद्रबाहुर्महायशाः । लोहाचार्य इमे पञ्च प्रथमांगप्रवादिनः ॥ ३३ ॥

शतमष्टादशयुतं व्यतीयुस्तु दिगम्बराः । षट्शतं सत्र्यशीत्यग्रं समाः पूर्वांगधारिणः ॥ ३४ ॥

अर्थ—सुभद्र, यशोभद्र, भद्रवाहु, महायश और लोहाचार्य ये पांच मुनि पहिला अंगधारी एकसौ अष्टादशवर्ष पर्यंत दिगम्बर मुनि काल व्यतीत करते भये ऐसैं छहसौ तियासीवर्ष पर्यंत अंगपूर्वका धारी हुआ ॥ ३३–३४ ॥

देशकालवयोवीर्यज्ञानहानेः श्रुताम्बुधेः । लवमात्रं विनिष्कृष्य ग्रंथेषु विनिबद्धवान् ॥ ३५ ॥

कुन्दकुन्दो वीतरागो मुनिर्विध्वस्तकल्मषः । मूलशाखावलम्बेन मूलसंघं बभार सः ॥ ३६ ॥

अर्थ—देश अवस्था वीर्य ज्ञान इनकी हानितें श्रुत समुद्रकौ लवमात्र निष्कर्ष करि ग्रन्थ रचनामें निबंध करते हुये सो वीतराग पापपंक-रहित कुन्दकुन्दाचार्य मूल शाखाका अवलम्बन करि मूल संघने धारण करता भयो ॥ ३५-३६ ॥

एवं परम्परायाताव्यावच्छिन्ना गुरुक्रमात् । जिनेन्द्रीयप्रतिष्ठायाः कृतिः संवर्ण्यते लघु ॥ ३७ ॥

इति ग्रंथपीठिकावर्णनं ।

अर्थ—ऐसैं परंपरासे आयो अव्यवच्छिन्न गुरु परिपाटीतैं श्री जिनेन्द्र बिंबकी प्रतिष्ठाकी कृति लघुरूप वर्णन करिये है ॥ ३७ ॥

ऐसैं ग्रन्थकी समूलता दिखाइ पीठिका वर्णन कीई ।

अब इस प्रतिष्ठाकी सन्दर्भ शुद्धि अर्थात् अनुक्रम शुद्धि दिखाइये है सो ऐसैं है—

उपोद्घातादिसम्बन्धः प्रतिष्ठालक्षणं तथा । प्रतिष्ठेयपरिप्राप्तिः प्रतिष्ठापकलक्षणं ॥ ३८ ॥

प्रतिष्ठाफलमाचार्यप्रतिष्ठेंद्रादिकल्पनं । सामिग्रीद्रव्यक्षेत्रादियोग्यताप्रतिपादनम् ॥ ३९ ॥

सुभिक्षराजसम्पत्तिस्ततो मंदिरनिर्मितिः । तन्मुहूर्त्तं तु विंबादिनिर्माणं तन्मुहूर्त्तकं ॥ ४० ॥

प्रतिष्ठाया मुहूर्त्तानि तन्महोद्योग एव च । शकुनादिपरिक्षेपः क्षेत्रशुद्धिरुदाहृता ॥ ४१ ॥

स्थंडिलेक्षणशुद्धिश्च गुर्वाज्ञालंभनं तथा । ततो नांदीविधानं च ततो वेदीपरिक्रिया ॥ ४२ ॥

ध्वजसंस्था मंडपस्य तच्छेषविधिकल्पनं । चूर्णप्रक्लृप्तिः केतूनां स्थापनं विंबसंस्थितिः ॥ ४३ ॥

होमकुंडानि भूपालगृहं मेरुविकल्पनं । शकलीकरणं वर्णमातृकान्यसनग्रहौ ॥ ४४ ॥

अनादिमंत्रोपास्तिश्च यंत्रमंत्राधिकारिता । दीक्षाचिन्हं ततो यागमंडलोद्धरणार्चने ॥ ४५ ॥

शचीमातृव्यवस्थानं तदुपासनकल्पनं । रत्नवृष्टिः पञ्चमहः स्तुतिः स्वप्नावलोकनं ॥ ४६ ॥
श्याद्युपास्तिर्मेरुयानाभिषवौ च जयस्तुतिः । क्रियाकरसमा शुद्धिर्नृत्यं राज्यपरिग्रहः ॥ ४७ ॥
लौकांतिकस्तुतिस्तत्र भावना वननिर्गमः । संस्कारमालातपसी अधिवासनसंस्कृतिः ॥ ४८ ॥
स्वस्त्ययनानंतरं च श्रीमुखोद्घाटसंविधिः । नयनोन्मीलनं सूरिमंत्रार्पणमपि स्मृतं ॥ ४६ ॥
समवसृत्यर्चनं च विहारो रथयापनं । ग्रंथमंगलमित्येतदधिकारैकषष्टिकं ॥ ५० ॥
संक्षेपप्रतिपत्तॄणां क्रम एव मयोदितः । क्रियाविशालाद्विज्ञेयो निस्तरोऽस्य क्रियाविधेः ॥ ५१ ॥

इति कर्तव्यसूची ।

अर्थ—प्रथम उपोद्धात कहिये पीठका १ प्रतिष्ठा लक्षण २ प्रतिष्ठा होने योग्य बिंबकी प्राप्ति ३ प्रतिष्ठा करानेवालाका लक्षण ४ प्रतिष्ठाका फल ५ आचार्यका स्वरूप ६ प्रतिष्ठाका इंद्रकी कल्पना ७ सामिग्रीकी शुद्धि ८ द्रव्यक्षेत्रादिकी योग्यताका प्रतिपादन ९ सुभिक्ष १० राज्यकी सहायता ११ पीछै मन्दिर निर्माण ताकौ मुहूर्त १२ बिंब यंत्र आदिकौ निर्माण ताकौ मुहूर्त १३ प्रतिष्ठाका मुहूर्त ताका उद्योग १४ शकुन आदिका ग्रहण १५ क्षेत्रकी शुद्धि १६ स्थण्डिल जो चबूतरा ताका निर्माण अरु रचना शुद्धि १७ गुरुकी आज्ञाका ग्रहण १८ पीछै नांदीविधान १९ पीछै वेदीकी रचना २० ध्वजास्थापन २१ मंडपस्थापन २२ शेपविधान २३ चूर्ण कल्पना २४ छोटी ध्वजाका स्थापन २५ बिंबका स्थापन २६ होमकुण्ड स्थापन २७ राजाका भवनस्थापन २८ मेरुस्थापन २९ सकलीकरण ३० वर्णमालाका जप तथा प्रतिमाके अंगमें स्थापन ३१ अनादिमंत्रका अर्चन उपासना ३२ कार्य योग्य यंत्र मंत्रनका अधिकार ३३ दीक्षाके चिन्ह ३४ पीछै यागमंडलका उद्धार तथा अर्चनउपासना ३५ इंद्रानी तथा माताकी कल्पना ३६ इनकी योग्य उपासना विधि ३७ रत्नवृष्टि स्थापन ३८ पंचकल्याण घोषणा ३९ माताजीको स्वपनका देखना ४० श्रीआदि दिक्कुमारिका सेवामें हाजिर होना ४१ मेरुपर गमन तथा अभिषेक विधि ४२ जयस्तुति ४३ क्रियाशुद्धि ४४ खानि आकर शुद्धि ४५ तांडवनृत्य ४६ राज्यकी प्राप्ति ४७ वैराग्यके प्रारंभमें लौकांतिक देवकृत स्तुति ४८ बाराभावना ४९ वन प्रति गमन ५० संस्कार मालारोपण ५१ तप ५२ अधिवासना ५३ स्वस्त्ययन विधान ५४ श्रीमुखोद्घाटनविधान ५५ नयनोन्मीलनविधान ५६ सूरिमंत्रविधान ५७ समवसरण ५८ विहार ५९ रथयात्रा ६० अर ग्रन्थमंगल ६१ ऐसे इकसठि अधिकार हैं। जे संक्षेप विधान करनेवाले हैं तिनके अर्थ यह क्रममें आचार्यने कहा है और विशेप क्रिया विधान इस प्रतिष्ठाका क्रियाविशाल पूर्वके अनुसार क्रियाविशाल नामक ग्रन्थतैं जानिवे योग्य है ॥ ३८—५१ ॥

ऐसें या ग्रन्थमें कर्तव्यांकी सूचनिका कही।

अब प्रतिष्ठामें इतने मनुष्य अवश्य अधिकारी चाहिये सो कहे हैं—

आचार्यो मघवा कर्ता तत्पत्नी पूजकस्तथा ।
पञ्चैते यज्ञनेतारो मुख्या व्रतसमन्विताः ॥ ५२ ॥

आचार्य सूरि मंत्रका दातार १ इंद्र क्रियाका कर्ता २ यज्ञका कर्ता यजमान ३ ताकी स्त्री विवाहिता ४ पूजनका कर्ता ५ ये पांच मनुष्य यज्ञ का कर्ता व्रतधारी जानना ॥ ५२ ॥

सामग्रीसम्पत्तिकरा मंत्रिणोऽध्यापका बुधाः ।
श्रीह्र्यादिकन्यका लौकांतिककल्पा अपि स्मृताः ॥ ५३ ॥

इति कर्तृसूचनिका ।

सामिग्री संपादन करनेवाला १ मन्त्री सभासद २ अध्यापक पाठवक्ता ३ पंडित विधिका जाननेवाला ४ श्री ह्री आदि कन्या ५ लौकांतिक देव ६ भी आवश्यक हो हैं ॥ ५३ ॥

ऐसैं कर्ता-करनेवालेनिकी सूचनिका कही ।

अथ उपोद्घातः ।

आद्यश्चक्रधरः समस्तवसुधासारं स्वसात्कृत्य तत्सारं संचितुमीड्यमादिपुरुषं ब्रह्माणमीशं जिनं ।
नत्वा पर्यनुयुंक्त देव ! भगवन् ! सागारधर्मे श्रुतामिज्यां दत्तिमनाविलां बहुधनप्राह्यां निबोधस्व मे ॥ ५४ ॥

अब प्रथम उपोद्घात कहिये है कि—प्रथम भरतेश्वर चक्रवर्ती समस्त पृथ्वीका सार जो चतुर्दश रत्न, नवनिधि अरु दिग्विजयादि अपने हस्तगत करि ताका भी सार पुण्यने संचय करनेकूं पूज्य आदिब्रह्मा आदि जिनेन्द्रेश्वर तीर्थंकरने नमस्कार करि पूछता भया कि हे देव कि हे भगवान् श्रावकधर्ममें श्रवण किये ऐसी इज्या अर्थात् पूजा निःपापा अरु बहुत धनकरि होवे योग्य ऐसी दत्ति कहिये दानविधि जो है ताकूं मेरे अर्थि निबोधन करो कि आज्ञा करो ॥ ५४ ॥

वसंततिलका छंदः ।

स्वामी जगाद परया सुगिरातिशायिन्या भव्यवर्य ! चतुरङ्गभिदा तदिज्या ।
चातुर्मुखप्रतिदिनार्चनकल्पशाखीवास्वान्हिकश्रुतिरिति प्रथिता पुराणैः ॥ ५५ ॥

तब श्रीस्वामी ऋषभदेव अतिशयवती दिव्यवाणी करि कहता भया कि हे भव्यप्रधान ! सो इज्या चतुःप्रकार चतुर्मुख नाम, नित्यार्चन, कल्पवृक्षनाम अरु आष्टाह्निकनाम करि पुराण पुरुषनिने विख्यात कियी है ॥ ५५ ॥

सम्राड्भिरर्थनिधिभिश्च चतुर्दिशासु संस्थीयमानजिनमूर्तिषु या महार्घ्या ।
संकल्प्यते शतसुरेन्द्रनिभैर्जिनार्चा पूर्वोदिता प्रचुरपुण्यविधानदात्री ॥ ५६ ॥

जो अर्थका स्वामी चक्रवर्तीनिने चारूं दिशामें जिनप्रतिमा स्थापन करि महान् अर्घ्य संयुक्त शत इंद्रनि करि रची प्रचुर पुण्यकी देनेवाली चतुर्मुख नामक जिनेन्द्रकी पूजा कल्पना कियी है ॥ ५६ ॥

नित्यं स्वयं निजगृहाज्जलचंदनादि लात्वा जिनेन्द्रभवने किल भावशुद्ध्या ।
ईर्यापथप्रचलनेन शुभोपयोगादर्चा हि सा प्रतिदिनार्चनमुक्तमुच्चैः ॥ ५७ ॥

अरु जो अपना गृहतैं स्वयं आप निस जल चंदन आदि पूजनोपस्कार लेय जिनेन्द्र भवनमें भावशुद्धि करि अर ईर्यापथ गमन करि शुभोपयोगतैं किया अर्चन है सो उच्च प्रकार नित्यार्चन कहिये है ॥ ५७ ॥

दुःखार्तदुर्विधजनानुनयेन दानं याद्दच्छिकं वृषविधायि पुरा ददित्वा ।
पश्चात्समर्चनममौल्यमणिप्रतानसोपस्करं भवति कल्पतरुप्रमाख्यं ॥ ५८ ॥

अरु दुःखित दरिद्री जनांकी वांछापूर्ण करि अर्थात् पुण्यको देनेवाला याद्दच्छिक (उनकी वांछाके अनुसार) दान देकर बहुमूल्य मणि आदिकी सामिग्रीसे जिनेंद्रकी जो पूजन है सो कल्पवृक्ष नामक है ॥ ५८ ॥

इन्द्रवज्रा छन्दः ।

ऐन्द्रध्वजं शांतिकसिद्धचक्रत्रैलोक्यकोटीगुणकादिकार्चा ।

मूर्च्छां धनेषु प्रतिहत्य भक्त्या कृतेति साष्टान्हिकनामभाज्या ॥ ५९ ॥

इंद्रध्वज महाशांतिक सिद्धचक्र त्रैलोक्यविधान कोटिगुण आदि पूजा है सो धन वैभवमें मूर्छा दूरिकरि भक्तिकरि कियी है, सो अष्टाह्निका नामक है ॥ ५९ ॥

पूजार्हणार्चा यजनं च यज्ञ इज्या सपर्या परिसेवनं च ।
महः क्रतुः कल्प उपासनेति प्रभृत्युपाख्या जिनपूजनस्य ॥ ६० ॥

पूजा अर्हणा अर्चा यजन यज्ञ इज्या सपर्या सेवा मह कृतु कल्प उपासना इत्यादिक जिनपूजनका पर्याय नाम है ॥ ६० ॥

दत्तिं चतुर्धापि दयासुपात्रसमान्वयाधारभिदा निरूप्य ।
सागारधर्मं व्यवहाररूपं निबोधयामास विधेर्विधानात् ॥ ६१ ॥

'दयादत्ति, पात्रदत्ति, समदत्ति, अन्वयदत्ति ऐसे आधार भेदतैं दत्तिने च्यार प्रकार निरूपण करि व्यवहाररूप सागारधर्मने विधिका विधान करनेवारा श्रीआदिनाथ निबोधन करता भया ॥ ६१ ॥

श्रुत्वा समासाद् भरतेश्वरोऽपि कैलासभूध्रे मणिरत्नचूर्णैः ।
द्वासप्ततिं जैनपमंदिराणां निर्माप्य चक्रे जिनबिंबसंस्थां ॥ ६२ ॥

भरतेश्वर भी ऐसैं संक्षेपमात्र सुनि कैलास नामक गिरिके उपरि भागमें मणि रत्ननिका चूर्णसे जिनेश्वरांका बहत्तर मन्दिर बणाय जिनेन्द्र-बिंबकी त्रिकाल चौबीसीकी प्रतिमाकी स्थापना करतो भयो ॥ ६२ ॥

ततः प्रभृत्येव महाधनैः स्वं प्रतिष्ठया धन्यतमं विधाय ।
संरच्यतेऽनादिजिनेन्द्रचन्द्रमुखोद्गतं स्थापनसद्विधानं ॥ ६३ ॥

इत्यनादिकालजायमानं मन्दिरबिंबस्थापनासमर्थं प्रतिष्ठालक्षणं ।

ता दिनसे महाधन पुरुष जिनप्रतिष्ठा करि अपनेकूं धन्यतम मानि अनादिकालसे प्राप्त भया जिनेन्द्रचंद्रका मुखारविंदतैं उद्गत कहिये प्रगट भया ऐसा प्रतिष्ठा विधान कहिये है ॥ ६३ ॥

इति अनादिकालतैं परंपरा उपदेशपूर्वक पुण्यानुबंधकारक जिनचैत्यचैत्यालय समर्थन किया ।

अथ प्रतिष्ठालक्षणम् ।

अब प्रतिष्ठा लक्षण कहिये है—

प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा च स्थापनं तत्प्रतिक्रिया ।
तत्समानात्मबुद्धित्वात्तदभेदः स्तवादिषु ॥ ६४ ॥

प्रतिष्ठान, प्रतिष्ठा, स्थापन, तत्प्रतिक्रिया कहिये ताकासा करणा इत्यादि नाम प्रतिष्ठा शब्दका है। अर ताके समान आत्मबुद्धि होनेत वाका पूजनमें स्तवन अभेद है ॥ ६४ ॥

यत्रारोपात् पञ्चकल्याणमंत्रैः सर्वज्ञत्वस्थापनं तद्विधानैः ।
तत्कर्मानुष्ठापने स्थापनोक्तनिक्षेपेण प्राप्यते तत्तथैव ॥ ६५ ॥

अरु जहां पंचकल्याणकके मन्त्रनिकरि आरोपतैं अर्थात् अतद्गुणमें ताका गुणको स्थापन सो आरोप है तातैं अरु ताका विधान करि सर्वज्ञपणाको स्थापन सो कर्मनका क्रियाका अनुष्ठान करि स्थापना निक्षेप करि उस वस्तूकूं उसही असल मार्गमें तैसे ही प्राप्ति करिये है अर्थात् स्थापनानिक्षेपका प्रधानपणा करि ता वस्तुको तथाज्ञान होय ही है ॥ ६५ ॥

नामक्षेपात्स्थापनांगप्रधानात् भावारोपाद् भव्यवृन्दैकमान्यात् ।
पूजास्तोत्रं सत्त्वबुद्ध्या कृतं वै पुण्यं सूते किं न नानाप्रकारं ॥ ६६ ॥

अरु नाम निक्षेपका प्रधानतैं अरु भावका आरोपणतैं भव्यसमूह करि सर्वथा पूज्यपणा करि पूजा तथा स्तोत्र वस्तुकी सत्ता बुद्धिकरि कीया है सो नाना प्रकार पुण्य कहा नाहीं प्रगट करे है। अर्थात् करे ही करे ॥ ६६ ॥

संदृष्ट्वा प्रतिमानमात्मविलसद्भावेषु संकल्पना
निर्बाधेति गुणैः सुशीलगणने चित्रामकाष्ठस्त्रियाः ।
संगं चित्तविमर्षणान्नियमतो ज्ञात्वा तु संत्यज्यते
सुज्ञानैस्तदनेकनीतिनिपुणैः संस्थापना श्लाघ्यते ॥ ६७ ॥

इहां युक्ति कहिये है कि जिसका प्रतिबिंब किया होय तानैं देखि आत्माका विलासरूप भावनिमें ताकी संकल्पना निर्बाध है—प्रत्यक्ष है याही कारण शीलके भेदकी गणनामें चित्राम पाषाण काष्ठकी स्त्रीका वर्जनाही गुणनकरि संग है सो चित्राम आदिको विक्षेपका कारण जानि इनका संग भी नियमतैं छांडिये है। यातैं ही समीचीन ज्ञानका धारी अनेक नयमें निपुण ऐसे पुरुषनिनैं स्थापना निक्षेप भी रागद्वेष तथा शांतिमुद्राका हेतु जानि श्लाघा करिये है ॥ ६७ ॥

नो चेदत्र कलौ चराचरगुरुर्नो वा मनःपर्यय-
ज्ञानी वावधिलोचनो मुनिवरस्तत्संस्मृतेः कारणं ।
तर्त्तर्हि स्मरणस्वभावशुचिताध्यानस्तुतेः संभवात्
सम्यग्दर्शनहेतुरेव गदिता संस्थापनाधीश्वरी ॥ ६८ ॥

इति प्रतिष्ठावश्यकर्तव्यतासमर्थनम् ।

अथवा पंचमाकालमें चराचरज्ञानधारी गुरु नाहीं है, अथवा मनःपर्ययधारी नाहीं हैं वा अवधिज्ञानी नाहीं हैं कि जो असल अर्हतका स्मरणका कारण होंय तातैं ताका स्मरण स्वभावकी स्वच्छता ध्यान स्तुतिका संभवपणातैं या अर्हतकी स्थापना ही सम्यग्दर्शनका हेतु है ऐसे कही है ॥ ६८ ॥

ऐसैं प्रतिष्ठाकी आवश्यकताका समर्थन किया ।

अथ प्रतिष्ठेयस्वरूपम् ।

अब प्रतिष्ठेयका स्वरूप वर्णन करिये हैं:—

स्वर्णरत्नमणिरौप्यनिर्मितं स्फाटिकामलशिलाभवं तथा ।

उत्थितांबुजमहासनांगितं जैनबिंबमिह शस्यते बुधैः ॥ ६९ ॥

सुवर्ण रत्न मणि चांदी आदिकरि निर्माण किया तथा स्फटिक अर निर्दोष शिलातैं उत्पन्न किया अर कायोत्सर्ग वा पद्मासन करि अंकित ऐसा जिनेन्द्रसंबंधी बिंब पंडित जननै सराया है ॥ ६९ ॥

शांतं नासाग्रदृष्टिं विमलगुणगणैर्भ्राजमानं प्रशस्त-

मानोन्मानं च वामे विधृतवरकरं नाम पद्मासनस्थं ।

व्युत्सर्गालंबिपाणिस्थलनिहितपदांभोजमानम्रकंबु

ध्यानारूढं विदैन्यं भजत मुनिजनानंदकं जैनबिंबं ॥ ७० ॥

हे भव्य हो ! शांतमुद्राधारी नासिकाका अग्रभाग पर लगाई है दृष्टि जाकी अर निर्मल गुणनिकरि शोभायमान अरु मानोन्मान करि प्रशस्त वाम हस्तमें धारण किया है दक्षिण हस्त जिनने पद्मासनमें तिष्ठता वा कायोत्सर्ग करि लंबायमान है करयुगल जाका अर स्थलमें स्थापित किया है चरण कमल जाने, किंचित् नम्र है ग्रीवा जाकी, अरु ध्यानारूढ अर दीनतारहित अर मुनिजनकूं आनंदका कर्ता ऐसा जैन बिंबने भजो ॥ ७० ॥

उत्कीर्णं स्फटिकाशिलारुणहरित्पीताश्मभित्तावपि स्थूलं ह्रस्वमवेल्लितं स्थिरतरं शस्तं प्रतिष्ठाविधौ ।

प्रत्यग्रं चलनक्षमं दृढवपुःसंधिं तथा धातुजं योग्यं नित्यमहोत्सवेषु शिविकासत्स्यंदनारोहणे ॥ ७१ ॥

स्फटिक वा नील वा रक्त वर्ण वा हरितवर्ण वा पीतवर्ण जो पाषाणकी भित्तीमें उकीरया हुआ स्थूल वा छोटा अरु कुटिलतारहित अरु स्थिर ऐसा जिनबिंब प्रतिष्ठाकी विधिमें प्रशस्त है और नवीन अरु हलन चलनमें समर्थ अरु दृढ है शरीरकी संधि जाकी तथा धातुसंबंधी ऐसा नित्योत्सवनिमें पालकी अथवा रथका आरोहणमें योग्य कहा है ॥७१॥

एककुडचे चतुर्विंशसमुदायोऽपि पंचशः ।
त्रयं सप्त जिनेंद्राणां विंबसंस्थोपलाल्यते ॥ ७२ ॥

एक भित्तिमें भी चौवीसका समुदाय तथा पंच कुमारका समुदाय, वा तीन जो शांति कुंथु अर इनका तथा सप्त भी विंब स्थापन उपलालन करिये है ॥ ७२ ॥

प्लुष्टं तथा वेधितगूढ़नेत्ररेखांगुलिक्लिष्टहतप्रभं च ।
वर्ज्यं प्रतिष्ठासु पुराणगात्रं लंबोदराद्यष्टकदोषयुक्तं ॥७३॥

इति प्रतिष्ठेयस्वरूपसमर्थनम् ।

और दग्ध तथा विद्ध गूढ़ नेत्र रेखा अंगुलिवर्जित अरु निष्प्रभ अरु पुराण जर्जर शरीर अरु लांबा उदर ओष्ठ आदि आठ दोषसंयुक्त ऐसा जिनविंव प्रतिष्ठा विधानमें वर्जित है ॥ ७३ ॥

ऐसें प्रतिष्ठेय स्वरूप वर्णन किया ।

अथ प्रतिष्ठापकलक्षणम् ।

अब प्रतिष्ठापक जो प्रतिष्ठा करावनेवाला ताका स्वरूप कहिये है—

आत्मसंपत्तिद्रव्येण व्ययं कृत्वा महोत्सुकः ।
यः करोति प्रतिष्ठां च स प्रतिष्ठापको मतः ॥ ७४ ॥

आत्मीक द्रव्यकी संपत्तिकरि व्ययकरि महान् उत्सवका कर्ता होय जो प्रतिष्ठा करावै सो प्रतिष्ठापक कहिये ॥ ७४ ॥

अब ऐसा प्रतिष्ठापक योग्य नाही होय सो कहिये है—

निषादनाडिंधमसुंडिचंडीपरीष्टिपाटच्चरदारपण्यं ।

द्यूतव्यवस्योपजनस्थसीधुक्षीबलाद्यर्जनमत्र वर्ज्यं ॥ ७५ ॥

निषाद कहिये नीच कर्मकर्ता भीलादिक नाडींधम सुनार भेरू चंडिकाका पूजक अरु चोर अरु स्त्रीका व्यभिचार कराय धन पैदा करनेवाला अरु ज्वारी व्यसनी रौद्रकर्म मद्रा खेतीवाला आदिका द्रव्य इहां वर्जित है ॥७५॥

परोपदानी किल संघपिंजो भूपार्थिनिर्माल्यधनप्रहर्त्ता ।

न शस्यते क्वापि महोपयोगं कर्तुं जनस्तद्धृतहेमभोक्ता ॥७६॥

पर धन लगाय अपना विख्यातपना करै सो अरु संघका निंदक राज्यका द्रव्यहर्ता निर्माल्य धनका हर्ता इत्यादिक सो कदापि महायज्ञ आदिनैं करनेकूं योग्य नाहीं होय है तथा इनका धन लेनेवाला भी योग्य नाहीं है ॥७६॥

न्यायोपजीवी गुरुभक्तिधारी कुत्सादिहीनो विनयप्रपन्नः ।

विप्रस्तथा क्षत्रियवैश्यवर्गो व्रतक्रियाबंदनशीलपात्रः ॥ ७७ ॥

श्रद्धालुदातृत्वमहेच्छुभावो ज्ञाता श्रुतार्थस्य कषायहीनः ।

कलंकपंकोन्मदतापवादकुकर्मदूरोऽर्हदुदारबुद्धिः ॥ ७८ ॥

तो कौन कौन हैं सो कहिये है—न्यायमार्ग जीविका वाला, गुरुकी भक्ति कर्ता, निंदादिक हीन, विनयवान्, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वा वैश्य-वर्गी, व्रत क्रिया बंदन आदिमें सावधान अरु शीलका पात्र ॥७७॥

अरु श्रद्धावान्, दातृत्व गुणवान्, महान कार्यका इच्छुक, अरु शास्त्रका ज्ञाता होय अरु कषायकरि हीन, कलंकपंक जाकै पूर्व नाहीं लाग्या होय, उन्मादता अपवाद अरु कुकर्म इनसे दूर होय अरु अर्हंत धर्ममैं उदार बुद्धि ऐसा प्रतिष्ठापक होय ॥७८॥ (यो युग्म है)

यज्वा तु याजको यष्टा पूजको यजमानभाक् ।

षट्कर्मा यागकृत् संघीत्यादिनाम्ना प्रयुज्यते ॥ ७९ ॥

यज्वा, याजक, यष्टा, पूजक, यजमान, षट्कर्मा, यागकृत, संघी इत्यादि प्रतिष्ठापकका पर्याय शब्द है ॥ ७९ ॥

अथ प्रतिष्ठाचार्यलक्षणं।

अब प्रतिष्ठाका आचार्यका लक्षण कहिये है—

अनूचानः श्रोत्रियश्च प्रतिष्ठाचार्य आश्रयः।
समावृत्तः प्राड्विवाकः समाचार्यादिनामयुक् ॥८०॥

अनूचान कहिये अंगसहित प्रवचनका ज्ञाता होय, श्रुतका श्रद्धानी होय सो प्रतिष्ठाचार्य होय अरु आश्रय समावृत्त प्राड्विवाक समाचारी इत्यादि याके नाम हैं ॥८०॥

स्याद्वादधुर्योऽक्षरदोषवेत्ता निरालसो रोगविहीनदेहः।
प्रायःप्रकर्त्ता दमदानशीलो जितेंद्रियो देवगुरुप्रमाणः ॥८१॥
शास्त्रार्थसंपत्तिविदीर्णवादो धर्मोपदेशप्रणयः क्षमावान्।
राजादिमान्यो नययोगभाञ्जी तपोव्रतानुष्ठितपूतदेहः ॥ ८२ ॥
पूर्वं निमित्ताद्यनुमापकोऽर्थसंदेहहारी यजनैकचित्तः।
सद्ब्राह्मणो ब्रह्मविदां पटिष्ठो जिनैकधर्मा गुरुदत्तमंत्रः ॥ ८३ ॥
भुक्त्वा हविष्यान्नमरात्रिभोजी निद्रां विजेतुं विहितोद्यमश्च।
गतस्पृहो भक्तिपरात्मदुःखप्रहाणये सिद्धमनुर्विधिज्ञः ॥ ८४ ॥
कुलक्रमापातसुविद्यया यः प्राप्तोपसर्गं परिहर्तुमीशः।
सोऽयं प्रतिष्ठाविधिषु प्रयोक्ता श्लाघ्योऽन्यथा दोषवती प्रतिष्ठा ॥ ८५ ॥

अरु स्याद्वाद विद्यामें प्रवीण अरु अक्षरका उदात्त अनुदात्तादि दोषनै जाननेवाला होय, आलस्यहीन, रोगरहित होय, बहुप्रकार क्रिया-

कुशल होय, दम दान शीलवान होय, इन्द्रियजेता, अरु देव गुरु ही है प्रमाण जाके ऐसा, शास्त्रका अर्थसंपत्तिकरि वादिननै जीतनेवाला, धर्मका उपदेशमें प्रवीण, अरु क्षमावान, राजादिकमान्य अनेक नयका भागी, तप व्रत इनका अनुष्ठानसे पवित्र शरीरी पहिलो हो निमित्तादितैं कार्य, कार्यका भावीको अनुमान करनेवाला, अर्थका संदेहका हर्ता, अनेक प्रतिष्ठाकरि तद्रूप चित्तवाला, सद्ब्रह्म विद्यावान्, पंडितनिमैं प्रवीण, अरु जिनधर्म ही धर्म जाकैं, अरु गुरुका दिया है मंत्र जाकै, एक वखत भोजन करि रात्रि भोजनका सर्वथा त्यागी, निद्राके जीतवामें उद्यमवान, गई है वांछा जाकैं, भक्तिमें तत्पर जनोंका दुःखकी हानिके अर्थि सिद्ध है मंत्र जाके, अरु विधिका ज्ञाता, अरु कुल क्रमकरि प्राप्त भई विद्याकरि प्राप्त भया उपसर्ग नै परिहार करिवेकूं समर्थ, सा यो आचार्य प्रतिष्ठा करायवेकूं श्लाघ्य है अन्यथा प्रतिष्ठा दोष देनेवारी होय है ॥ ८१-८५ ॥

शास्त्रानभिज्ञं कुलवावदूकं लोभानलप्लुष्टमशांतशीलं ।

परंपराशून्यमपार्थसार्थं दूरात्त्यजंतु प्रणिधाननिष्ठाः ॥ ८६ ॥

शास्त्रनै नाहीं जानै, वहुत विकथा वा प्रलाप करै, अरु लोभ रूप अग्नि करि दग्ध, अरु अशांतस्वभावी, अरु परंपराकरि हीन, अरु अर्थको नहीं जाननेवाला, ऐसा आचार्यकूं प्रतिष्ठाकारक दूर हीतैं छोडो ॥ ८६ ॥

प्रयोक्तृवाक्यं न हि मन्यमानो लोभादिसंचारकृतापमानः ।

प्राप्नोत्यनर्थं गुरुवाक्विरुद्ध इहान्यतः श्वभ्रमदभ्रदुःखं ॥ ८७ ॥

और जो प्रतिष्ठाकारक है सो लोभ मान आदिके वशीभूत होय अपमान करै अरु आचार्यका काव्यकूं नहीं मानै तो गुरुका वचनसे विरुद्ध हुवा संता अनर्थकूं प्राप्त होय, इह भवमें दुःख अरु परभवमें बहुत दुःखयुक्त नरककूं पावे ॥ ८७ ॥

अथ प्रतिष्ठामुख्यकारणेंद्रलक्षणं ।

अब प्रतिष्ठाका मुख्य कारण भूत इंद्रका वर्णन करिये है—

इंद्रः शतक्रतुर्नेता विधिकृद् देशनायनः ।

यष्टृप्रतिनिधिर्विद्वान् एकार्थाः खल्विमे रवाः ॥ ८८ ॥

इंद्र, शतक्रतु, नेता, विधिकृत, आज्ञा देनेवाला, यज्वाको प्रतिनिधि, विद्वान ये शब्द समानार्थक हैं ॥ ८८ ॥

अशूद्रः संपन्नो विधिबहुविधानानुमिहिरः सुभाग्यो वीर्यादिप्रबलगुणयुतो नरयुवा ।
मनोज्ञो हार्यस्त्रक्कनकमणिभूषः शुचिमनाः जिनोत्साहं कर्तुं कृतपरिदृढारंभयजनः ॥ ८९ ॥

शूद्रकुल अरु शूद्राचाररहित संपत्तिवान विधिके अनेकप्रकारमें सूर्य अरु सुंदर भाग्यशाली, बलवीर्यादि गुण सम्पन्न, अरु मनुष्यनिमें युवावस्थाधारी, अरु मनोज्ञ, मनोहर माल्य कनक मणिके भूषणसे भूषित, अरु शुद्धमनयुक्त अरु जिनेन्द्रका उत्साह करनेकूं दृढ चित्तधारी होय ॥ ८९ ॥

यज्ञसूत्रकटिमेखलांगुलिमुद्रिकाकरविभूषणान्वितः ।
कंठिकावलिसुकुंडलक्षभाशीर्षभूषणयुतः सदा भवेत् ॥ ९० ॥

यज्ञसूत्र यज्ञोपवीत अरु कटिमेखला अरु अंगुलिमुद्रिका अरु करभूषण कहिये कटक इन संयुक्त, अरु कंठिकावली जो हारावली अरु सुंदर कुंडल अरु नक्षत्रमाला, शीर्षभूषण कहिये कर्णमौक्तिक इन संयुक्त सदा ही होय ॥ ९० ॥

त्रिकालसामायिकवंदनेभ्यः स्तुतिक्रियामांसलभावभक्तिः ।
सोर्हत्प्रतिष्ठासमये जिनेशबिंबं समुद्दिश्य कृतिं विदध्यात् ॥ ९१ ॥

अर इंद्र है सो तीनकालमें सामायिक अर वंदना इनतैं जिनेन्द्रकी स्तुति करणे करि पुष्ट है भाव भक्ति जाकै, सो अर्हंतकी प्रतिष्ठाका उत्सवमैं जिनेन्द्रबिंबकू उद्देशकरि कार्यमात्र विधान करै ॥ ९१ ॥

आचार्यचित्तानुगृहीतचेता मनोज्ञवस्त्रः प्रयतः क्रियासु ।
सद्ब्रह्मभूयं पुरतो विधाय प्राणासनायामविधिं प्रयुज्यात् ॥ ९२ ॥

अर सो इंद्र आचार्यका चित्तका अनुग्रहरूप है चित्त जाका, अर मनोज्ञ है वस्त्र जाकैं, क्रिया जे पंचकल्याणकी क्रिया तिनविषै सावधान, ऐसा हुवा संता, मंत्र न्यास विधिने प्रथम करि प्राणायाम आसन आदि विधिकूं युक्त करै ॥ ९२ ॥

मिथ्याविहारवचनाशनपांशुलत्वदुर्दृष्टिदर्शनपरित्यजनेन सार्द्धं ।
शान्तिक्षमायमतपश्चरणाभियोगं प्रारब्धकर्मणि विशृंखलतो विरच्येत् ॥९३॥

अर वो इंद्र मिथ्यागमन, मिथ्या वचन, मिथ्या भोजन, अर पाप कर्म अर मिथ्यात्व कथन, मिथ्या दर्शन, इनका परिहारसंयुक्त शांति क्षमा यम तपश्चरण आदि योगनैं ग्रहण करि प्रारंभ किया प्रतिष्ठा कर्ममें लज्जारहित हुवा थका वैराग्ययुक्त होय ॥ ९३ ॥

अथ सामिग्रीलक्षणं ।

अब सामिग्रीका लक्षण कहिये है—

गंगादितीर्थोद्भववारिशीतं मुहूर्त्तमात्रे परिगालितं वा ।
सत्प्रासुकं वस्त्रवितानगूढं पात्रेभृतं शुद्धतरे विशुद्धं ॥ ९४ ॥

प्रथम जल ऐसा कि, गंगादि शुद्ध तीर्थतैं उत्पन्न शीत जल सो एक मुहूर्त्त कालमें छाण्या हुवा, प्रासुक अरु वस्त्रका चंदवा करि आच्छादित सुन्दर शुद्ध पात्रमैं विशुद्ध भरया ऐसा होय ॥ ९४ ॥

कर्पूरमिश्रं मलयोद्भवं च काश्मीरयोगाभिमतं वरेण्यं ।
सौगंध्यहूतालिगणं सुवर्णपात्रार्पितं यत्ननिगूढमस्तु ॥ ९५ ॥

कर्पूरकरि मिश्रित, केशर करि मान्य, सुन्दर ऐसा मलयागर चंदन है सो सुगंध करि आये हैं भ्रमका समूह जामें, सुवर्ण पात्रमें स्थापित बड़ा यत्नसूं गुप्त जिनप्रतिष्ठाके योग्य होहु ॥ ९५ ॥

मुक्ताफलैर्वा कलमाक्षतैर्वा हिमांशुभासैरपखंडनैश्च ।
धौतैस्त्रिवारं शुचिभाजनैर्वा कुर्यात् प्रपुंजैर्विमलैरदभ्रैः ॥ ९६ ॥

अक्षतं ऐसाकि—मोतीका पुंज समान, राजतंदुल चंद्रमाकी किरण समान उज्ज्वल अर अखंडित अर तीन वार प्रक्षालित किये ऐसे निर्मल वहुत पुंजनिकरि जिनेंद्रका अर्चन करै ॥ ९६ ॥

सुवासिनीहस्तसमागतानि पुष्पाणि गंधप्रकराणि यद्वा ।

सुवर्णरुक्मोपचितानि युक्त्या संरोपितानीष्टमनोहराणि ॥ ९७ ॥

जिनेंद्रार्चनमें सौभाग्यवंती स्त्रीका हाथसे आये सुगंधका समूहसे भरा अथवा सुवर्ण अर चांदीके उपचार करि कीये अर पूर्वाचार्यनिकी युक्ति करि आरोपित किये अर्थात् केशर करि रंगे अर इष्ट और मनोहर पुष्प योग्य होय हैं ॥ ९७ ॥

पीयूषपिंडानि सिताघृतान्नसन्मोदका नित्यदिनोद्भवाश्च ।

हृन्नत्रलावण्यविधानदक्षा अनेकधा यज्ञविधौ प्रशस्ताः ॥ ९८ ॥

नैवेद्य ऐसे योग्य हैं कि—शर्करा, अर घृत अर अन्न इनका योगतैं उत्पन्न मोदकादि नित्य किये अर दिनमें उत्पन्न किये, अर हृदय नेत्रके सोंदर्यकूं वधावनेवारे अनेक प्रकारके ऐसे जिनेंद्रका यज्ञमें प्रशंसा योग्य कहे है ॥ ९८ ॥

कर्पूररत्नमणिदीपकमालयार्चा योग्या जिनेंद्रचरणस्य निरामया च ।

पात्रे विधृत्य वरमंगलवाचनेन, स्वारार्तिकं विधिवदंकुरयतीह पुण्यम् ॥ ९९ ॥

और घृतका अर रत्नमणिकी दीपकका समूह करि जिनेंद्रका चरण की निर्दोषरूप अर्चाके योग्य हैं। इसकूं सुन्दर मंगलका पठन करि पात्रमें धरि आरती है सो पुण्यांकुरने विधिसंयुक्त पैदा करै है ॥ ९९ ॥

अगुरुचंदनसोमतरूद्भवप्रचुरधूपगणेन सुगंधिना ।

दहनपात्रगतेन जिनार्चनं कुरुत भो त्रिदशालयसौख्यदं ॥ १०० ॥

अगर चंदन कपूर आदि सुगंध वृक्षनितैं उत्पन्न भया प्रचुर धूप समूह करि सुगंधवान् ऐसा करि अरु अग्निपात्रमें प्राप्त करि भो धन्य पुरुष हो ! स्वर्गके सुखदेनेवाला जिनेंद्रका पूजन करो ॥ १०० ॥

ऋतुरसप्रसवैश्च रसादनवररसालसुदाडिमनागरैः ।
सलिलतः परिशोध्य हिरण्यजे विधृतिमद्भिरजं परिपूजयेत् ॥ १ ॥

षट् ऋतुके रससंयुक्त सरस सुन्दर नेत्रनिके प्यारे अमृत समान मिष्ट ऐसे फल जल शोधन करि सुवर्ण पात्रमें स्थापि स्वयंभू भगवानने पूजिये ॥ १०१ ॥

वासांसि शुद्धानि सितानि धौतान्युद्भूतमालाणि दशायुतानि ।
संधारयेत्पूजनकृत्प्रसन्नं चेतो यतः स्याद्बहुमूल्यकानि ॥ २ ॥

और पूजक जा प्रकार प्रसन्न चित्त रहै ऐसा बहुमूल्य शुद्ध श्वेत धौत अर नवीन अखंडित वस्त्रकूं धारण करै ॥ १०२ ॥

पात्राणि वेदीस्थलतोरणानि सर्वाण्यनेकान्युपकारणानि ।
नव्यानि चित्ताक्षिहराणि यज्ञे जीर्णत्वदुष्टत्वविधाच्युतानि ॥ ३ ॥

और पात्र तथा वेदी स्थल तोरण आदि सर्व उपकरण नवीन अर चित्त नेत्रकूं प्रिय ऐसे अर जीर्णपणा अर सदोषपणा आदि कुरीति-रहित यज्ञमें प्रशस्त कहे हैं ॥ १०३ ॥

सामग्रीयोजने शाठ्यं कार्पण्यं योगवंचनं ।
न कदाचिन्मनस्वीति कुर्यात्स्वहितकामुकः ॥ ४ ॥

सामिग्रीके योजनमें मूर्खपना अर कृपणपना अर योगरहितपणा कदाचित् भी ज्ञानी पुरुष अपने हितका इच्छुक नहीं करै ॥ १०४ ॥

अथ प्रतिष्ठाफलं ।

अब यहां प्रतिष्ठाका फलने कहे हैं—

संबंधो ह्यभिधेयसंधिविषयाशक्यत्वकृत्यात्मतामाचार्याः प्रथमं विचार्य करणे ग्रंथस्य तत्रोद्यमं ।

कुर्वंतीह ममापि तन्मुनिवरानूनानुकं पालनात् सिद्धं तत्फलवर्णना खलु फलोद्देशे तथाऽऽवश्यकी ॥ ५ ॥

प्रथम भूमिका आचार्य कहै है—सो ऐसे कि सम्बन्ध तो प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव है। अभिधेय जो अभिधान करने योग्य ताकी सन्धि कहिये सन्धान मिलान अरु विषय जो वर्ण्य वस्तु तामें अशक्यत्व अर्थात् अशक्य साधनत्वाभाव अर कृत्यात्मता कहिये करणेका फल, ऐसे च्यारि वार्ता जो हैं ताई प्रथम विचार करि आचार्य ह सो ग्रंथका करनेमें उद्यम करे है तैसैं ही प्रतिष्ठामें भी च्यारि प्रयोजन आवश्यक है और इह कहिये प्रतिष्ठामें भी मेरे गुरु की प्राचीन अनुकंपाका योगतै सिद्ध होय है तातें निश्चय करि फलका उद्देश्यमें फलकी वर्णना आवश्यक है। भावार्थ—देशकालभवभावापेक्षया तो बहुत वार्ता ऐसा उत्तम कार्यमें आवश्यक है परंतु संबंध १ प्रयोजन २ अशक्यानुष्ठानत्वाभाव ३ कृति-फल ४ ये च्यारि प्रयोजन आवश्यक होय है ॥ १०५ ॥

ये कुर्वंति जिनेंद्रबिंबमनघं सत्पंचकल्याणकारोपात्सुस्थितमल पुण्ययशसां वृद्धिः सुमार्गावनं।
तेषां मार्गविवृद्धिकारकतया पुण्यानुबंधोदयात् यावच्चंद्रदिवाकरं दृशिकृतां सद्दृष्टिलाभः परं ॥ ६ ॥

अरु जे पुरुष निःपाप कहिये माया मिथ्या निदानरहित तथा ख्याति पूजा लाभ रहित पंचकल्याणका आरोपतैं जिनेंद्र बिंबनै स्थापित करै है तापुरुषके पुण्य अरु यशकी वृद्धि होय है। अरु सुन्दर मार्ग को रक्षा होय है। अर उनके मार्ग की विशेष वृद्धि करवातैं अरु पुण्यानु-बंधका उदयतें यावच्चंद्र अरु सूर्य तिष्ठेंगे तावत् सम्यग्दर्शन योग्य भव्योंके सम्यग्दर्शनका लाभ उत्कृष्ट होय है। भावार्थ—यो लाभ कर्ताका आश्रयसैं होवातैं परम पुरुपार्थ प्रगट किया ऐसैं जानो ॥ १०६ ॥

भ्रश्यत्पातककर्ममर्मनिगलात् स्वानंदथुप्रीणनमंतातीतगुणार्णवं मनसिजोद्रेकव्यतीतस्पृहं।
शांतं बिंबमपेक्षितं स्मृतमपि प्रत्यूहनिर्णाशनं मान्यं तत्सति चित्तमाश्रय इव स्यात्तत्प्रतिष्ठापने ॥७॥

ऐसैं हैं कि गलित किया जो पातक कर्मका मर्मरूप बेडी तातें आनंदकी प्राप्तिमें तत्पर अरु अनंत गुणका समुद्र अरु कामका विकारमें नष्ट हो गई है वांछा जाकै अरु शांतरूप बिंबने देखत मात्रही तथा स्मरण मात्र ही समस्त विघ्नका नाश होय है। सो जैसी भित्ति होय तैसा चित्राम होय तैसैं प्रतिष्ठा होय तो बिंब समस्तके मान्य होय ॥ १०७ ॥

कल्याणपंचकविधिः स्वयमात्मसत्त्वकर्तव्यतानियतकर्मवशाज्जनेन।

तेनेह जन्मसफलत्वमितं प्रकर्षादुद्भूतिशक्रपदवी नियतं गृहीता ॥ ८ ॥

जा पुरुषने स्वयं कहिये आप पंचकल्याणककी विधि जो है सो अपना सत्त्व पराक्रम अरु कर्तव्यतारूप नियम प्राप्त कर्मका वर्ततें किया ताही जनने इह भवमैं जन्मका सफलपणा प्राप्त कीया अरु उत्कर्षता करि बहु विभूतिमान इंद्र पदवी नियमपूर्वक ग्रहण की ॥ १०८ ॥

द्रव्यं वपुः स्थिरतरं नहि जातु कस्य राज्यं मनोज्ञसुरचक्रिनरेंद्रतादि ।
तस्मादखंडभवकोटिसमुद्धरैकं स्थाप्यं जिनेंद्रभवनप्रतिमानमुच्चैः ॥ ९ ॥

देखो ! कोई पुरुषको द्रव्य कहिये धन अथवा शरीर स्थिर नहीं है, अरु मनोज्ञ देवपदवी, चक्रवर्ति विभूति, नरेंद्र संपदा आदि राज्य भी स्थिर नहीं तातें अखंड कोटि भवकूं उद्धार करणेमें अद्वितीय एक जिनेंद्रको मन्दिर अरु प्रतिबिंब उच्च प्रकार स्थापन करना योग्य है १०९

कल्पे सुराणां भवनेऽसुराणां ज्योतिःकृतां व्यंतरसन्निकाये ।
असंख्यपुण्योदयसेतुहेतु जिनेंद्रबिंबं यदनादिकालं ॥ १० ॥

अरु ये भवन अथवा प्रतिबिंब देवनिका कल्पमें कि स्वर्गमें तथा असुरादि कुमारनिका भवनमें तथा ज्योतिषी देवनिका भवनमें तथा व्यंतर देवनिका निकायमें है अर असंख्यात पुण्यका उदयरूप जाको कारण है, तातें जिनेन्द्रबिंब अनादिकालतें मान्य है ॥ ११० ॥

भाव्यभावकसंबंधो विषयाः पुण्यहेतवः ।
स्वर्गमोक्षसुखं तत्र फलं शक्यप्रतिक्रियं ॥ ११ ॥

इहां प्रतिष्ठामें भाव्य भावक कहिये सेव्य सेवक संबंध है अरु पुण्यके कारण सर्व याके विषय हैं । स्वर्ग मोक्षका सुखरूप फल है, शक्यानुष्ठान है ही ॥ १११ ॥

समस्तकार्ये प्रथमं विचार्यानुष्ठानमेवं विदधातु कर्ता ।
यशःप्रवृत्तिः सुकृतोपपत्तिरनर्गला स्यात्कृतिकर्मकर्तुः ॥ १२ ॥

से ये च्यारि वस्तु समस्त कार्यमें पहिली विचार करि कर्ता अनुष्ठान करो जाकरि यशकी प्रवृत्ति होय, अनर्गल पुण्यकी प्राप्ति काय ालाकै होय ॥ ११२ ॥

अथ द्रव्यक्षेत्रकालभावानां शुद्धिरुपदिश्यते ।

अब याके आगे द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकी विशुद्धि कहिये है—

द्रव्यं द्विविधमुद्गीतं सचित्ताचित्तभेदतः । कर्तृकारापकेंद्रादि प्रथमं बहुभेदयुक् ॥ १३ ॥

प्रतिमापात्रवेद्यादिस्तंभवस्त्राद्यनेकधा । अचित्तं तद्द्रव्यं योग्यं स्वस्वरूपानुभावतः ॥ १४ ॥

कि द्रव्य सचित्त अचित्तका भेदतैं द्विप्रकार कह्या है । प्रथम सचित्त द्रव्य तौ कर्ता प्रतिष्ठापक अरु इंद्र आदिक बहु प्रकार है । दूसरा प्रतिमा अरु पात्र वेदी स्तंभ वस्त्र आदि बहुभेद है सो इहां सचित्त अचित्त द्रव्य अपना अपना स्वरूपका उदयमें दोन्यू ही उचित है ॥ ११३–११४ ॥

अब क्षेत्र शुद्धि कहिये है—

क्षेत्रमार्यजननांचितं शुचि सुंदरं नदनदीतटाकयुक् ।
संनिधाननगरोपदेशकं तीर्थभूमिनिकटं विशालकं ॥ १५ ॥

कि क्षेत्र प्रथम तौ आर्य मनुष्यनि करि युक्त होय, पवित्र सुन्दर होय, नद नदी तालाव आदि करि युक्त होय अरु समीप प्राप्त है नगर अरु उपदेश देनेवारा जन जा विषै अरु तीर्थ भूमिके निकट होय अरु विस्तीर्ण होय ॥११५॥

पिपीलिकाकीटकवृश्चिकाहिशूका न यत्रोषरता न भूम्यां ।
ईतिप्रभीत्यग्निभयं न यत्र क्षेत्रं प्रशस्तं जिनयज्ञकार्ये ॥ १६ ॥
न मूषिकासर्पविलोपरोधः श्मशानभूताद्युषितं न दुष्टं ।
विलोमजातीतरनीचगेहप्रवासितं क्षेत्रमपार्थदूरं ॥ १७ ॥

बहुरि कीडी कीडा वीछू सर्प अरु कंटक आदि जहां नहीं होय अरु भूमिमै ऊषरपणा नाही होय, अरु ईति भीति अग्निभय नहीं होय, मूषक सर्प आदिके विल नाहीं होंय अरु श्मशानभूमि आदि कर व्याप्त नहीं होय तथा दूषित नहीं होय अरु वर्णसंकर शूद्र नीचका गृह करि प्रवासित कहिये ऊजड़ हो, अरु खोटे कारणनिकरि दूर होय सो क्षेत्र प्रशस्त है ॥ ११६–११७ ॥

अब कालकी शुद्धि कहिये है—

कालोऽत्र वर्षासमयं व्यतीत्य प्रवीतराजोपनृपप्रधानः ।
संघाधिपाचार्यमृतिक्षणोऽपि न शस्यते रोगभयार्तिदायी ॥ १८ ॥

कि वर्षा विना सर्व काल सराहने योग्य है। अरु जासमै राजा मंत्री प्रधानका मरण नहीं हूवो होय, अरु आचार्य प्रतिष्ठापक का भी मृत्यु नहीं होय, अरु रोग महामारी अर शत्रुभय अरु पीड़ा नहीं होय ॥ ११८ ॥

भूकंपदिग्दाहनवैरिचक्रस्वचक्रभीर्यत्र न तस्कराणां ।
उपद्रवैर्बाध्यपरैः समेतो यागप्रयोगाय बुधैर्न धार्यः ॥ १९ ॥

बहुरि भूकंप अरु दिशानका दाह अरु परचक्र स्वचक्र की भीति नहीं होय, अरु तस्कर लुंटेरेनिका भय नहो होय अथवा अन्य उपद्रव-करि संयुक्त काल है सो प्रतिष्ठा यज्ञके अर्थि नहीं धारिये है ॥ ११९ ॥

अब भावशुद्धि कहिये है—

समस्तसंघोचितसत्प्रसादात् सद्धर्मवृद्ध्युत्सवपूर्णचित्तः ।
जनोनुकूलागमवस्तुजातो भावो मनोनंदनजाभिलाषः ॥ २० ॥

कि समस्त संघके प्रसन्नता होय तातैं समीचीन धर्म की वृद्धिका उत्सवमें प्रसन्न चित्तयुक्त जन होय अर अनुकूल वस्तुका आगममें वस्तु समूहनै देखने वारा जन अपने मनका आनंद करि अभिलाषवान् भाव प्रशस्य होय ॥ १२० ॥

अनेकभव्यप्रणिधानयोगादनेकसाहाय्यवितानसंगात् ।
अनेकविद्वज्जनसंनिधानात् शोभां विधत्ते जिनयज्ञ एषः ॥

अर एह जिनयज्ञ अनेक भव्यनिका उपयोगके योगतैं अर अनेक सहाई जनका होनेतें अर अनेक पंडित जनोंका निकट होनेतें शोभाको है ॥ १२१ ॥

प्रपन्नसाताप्रकृतेरुदीर्णोदयान्मनः प्राणभृतां शुभाय ।
कार्याय शीघ्रं यतते कृतौ तु देशीयराष्ट्रीयशुभप्रवृत्त्या ॥ २२ ॥

येह प्राणीनिका मन है सो प्राप्त भया साता कर्मका उदयतें शुभ कार्यके अर्थि शिष्ट प्रयत्नवान् होय है अर कृतिविषैं देश राष्ट्र को शुभ प्रवृत्तिकरि प्रयत्नवान् होय है ॥ १२२ ॥

अस्मिन्महे राज्यसुभिक्षसंपदाद्यो हि हेतुः कथितो मुनींद्रैः ।
कलाविदानीं नृपभूतिरिष्टा मिथ्यादृशां नोदयमिष्टमत्र ॥

अर या जिनप्रतिष्ठाका उत्सवमें मुनीश्वरने प्रथम हेतु राज्य की अर सुभिक्षकी संपत्ति ही कहया है अर ई कलिकालमें नृपभूति कहिये राजाकी प्रसन्नता ही श्रेष्ठ है, मिथ्यात्वीनिका अर्थात् जैनमार्ग विरोधीनिका उदय नाहीं इष्ट है ॥ १२३ ॥

दुर्भिक्षस्तेयमारीपिशुनजनकृतोपद्रवाणां प्रवृत्ति--
र्माभूयाद्धर्मनाशप्रणयनचटुलो भूपनाम्नाऽपि वैरी ।
पौनःपुन्येन शास्ता सकलमतिमतामग्रगामी सुपुण्यः
सूते शिष्टिं विशिष्टां बुधखलसमुदायेषु योग्यां यतोऽसौ ॥

याही हेतु दुर्भिक्ष अर चोर अर मारी अर दुष्ट जनकृत उपद्रवनिकी प्रवृत्ति कदाचित् भी मति होहु अर धर्मका नाशमें प्रवीण ऐसा राजा नामक वैरी भी कदाचित् मति होहु याही कारण वार वार सकल मतिमाननिमें अग्रगामी पुण्यवान् राजा होहु या कारणतैं यो राजा पंडित अर दुर्जनजनोंके योग्य विशिष्ट आज्ञानै प्रगट करै तातें ॥ १२४ ॥

अथ मंदिरनिर्माणविधिः ।

अब मन्दिरका बनानेकी विधि कहिये है—

शुद्धे प्रदेशे नगरेऽप्यटव्यां नदीसमीपे शुचितीर्थभूम्यां ।
विस्तीर्णश्रृंगोन्नतकेतुमालाविराजितं जैनगृहं प्रशस्तं ॥ २५ ॥

शुद्ध स्थानमें तथा नगरमें तथा वनमें तथा नदीका समीपमें तथा तीर्थकी भूमिमें विस्तारयुक्त शिखर अरु केतुकी पंक्तिकरि शोभायमान, ऐसा जिनभवन प्रशस्त होय है ॥ १२५ ॥

शुद्धे मुहूर्त्ते किल वास्तुशांतिं विधाय सीमानमकालदोषं ।
खनेत्सुवर्णोद्धृतयंत्रपीठं निवेश्य तद्द्वारसमीपवर्ति ॥ २६ ॥

मुहूर्त्त शुद्ध देखकरि प्रथम वास्तु शांतिका विधानकरि कालका दोषने दूरिकरि सीमा ज्यों ताहि खोदै ताका द्वार समीप सुंदर पत्रमें यंत्रने निवेशन करै ॥ १२६ ॥

स्थानं परीक्षां च दिशां च साधनं वस्त्वर्चनं मंडललेखनार्चने ।
ग्रावानिवेशो भुवनस्य लक्षणं शैलानयश्चेति तदष्टधा मतं ॥

स्थानकी परीक्षा १ दिग्साधन २ वास्तुशुद्धि ३ मंडल शुद्धि ४ मंडल शांति ५ पाषाण स्थापन ६ गृहलक्षण ७ शिलानयन ८ या प्रकार वास्तु कर्म आठ प्रकार है ॥ १२७ ॥

जलाशयारामसमग्रशोभा वाल्मीकजंतुप्रविचारवर्ज्या ।
कीलास्थिदग्धाश्मविवर्जिता भूरत्र प्रशस्या जिनवेश्मयोग्या ॥

अरु इहां प्रतिष्ठा कर्ममें पृथ्वी, जलका आशय—कूप, वापिका, तड़ाग, नदी आदि, बगीचा वृक्षसमूह इन समस्त करि शोभित अरु वल्मीक अरु जंतु कीटकादिके संनिवेशसे शून्य अरु श्मशान शूली आदिके स्थाननिसे रहित अथवा दग्ध पाषाणोंसे रहित पृथ्वी जिनेन्द्र भवनके योग्य प्रशंसनीय होय है ॥ १२८ ॥

तत्राध्वरं गर्तमधः खनित्वा तद्दोषवर्ज्यं यदि तेन पांशुना ।
प्रपूरयेन्न्यूनसमाधिकेषु भंगं समं लाभ इति प्रशस्यते ॥ २९ ॥

उस जगह एक हाथभर गढ़ा खोदै ऊपर लिखे दोषोंसे रहित हो तो यंत्रादि पूजनविधिको करके फिर उसी धूलिसे उसे भर दे, यदि वह गर्त कुछ कम भरै तब तो कार्यमें उपद्रव आवैगा ऐसा समझना चाहिये यदि मिट्टी भरकर कुछ न बचै, बराबर हो जाय तो समान समझै और मिट्टी गढा भरकर भी बच रहै तो लाभकी प्राप्ति समझना चाहिये ॥ १२९ ॥

सीम्नि प्रखाते प्रथमं शुभेऽह्नि घृतोद्भवं दीपमुपांशुमंत्रैः ।
सयोज्य ताम्रे कलशे पिधाय न्यसेत् सयंत्रं कनकं तदूर्व्यां ॥ ३० ॥

जब नीम खोदै तब प्रथम शुभ मुहूर्त्तमें घृतका दीपक पद्धतिके मंत्रनिते प्रज्वलित करि फिरि ताकूं ताम्रका कलशमें स्थापि अरु आच्छादित करि उसके अधोभागमें सुवर्णका यंत्र स्थापन करै ॥ १३० ॥

व्यपोहनं नो लभते प्रदीपस्तथा दृषद्भिः खनितोर्ध्वे(र्द्ध)कुड्ये ।
नयेद् व्रतारंभनिवेदनादि कर्ता विदध्याज्जनसाक्षियुक्तं ॥ ३१ ॥

उस दीपकूं ऐसे स्थापन करै जैसैं निर्वाण नहीं होय, पाषाण करि ऊर्ध्वकुड्यमें भित्तिमें स्थापन करै अरु मन्दिरकर्ता स्वामी व्रत अरु मन्दिरका आरंभमंगल अरु सज्जन प्रार्थना आदि अपने सहायीनिकी साक्षीपूर्वक करै ॥ १३१ ॥

तत्स्थानवासान्निखिलान्सुरादीन् संतोष्य पंचेशसुमंडलेन ।
पूजां विधायेतरदीनजंतून् सन्मानयेत्कारुणिको महात्मा ॥ ३२ ॥

अर स्थानमें वसनेवाले समस्त देवादिने संतोषित करि अर्थात् आज्ञा लेय पंचपरमेष्ठीके मंडलकरि पूजा रचि गरीब दीन प्राणिनिकूं करुणा पूर्वक वे महापुरुष सन्मान करें ॥ १३२ ॥

चैत्रादिमासे विषुवं प्रसाध्य दिग्मूढतापोहनपूर्वमत्र ।

मुखं तु शक्रोत्तरपाश्चिमासु कुर्याज्जिनेशालयकस्य मुख्यं ॥ ३३ ॥

मन्दिरके नीमकी पहिली चैतका महीनामें अर्थात् रात्रिदिनकी तुल्यतामें मध्य रेखाकूं साधन करै अर्थात् सूर्यछायाकी मध्यभागमें दिशाकी तिरछापणाकी संगति मेटि मन्दिरका मुख पूर्व उत्तर कदाचित् पश्चिममें भी राखे ॥ १३३ ॥

अब मन्दिरकी रचनाका संनिवेश करै हैं कि—

तत्क्षेत्रं पंचविंशत्यवधिपरिमितं संविभज्यात्र मध्ये, निध्यंशे मध्यकोष्ठे जिनपतिनिलयं पार्श्वयोः सिद्धपाठ्यौ ।
आचार्यश्चोर्ध्वभागे तदितरगृहयोरागमो धर्मतीर्थस्रग् साधुर्विधानालययजनपरिष्कारगेहं निवेश्यं ॥ १३४ ॥

कि—मन्दिर बनावणे योग्य चौखूटा क्षेत्रका पचीस अंश परिमित विभाग करि अर मध्यका नव अंशमें मध्यभागमें तो अरहन्तनिकी स्थापना अर पार्श्ववर्ती दोन्यू कोष्ठमें सिद्धांका विंब अर उपाध्यायका प्रतिविंब अर ऊर्ध्व भागका कोष्ठमें आचार्य परमेष्ठीका विंब अर अन्य गृहनिमें आगम अर निर्वाण क्षेत्र अर साधुपरमेष्ठी अर मंडलविधानका स्थान अर सामिग्री संपादन स्थान ऐसैं नव कोष्ठक कराना ॥ १३४ ॥

पूर्वोत्तरं दाक्षिणमस्य कार्यं द्वारं तथा पूर्वदिशासु नृत्य-
गीतालयं चोत्तरमर्थशास्त्रसद्वाचनागेहमतः प्रशस्तं ॥ १३५ ॥

अरु याका द्वार पूर्वोत्तर अथवा दक्षिण भी द्वार होय तथा पूर्व दिशामें नृत्यसंगीतका स्थान अरु उत्तरमें शास्त्र स्वाध्यायका स्थान प्रशस्त कह्या है ॥ १३५ ॥

पाश्चात्यभागे द्रविणालयादि विद्यालयं दक्षदिशि प्रदक्षिणा ।
जिनालयादेः परितोऽत्र कार्या प्राचीनयंत्रोपमसंनिवेशतः ॥ १३६ ॥

अरु पाश्चात्यभागमें भंडार तथा दक्षिणकी तरफ विद्या शाला, अरु प्रदक्षिणा भूमि चौतर्फ ऐसैं प्राचीन यंत्रका उपमा राखि संनिवेश करना ॥ १३६ ॥

५

मंदिरजीका प्राचीन यंत्र।

इति प्रथमो विधिः।

त्रिद्वारं हृदये जिनेंद्रनिलये चाष्टोत्तरं सच्छतं विंबानां विनिवेशनं तदभितः प्रादक्षणीयक्रमः।
अग्रे प्रेक्षणगेहमास्थितिगृहं माहेंद्रनामादिकं स्वच्छा पुष्करिणीत्यकृत्रिमजिनेशावासरूपा कृतिः॥ १३७ ॥

या तो प्रथम विधिरूप मंदिर कहया अब दूसरा विधि मैं ऐसे हैं कि—पूर्व उत्तर तो बड़ा द्वार अरु दक्षिणमें छोटा द्वार अरु वीचमें देवच्छंद कि वेदी तामैं एकसौ आठ गर्भगृह अर जिनविंब अर चौतर्फ प्रदक्षिणा अर अग्रभागमें प्रेक्षागृह ताके पश्चात् आस्थान मंडप माहेंद्र नामक ताके पीछे पुष्करिणी वापिका ऐसे अकृत्रिम जिनभवनरूप रचना सो दूसरा विधान है॥ १३७॥ इति द्वितीयो विधिः।

पूर्वोत्तरं चोत्तरदिग्मुखं वा पार्श्वे सभायां श्रुतसंनिवेशः।
मध्ये चतुष्कं सुविधानकारि तत्पूर्वमग्रे जिनसंस्थितिः स्यात्॥ १३८ ॥

पृथक् कपाटादिधृतावकाशा वेदी त्रिशृंगा त्रिककट्टिनीका ।
ऊर्ध्वं महद्वृत्तशिरस्कदेशे छत्रोपमं केतुसुकिंकिणीकं ॥ १३९ ॥
तदूर्ध्वदेशे शिखराकृतिस्थे जिनेंद्रबिंबादिलसत्सुशोभं ।
प्रदक्षिणा तत्परितो विधेया यथा सुशोभं गृहकल्पनादि ॥ १४० ॥

पूर्वोत्तर वा उत्तर एकही द्वार अरु पार्श्वमें सभामें शास्त्रोपदेश, मध्यमें चौक, तहां महाशांतिकादि मंडल ताकै आगे जिनबिंबनिकी स्थिति, तहां जुदा स्थानसूचक वेदी, तीन कटिनी अरु ऊपर अंडाकृति शिखरमें ध्वजा किंकिणी संनिवेश होय। उपरिम शिखरमें जिनेंद्रबिंब आदि शोभा और प्रदक्षिणा होय और सरस्वती भांडार यथावकाश शोभायमान होय यो तीसरा विधान है॥ १३८-४० ॥

द्वित्रिक्षणं वाऽपि चतुःक्षणादि शृंगोन्नतं केतुपरीतभालं ।
वास्तूत्पथं कर्तुरनर्थयोगस्तस्माद्विधेयं किल वास्तुपूर्वं ॥ १४१ ॥

आगे कहै हैं—ए मंदिर दोयखण तीन खण चारि खण आदि होय, शिखर ध्वजा उपरि खण में होय ऐसे वास्तुविधिकूं उल्लंघन करि ताके अनर्थको योग होय तातैं वास्तु शास्त्रतैं विपरीत नहीं करना योग्य है॥ १४१ ॥

अथ मंदिरमुहूर्त्तम् ।

अब मंदिर बनानेका मुहूर्त्त कहिये तहां जो वस्तु अत्यावश्यक वर्जनीय है अथवा कर्तव्य है सो कहिये—

कालनागमावर्ज्य मानयेत् भूपसीमधरपार्श्वकान्मुदा ।
ज्योतिरर्थपरिपूर्णकारुकैः संनियोज्य खनिमुत्तमां क्रियात् ॥ १४२ ॥

प्रथम नीवका रोपणमें राहु चक्रनैं वर्जित करि राजाज्ञा लेय सीमाने देनेवाला तथा पार्श्ववर्तीनिनै प्रसन्नतापूर्वक सन्मानित करै अरु ज्योतिषी अरु कारीगरने संयोजन करि उत्तम खनि ज्यो है ताहि करै खात करि नीवभरै॥ १४२ ॥

मीनमेषवृषराश्यवस्थिते ग्रीष्मभासिशिवदिग्यमाननं।
युग्मकेशरिकुलीरगेऽनिले कन्यकालितुलगेऽग्नये भवेत् ॥ १४३ ॥
कार्मुके च मकरे घटे रवावग्निदिश्युपगतं विदुर्बुधाः।
निश्चयेन तदपास्य पृष्ठतः संखनेन्नयविशारदो जनः ॥ १४४ ॥

राहु चक्रका मुखका निवारणार्थ परिभ्रमण राहुका कहै है—मीन मेष अरु वृष राशिगत सूर्य संक्रमण होते ईशान कोणमें राहु मुख है। अरु मिथुन सिंह कर्कट राशिगत सूर्यमें वायु दिशामें तथा कन्या वृश्चिक तुलामें नैऋत्यदिशामें, अर धन मकर कुंभका सूर्यमें अग्निकोणमें राहु मुख है। याते नयमें प्रवीण पुरुष इस मुखकूं छोडि पृष्ठ भागमें खनन करे ॥ १४३-४४ ॥

अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टं।
तिर्यग्मुखैर्द्वारकपाटदानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवर्क्षैः ॥ १४५ ॥

अर नक्षत्रनिमें अधोमुख संज्ञक नक्षत्रमें अर्थात् मूल अश्लेषा विशाखा, कृत्तिका, बुध, पूर्वा भाद्र, पूर्वाषाढ़, पूर्वा फाल्गुनी, भरणी, मघा, भौमवार ऐ अधोमुख नक्षत्रमें खनन करै अर ऊर्ध्वमुख संज्ञक अर्थात आर्द्रा, पुष्या, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरात्रय, रोहिणी, सूर्य वार इनमें शिला स्थापन अरु पट्टीन गिराना करै। तथा तिर्यग् मुख अर्थात् अनुराधा, हस्त, स्वाति, पुनर्वसू, ज्येष्ठा, अश्विनी इनमें द्वारके कपाटदान करना अरु मृदु अरु ध्रुव नक्षत्रनिमें अर्थात् उत्तरा त्रय रोहिणी सूर्य वार इनमें गृह प्रवेश करना ॥ १४५ ॥

मार्गादिषु विचैत्रेषु मासेषूत्तरसंक्रमे।
व्यतीपातादियोगेन शुभेऽह्नि प्रारभेत तत् ॥ १४६ ॥

मार्गशिर आदि पंच महीनेमें परन्तु चैत्रविना अरु उत्तरायण सूर्यमें व्यतिपातादि योगरहित शुभदिनमें जिनालयको प्रारंभ करै ॥१४६॥

पुष्योत्तरात्रयमृगश्रवणाश्विनीषु चित्राकया हि वसुपाशिविशाखिकासु।
आर्द्रापुनर्वसुकरेष्वपि भेषु शस्तं जीवज्ञशुक्रदिवसेषु जिनेषु सद्म ॥ १४७ ॥

पुष्य, उत्तरात्रय, मृगशिर, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, पुनर्वसु, विशाखा, आर्द्रा, हस्त इनमें, अरु बृहस्पति, बुध, शुक्रवारमें जिन मंदिर प्रारंभ करना योग्य है ॥१४७॥

जीवेन चंद्रहरिसर्पजलध्रुवाणि पुष्यं प्रशस्तमथ तक्षवसुद्विनाथाः ।
इस्त्रार्द्रिका शतपदाश्च सुभार्गवेन वाहोत्तराकरकदाश्च बुधेन योगात् ॥ १४८ ॥

बृहस्पतिवारमें मृगशिर, अनुराधा, अश्लेषा, पूर्वाषाढ़ अरु ध्रुवसंज्ञक प्रशस्त है, अरु पुष्य भी प्रशस्त है। अरु चित्रा, धनिष्ठा, विशाखा, अश्विनी, आर्द्रा, शतभिषा, शुक्रवारमें श्रेष्ठ है अरु बुधवारमें अश्विनी उत्तरा हस्त रोहिणी श्रेष्ठ है ॥ १४८ ॥

अथ लग्नशुद्धिः।

अब लग्न शुद्धि कहिये है—

मीनस्थे तनुगे कवावपि चतुर्थे कर्कगे गीष्पतौ रुद्रस्थे तुलगे शनावथ बलाधिक्ये सुतारायुजि ।
लग्नायां वरगेषु शुक्रतपनज्ञेष्टामरे केंद्रगे षष्ठेऽर्के विदि सप्तमोऽग्निषु शनौ शस्तो जिनेंद्रालयः ॥ १४९ ॥

मीन लग्नमें शुक्र होय अथवा चौथ होय, कर्क को बृहस्पति होय, अरु ग्यारमें तुलाको शनि होय, बलकरि अधिक अरु सुन्दर ताराको योग होय अरु लग्न, अरु ग्यारमे अरु दशमे शुक्र सूर्य बृहस्पति होय अथवा केंद्रमें बृहस्पति होय, अरु छट्ठे सूर्य होय अरु सातमे बुध होय, त्रिकोणमें शनि होय तो यामेंसे एक भी योग होय तो जिनेंद्रालय प्रशस्त कहिये हैं ॥ १४९॥

सूर्याधिष्ठितभात् चतुर्भिरुपरिस्थैरष्टाभिः कोणगैस्तस्मादग्रिमभाष्टभिस्तत इतैर्भैर्बाह्निसंख्यैरलं ।
देहल्यामथ तत्पुरःस्थितचतुर्भिर्भैः कृते चक्रके लक्ष्मीप्राप्तिरमानवं सुखकरं मृत्युः शिवं च क्रमात् ॥ १५० ॥

और सूर्य करि आश्रित नक्षत्रतैं चारि नक्षत्र अर ऊपरिके आठ नक्षत्र कोण स्थित, अर तातैं अग्रिम आठ नक्षत्र पार्श्व में होय ताके अग्रिम तीन नक्षत्र देहलीमें होय ताके अग्रिम च्यारि नक्षत्र चक्रमें होय तो यह योगमें लक्ष्मीकी प्राप्ति होय अरु शून्य होय अरु सुखकारो होय अरु मृत्यु होय, अरु कल्याण होय येह पांच योगका पांच फल अनुक्रमते जानना ॥ १५० ॥

अथ बिंबनिर्माणविधिः ।

अब बिंबनिर्माणकी विधि कहिये है-

संस्थानसुंदरमनोहररूपमूर्ध्वप्रालंबितं ह्यवसनं कमलासनं च ।
नान्यासनेन परिकल्पितमीशबिंबमर्हाविधौ प्रथितमार्यमतिप्रपन्नैः ॥ १५१ ॥
वृद्धत्वबाल्यरहितांगमुपेतशांतिं श्रीवृक्षभूषिहृदयं नखकेशहीनं ।
सद्धातुचित्रदृषदां समसूलभागं वैराग्यभूषितगुणां तपसि प्रशक्तं ॥ १५२ ॥

संस्थान कहिये अंगोपांगकरि सुन्दर अरु कांति लावण्यकरि मनोहर कायोत्सर्ग धारी दिगम्बर तथा पद्मासन, याहीतैं अन्य आसन कुकुटादिकरि कल्पना किया जिनबिंब पूजाविधिमें सुन्दर मतिवारे जननिने योग्य नहीं कह्या है बहुरि वृद्धपणा अरु बालपणा इनकरि रहित अरु शांतिभावने ग्रहण कीया अरु श्रीवृक्ष चिह्न करि भूषित है हृदय जाका अरु नख केशकरि हीन अरु धातु नाना प्रकार पाषाणनिकरि रचित अरु समचतुरस्र संस्थानयुक्त अरु वैराग्यकूं भूषित करनेंवाला, अरु तपकी अवस्थामें प्रशस्त ऐसा होय ॥ १५१-१५२ ॥ यह युग्म है ।

ऊर्ध्वे द्विपाभ्रविधुभागकृतौ स्वकीयमानेन तल मुखमंडलमक्षिसोमं ।
ग्रीवाहृदौ च चतुरक्षिमितौ हृदानुप्रेक्षाप्रमं जठरमत्र तु नाभिमूलात् ॥ १५३ ॥
तावत्प्रमैव मदनादि तदादि........(भातु) जानुद्वयं करमितं च ततोऽपि गुल्फं ।
तस्माच्च पादतलमत्र हि गुल्फदेशात् पिंडिर्दृढा तु पदयोः शुभलक्षणांका ॥ १५४ ॥

ऊंचाई में कायोत्सर्ग प्रतिमामें द्विपकहिये आठ, अभ्रकहिये शून्य, विधु कहिये एक, अर्थात् १०८ भाग अपना प्रमाण करि होय है तहां मुख मंडल गोलाकार बारह भाग प्रमाण है अर ग्रीवा अर हृदय, ये दोन्यू प्रत्येक चोईस भाग होय अर हृदयतें जठरताई बारहभाग नाभिपर्यंत होय, अर तावत् प्रमाण ही कि बारहभाग ही नाभितें लिंगमूल पर्यंत अरु तातें गोडा पर्यंत एक हस्तमात्र अरु तातें भी टिकूण्यां पर्यंत एक हस्तमात्र, अरु तातें पादनिका तल पर्यंत एक हस्तमात्र होय अरु टिकोण्यां की पिंडली, गाढ़ी (दृढ़) अरु शुभलक्षणकरि चिह्नत होय ॥ १५३-१५४ ॥

वेदांगुलं भालनसोमुखस्य मानं तु घोणा चतुरंगुला च ।
मूर्धानमीषन्नतमत्र कार्यमर्धेंदुनिभं पृथुभालदेशं ॥ १५५ ॥

अरु च्यारि अंगुल ललाट अरु नासिकाका प्रमाण कह्या है अरु मुख विस्तार अरु नासिकाका विवर विस्तार च्यारि अंगुल जानो। तहां मस्तक किंचित नम्र करनो, अरु अष्टमीका चंद्र समान ललाट करना ॥ १५५ ॥

भ्रुवोरंतरं युग्मभागप्रमाणं तथा नेत्रयोः श्वेतिमा तत्प्रमाणं ।
सुतारास्थितिश्चैकभागे त्रिभागा नसोर्मूलभागेऽक्षिणी युग्मभागे ॥ १५६ ॥

भंवारानिका अंतर दोय भाग प्रमाण तथा नेत्रनिका श्वेतस्थल भी दोय भाग प्रमाण अरु तामध्य काली कनीनिका एक भाग प्रमाण तातें नेत्र तीन भाग प्रमाण है। अरु नासिकाका मूल भागमैं नेत्रनिकी स्थिति दोय भाग प्रमाण जानो ॥ १५६ ॥

भ्रूलते वेदभागायते मध्यतः स्थौल्ययुक्तेऽन्तिमे सत्कृशे धानुपे ।
नेत्रयोः पक्ष्मणी (यावता) त्र्यंगुलं दृष्टिनः कूलतुल्ये नदीनामिवोपर्यधः ॥ १५७ ॥

भंवारा च्यारि भाग प्रमाण विस्तृत होय अरु मध्यमैं स्थूल अरु अन्तमैं कृश धनुषाकार होय, अरु नेत्रनिकी वाफणी जहां तक तीन अंगुल दृष्टि पडै सो नदीका तट समान नीचै उपरि होय ॥ १५७ ॥

ओष्ठद्वयं चांगुलमुच्छ्रितं स्यान्मध्ये तथा विस्तृतमत्र नृणां ।
भागास्तु किंचिन्मिलितं द्विपार्श्वे किंचित्प्रकाशेऽतरुदीर्घमानं ॥ १५८ ॥
एकांगुला सृक्किणिकार्धपृथ्वीनेत्रांगुलं स्याच्चिबुकं विशालं ।
मूलाद्धनोरंतरमस्य तद्वद्वेदांगुलं त्र्यंगुलविस्तरं स्यात् ॥ १५९ ॥

अरु दोन्यू ओष्ठ एक अंगुल मोटया अरु च्यारि भाग चौडा किंचित पिचिन अरु दोन्यू पासवाडा किंचित प्रकाशवान, अभ्यंतर उदीरित है प्रमाण जाका, ओष्ठकी अंतस्थिति नामक सृक्किणी एकांगुल होय अरु साढ़ा तीन भाग दाढीका नीचला भाग सो चिबुक होय, अरु विशाल होय, दाढीके अरु मुखके च्यारि अंगुल अन्तर अरु विस्तार दोय अंगुल होय ॥ १५८-१५९ ॥

कर्णौ च षड्भागयुतौ प्रलंबौ वेदांगुलव्यासयुतौ तदंतः ।
छिद्रे तु नाली यवनालिकाभा त्वर्धांगुलं चांतरमुच्यतेऽथ ॥ ६० ॥
श्रोत्रस्य नेत्रस्य च वेदमंतरमष्टादशांशा द्वयकर्णभित्तेः ।
पाश्चात्यभागे तु चतुर्दशांशाः शल्याक्षिभागा परिधिस्तुकस्य ॥ ६१ ॥

अरु कान छह भाग प्रमाण लंबाई अरु दोय भाग चौडे अरु तिनके मध्य छिद्रमें यवनालिका समान नाली अर्द्धांगुल चौडी, तथा कर्ण अरु नेत्र इनके च्यारि अंगुल अन्तर है अरु दोन्यूं कर्णसमेत वा भित्तिके अर्थात् गंडस्थल के अठारह भागको अन्तर अरु पछाड़ी की तरफ चौदह भाग है अरु मस्तककी परिधि तेईस भाग प्रमाण है ॥ १६०-१६१ ॥

तथोर्ध्वभागे रविभागमाला त्र्यंशांगुलाः पंच च कूर्परस्य ।
तत्षोडशांशाः परिधेस्तु तस्य तत्रापि हानिर्मणिबंधमात्रा ॥ १६२ ॥

तथा उपरि मस्तककी परिधि तालु रंध्र ताईं बारा भाग अरु तीन अंगुल है। अरु कपालकी पांचभाग प्रमाणकी षोडशभाग परिधि है। परन्तु मणिबंधमें क्रमकरि हानि भी होती है (इहां मणिबंधका अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ) ॥ १६२ ॥

पंचांगुलं वा त्रिकभागकोनं मध्यं प्रबाहोर्विततेस्तु तस्य ।
विशालता स्याद् युगचंद्रभागा स्कंधं वृषस्कंधमिवात्तशोभं ॥ १६३ ॥

अरु बाहुका मध्य विस्तार तीन भाग ऊन पंचांगुल है अरु विशालता बारा भाग मात्र है और स्कंध है सो बैलका थूहा समान उन्नत शोभायमान होय ॥ १६३ ॥

तुर्यांगुला स्यान्मणिबंधकोर्वी वैशालमस्यास्तु चतुर्दशांशं ।
मध्यांगुलेर्द्वादशकांतरं च मध्यांगुलिः पंचमिता करस्य ॥ ६४ ॥

अरु मणिबंध ज्यो पोछ्यो (पोंचा) ताको विस्तार च्यारि अंगुल है लंबाई कूणी ताईं चौदह भाग प्रमाण है। मध्यांगुलितैं द्वादश भाग प्रमाण अन्तर है अरु मध्यांगुलि पंच अंगुल प्रमाण है ॥ १६४ ॥

अनामिका मध्यसुपर्वणार्द्धा प्रदेशनी स्वायततुल्यभागा।
कनीयसी पर्वलघुस्तथाऽत्र पंचांगुलं मूलमधो विशालं ॥ ६५ ॥

मध्यांगुलितैं अर्ध पर्व हीन अनामिका अरु प्रदेशनी अंगुलि अपनी मध्यमासे किंचिन्न्यून भागवारी है अरु कनिष्ठा अंगुलि एक पर्व हीन है अरु हस्तका मूलभाग अर अधोभाग पांच अंगुल हैं ॥ १६५ ॥

अर्धांगुला मध्यमतो विधेया हीना सुतर्जन्यपि योग्यदेशा।
अंगुष्ठयुग्मं चतुरंगुलं स्यादेकांगुलं विस्तृतमत्र साधि ॥ ६६ ॥
द्विपर्वणांगुष्ठधृतिस्तथासां त्रिपर्वणा पुष्टियुता नखानां।
पर्वार्धमानेन तलं करस्य सप्तांशकं पंच सुविस्तृतं च ॥ ६७ ॥
दृढं च बाहुद्वयमुन्नतांशं निःसंधिहस्तिप्रकराकृतिः स्यात्।
लंबौ तथा जानुगतौ सुवीरताख्यापकौ शोभनलक्ष्मभाजौ ॥ ६८ ॥
न चातिनिम्नौ मृदुलौ समौ च निश्छिद्रकौ मांसलरक्तवर्णौ।
उरो वितस्तिद्वयविस्तृतं स्याच्छ्रीवत्ससंभासि सुचूचुकं च ॥ ६९ ॥

अरु तर्जनी मध्यमातैं आध अंगुल हीन है। अरु अंगुष्ठ द्वयही समान च्यारि अंगुल विस्तृत अर एक अंगुल मोटा किंचिदधिक, अरु अंगुष्ठ में दोय ही पर्वको धारणा है अरु ये सर्व अंगुली तीन तीन पर्ववाली अर नखनकी पुष्टिने देनेवारी अरु अर्ध पर्व प्रमाण हस्तका तल, अरु सात अंश लंबा पांच अंश चौडा, अरु बाहुद्वय ऊंचा कांधायुक्त अरु गाढा होय अरु संधिरहित हाथीका सूंडिके आकार होय सो प्रशंसा योग्य है तथा लंबे गोड़ा ताई अपनी सुन्दर वीरपणाके विख्यात करणहारे सुन्दर चिह्नयुक्त होय अर हस्त दोन्यूं समान होय अरु नहीं अत्यंत ऊंडा अर्थात् किंचित ऊंडा होय अरु कोमल होय, अंगुलीका छिद्ररहित होय अरु मांसल होय अर्थात् पुष्ट होय अरु रक्तवर्ण होय सो योग्य है। अरु वक्षस्थल दोय वितस्ति होय, अर्थात् चौईस अंगुलका होय अरु श्रीवृक्षका चिह्नकरि शोभायमान अरु सुन्दर कुचकरि संयुक्त होय ॥ १६६-१६९ ॥

सषट्कपंचाशसमांगुलं तु पुष्टोरसः स्यात्परिणाहदेशः ।
स्तनांतरं तालवितानभाजि युग्मांतरं स्यात्स्तनचूचुकं वै ॥ ७० ॥

अरु वत्तस्थलकी पीठकी चौडाई छप्पन अंगुल होय, अरु स्तनका अन्तर वारह अंगुल होय, दोन्यू अन्तर कुचनिका अग्रभागताइ होय सो योग्य है ॥ १७० ॥

तस्याधरस्तात्तु वितस्तिमात्रं नाभिर्यमावर्त्तमनोहरा च ।
मुखांगुलं रंध्रमथो तदीयं तस्याप्यधोऽष्टांगुलमंतरं स्यात् ॥ १७१ ॥
मेढ्रस्य गुप्ताग्रिमभागकस्य कटिर्विशालाष्टदशांगुला स्यात् ।
हस्तद्वयं तत्परिधिः प्रशस्यः स्फिग् स्यान्मदांगुल्यवधिस्त्रिपर्णा ॥ १७२ ॥
सद्व्यंगुलं लिंगवितानमस्य मूले च मध्येंऽगुलमेकमेव ।
व्यासाच्च नाहस्त्रिगुणास्तथामू त्वक् (?) प्रायसापौतकृतिर्विधेया ॥ १७३ ॥

अरु ता स्तनान्तरके नीचैं एक वितस्तिमात्र दक्षिणावर्त नाभि होय अरु वा नाभिका मुख एकांगुल होय अरु ता नाभिके नीचै आठ अंगुल अन्तर छोडि लिग है, अर वा लिंगका अग्रभाग गुप्त होय अर दोन्याके वीच अर्थात् नाभि अर लिंगका पार्श्व में कटि होय सो अठारह अंगुल प्रमाण होय अरु ता कटिकी परिधि दोय हाथ प्रमाण होय अर पेडू लिंग ऊपरि है सो आठ अंगुल होय तामें तीन रेखाका चिह्न होय, अरु किंचिदधिक दोय अंगुल लिंगका विस्तार होय अरु मूल अथवा मध्यमें एक अंगुल मोटा अरु अंतमें किंचिद् अधिक एकांगुल होय अर विस्तारसे परिधि तीनि गुणी होय है अर पोताका आकार आमकी गुठली समान होय ॥ १७१-१७३ ॥

कुकुंदरौ वाऽपि नितंबदेशौ समांसलग्रंथिकयां वितानौ ।
स्कंधस्य पायोः रसवह्निसंख्यं स्यादन्तरं पृष्ठविभागदेशे ॥ १७४ ॥
वितस्तियुग्मायतमूरुयुग्मं विस्तीर्णतैकादशभिः प्रनुन्ना ।

मूले च मध्ये नवकांगुलं स्यात्त्रिः स्यात्तयोः सत्परिधिप्रतानं ॥ १७५ ॥
जंघाद्वयं वृत्तमथो द्वितालं षडंगुला तत्पिटिका सुमध्या ।
सपादतुर्यांशकगुल्फदेशः पादौ चतुश्चंद्रकलावदातौ ॥ १७६ ॥
सुगूढगुल्फौ शुभचिह्नलक्ष्यौ सदंगुलीयोगविधानदृश्यौ ।
निम्नोन्नतं तत्र तलं प्रदिष्टं सत्र्यंगुलांगुष्ठविभासमानं ॥ १७७ ॥
ऋज्वायतस्य त्विति मार्ग एष पर्यंकसंस्थस्य विशेष उक्तः ।
उत्सेधमूर्ध्वात्परिणाहकार्धं तावत्सुपर्यंकमवस्थितं स्यात् ॥ १७८ ॥
सुबाहुयुग्मांतरिते प्रदेशे तुर्यांगुलं चांतरमाहुरन्ये ।
प्रकोष्ठकात्कूर्परमूलवृद्धं सद्व्यंगुलं सन्निपुणैर्विधेयं ॥ १७९ ॥

अरु कुकुंदराकार अर्थात् वालूका टीवाके आकार नितंब होय सो पुष्ट मांस करि गांठि संयुक्त होय। अरु कांधाका प्रदेशतैं अपानका प्रदेशकैं छत्तीस अंगुल अन्तर पृष्ठकी तरफसे जानौ अरु ऊरु दोन्यू ओर दोय विलस्ति प्रमाण प्रत्येक लंबे अरु विस्तीर्ण ग्यारा अंगुलसे नीचा अरु गोड़ा की तर्फ से मूल अरु मध्यमें नव अंगुल होय, अरु तिगुणी ताकी परिधि होय। अरु दोन्यूं जंघा वृत्त कहिये गोलाकार अरु लंबे दोताल हैं, चौईस अंगुल हैं अरु ताकी पीडी सुन्दर है मध्यभाग जाका ऐसी छह अंगुल होय अरु टिकूरयां किंचित् दृश्य च्यारि अंगुल होय अरु चरण चौदह अंगुल होय। बहुरि वे चरण गूढ़ हैं टिकूरया जाकी अर सुन्दर चिन्हसंयुक्त होंय अर सुन्दर अंगुलीनिकी योजनामें निपुण ऐसे होंय अर वाका तल किंचित् नीचा कहिये ऊंडा अर तीन अंगुल प्रमाण अंगुलीनिकर शोभायमान होय। ऐसें सरल सीधा कायोत्सर्ग प्रतिमाका येह मार्ग कह्या है। अर पद्मासन मूर्तिका कुछ भेद है सो येह ऊंचाईतें मोटाई अर्ध प्रमाण होय दोन्यूं हस्त और चरण ऊपरि नीचे पर्यंकासनमें जैसे अवस्थित है, तैसैं होय। बहुरि याही पर्यंकासनमें दोन्यू भुजानिका अपना पसवाड़ाका अन्तर च्यारि अंगुल प्रमाण कह्या है। अरु अन्य आचार्यनिका ऐसा मत है कि हस्तका पोंहच्यांसे कूणयांकी वृद्धि ताईं दोयही अंगुल अन्तर होय ॥ १७४-१७९ ॥

सल्लक्षणं भावविवृद्धिहेतुकं संपूर्णशुद्धावयवं दिगंबरं ।

सत्प्रातिहार्यैर्निजचिन्हभासुरं संकारयेद्बिंबमथार्हतः शुभं ॥ १८० ॥

या प्रकार श्री अर्हंतका बिंब समीचीन लक्षणसंयुक्त अरु शांतभावकूं बधावनेवारा, संपूर्ण अंगोपांग शुद्ध अरु दिगंबर स्वरूप अष्ट प्राति-हार्यनिकरि संयुक्त अरु अपना अपना चिन्ह करि भासमान कराणा योग्य है ॥ १८० ॥

सिद्धेश्वराणां प्रतिमाऽपि योज्या तत्प्रातिहार्यादिविना तथैव ।
आचार्यसत्पाठकसाधुसिद्धक्षेत्रादिकानामपि भाववृद्ध्यै ॥ १८१ ॥

और सिद्ध परमेष्ठीका प्रतिबिंब भी प्रातिहार्यविना स्थापना योग्य है अरु शुभभावकी वृद्धिके लिये आचार्य परमेष्ठी अरु उपाध्याय अरु साधु अरु सिद्ध क्षेत्र आदिकी प्रतिमा योग्य होय ॥ १८१ ॥

नासाग्रदत्तेक्षणासुगूतादिदोषैरपेतं जिनबिंबमर्ह्यं ।
अंगाधिके हीनतनौ प्रकर्तुर्नाशाय स्यादत एव यत्नः ॥ १८२ ॥

इस प्रकार अपनी नासाग्रदृष्टि अरु क्रूरतादि दोषनिकरि रहित जिन बिंब पूजने योग्य है। अर अंग हीन वा अधिक होय तो कर्ताका अर्थात् पूजकका नाशके अर्थि होय है इस हेतु प्रतिमानिर्माणमें यत्न ही परिपूर्ण श्रेष्ठ है ॥ १८२ ॥

विस्तारतोऽस्य प्रथितुं समीहा चेच्छ्रावकाचारतं ऊहनीयं ।
न मृत्तिकाकाष्ठविलेपनादिजातं जिनेंद्रैः प्रतिपूज्यमुक्तं ॥ १८३ ॥

और इस अंगोपांगकी रेखा चिन्ह आदि विस्तारसे जाननेका इच्छुक होय सो श्रावकाचार मूल अंगसैं विचार करना योग्य है और मृत्तिका काष्ठ अरु चित्राम आदिका जिनबिंब पूज्य नहीं कह्या है ॥ १८३ ॥

अथ प्रतिमानिर्माणमुहूर्त्तः ।

अथ प्रतिमाका निर्माणका मुहूर्त्त कहिये है—

उत्तराणां त्रये पुष्ये रोहिण्यां श्रवणे तथा ।
वारुणे वा धनिष्ठायामार्द्रायां विंबनिर्मितिः ॥ १८४ ॥

अर्थ-उत्तरा तीन पुष्य रोहिणी श्रवण चित्रा धनिष्ठा आर्द्रा सोम गुरु शुक्रमें बिंव बनावना श्रेष्ठ है ॥ १८४ ॥

प्रसन्नमनसा कारुं संतर्ष्य पुष्पवाससैः । तांबूलैर्द्रविणैर्यज्वा कारयेन्नेत्रहृत्प्रियं ॥ १८५ ॥
गुरुपुष्ये तथा हस्तार्यम्णि गर्भोत्सवे शुभान् । निमित्तान्नवलोक्येशप्रतिमानिर्मितिः शुभा ॥ १८६ ॥

सो ऐसैं कि—पूजक प्रथम प्रसन्न मन करि पुष्प वस्त्र तांबूल अर दक्षिणा आदि करि कर्ता सिलावटनैं संतोषित करि अपना नेत्र हृदयको मनोहर ऐसा बिंव करावै तथा गुरु पुष्य योग तथा हस्तार्क योगमें तथा जिस भगवानका बिंव बना होय उस भगवानका गर्भ कल्याणक दिनमें निमित्त शुभसूचक देखि करि प्रतिमा निर्माण योग्य होय ॥ १८५-१८६ ॥

अथ प्रतिष्ठामुहूर्त्ताः ।

अब प्रतिष्ठाके मुहूर्त्त कहिये है—

लग्नस्य शुद्धिमभिधाय सुपंचधाख्यां यां वारयोगतिथिभादिकलग्नशुद्ध्या ।
नैमित्तिकार्थपरिसंकलनैः पुराणोरुक्तां प्रतिष्ठितिविधौ पुरतो विदध्यात् ॥ १८७ ॥
भौमं रविं शौरिमपास्य वाराः सर्वे हि शस्याः किल संस्थितौ च ।
सिद्धामृतादिं परियोज्य रिक्तामभां त्यजन् याति सुसौख्यभावं ॥ १८८ ॥

रिक्तास्वथो योगविशेषसिद्ध्या कार्याणि कुर्यात्सिनिवालिकां च ।
संवर्जयेत्सिद्धियुजं तथापि रुद्रामपि प्रांततिथिं विनेष्टं ॥ १८९ ॥
जिनस्य यस्याव दिने प्रजातं कल्याणकं तन्नियमेन तत्र ।
तस्यास्तु तत्कार्यमथोत्तरायां पुनर्वसूपुष्यकरस्त्रवस्सु ॥ १९० ॥
अंत्येऽपि रोहिण्यजवाजिषु द्राक् चित्रामघास्वातिभगांगमूलं ।
कदाचिदंगीकृतमत्र चान्यत् ग्राह्यं सुनक्षत्रमधीतिवाक्यात् ॥ १९१ ॥

पांच प्रकारकी तिथि वार नक्षत्र योग कर्णरूप दिनशुद्धि है तिसमें भी लग्नशुद्धितें मुख्य करि निमित्तज्ञानीनकरि संकलित ऐसा दिनमें पुराण पुरुषनिकरि कथित ऐसा दिनमें प्रतिष्ठाकी विधिने अग्र विधान करै। अर मंगल दीत शनिवारनिकूं छोड सर्व ही वार संस्थापनमें प्रशंस्य है और सिद्ध अमृत आदि योगनें योजनकरि अमावस्यानै त्यागि कर्ता सुख भावने प्राप्त होय। रिक्ता तिथिके विषै भी योग विशेषकी शुद्धि होय तो कार्य शुभ करै पूर्णिमानै वर्जित करै अर सिद्धि योग भी होय परन्तु एकादशी होय तो वर्जित है तथा मासांत तिथिविना भी इष्ट कहिये है। अर जिस जिनेंद्रका जिस तिथिमें जो कल्याण हुवा होय उस तिथिमें वह कल्याण इष्ट है और उत्तरा पुनर्वसु पुष्य हस्त श्रवण इनमें अरु रेवती में, रोहिणी अश्विनी मे शुभ योग तो ग्राह्य है अरु चित्रा मघा स्वाति भरणी मूला भी कदाचित् आवश्यक कार्यमें अंगीकार किया है अर अन्य भी शुभयोगयुक्त नक्षत्र ज्योतिषीका वाक्यतैं ग्रहण करना॥ १८७-१९१ ॥

विष्कंभमूले शरनाडिका षट् गंडातिगंडे नव वज्रघाते ।
व्यत्यादिपातं परिघं च सर्वं विवर्जयेद् मुक्तिसुखाभिलाषी ॥ १९२ ॥
भूकंपदिग्दाहनरेशमृत्यूनुद्दिश्य घस्त्रत्रयमत्र वर्ज्यं ।
चरेषु विष्टिप्रगतेषु नैवं प्रतिष्ठितिं प्रांचति पूज्यलोकः ॥ १९३ ॥

और विष्कंभ अरु मूलमें प्रथम पांच घड़ी वर्जित है अरु गंड अतिगंडमें छह घड़ी, वज्र अरु घातमें नव घडी वर्जित है और मुक्ति सुखकी वांछावालाने व्यतिपात अरु परिघ सर्व ही वर्जित करना योग्य है। अरु धरतीको कांपिवो अरु दिशाका दाह अरु भूपतिका मरण आदि

उत्पातने उद्देश करि तीन दिन इस प्रतिष्ठामें वर्जनीक है और पूज्य पुरुष इस कार्यकी स्थापनामें चरनक्षत्र अरु विष्टि योगमें होय तो सवथा वर्जित कहे हैं ॥ १९२-१९३ ॥

सूर्येण वा चंद्रमसा कुजेनाष्टम्यंकशल्यानि शुभावहानि ।
बुधेन च द्वादशिका द्वितीया गुरुस्पृशो दिक्शरपूर्णिमाश्च ॥ १९४ ॥

बहुरि सूर्यवारा अष्टमी, सोमवारा नवमी, मंगल वारा तृतीया शुभ होय है। बुधवारा द्वादशी तथा द्वितीया अर गुरुवारयुक्त दशमी, पंचमी, पूर्णिमा होय सो श्रेष्ठ है ॥ १९४ ॥

शुक्रेण षष्ठी प्रतिपत्प्रशस्ता चतुर्थिका वा नवमी शनिस्था ।
सिद्धिं तथा चामृतयोगमुच्चैः प्रशस्तमाहुर्मुनयो निमित्तात् ॥ १९५ ॥

तथा शुक्रवारा षष्ठी वा पड़िवा शुभ है, अरु शनिवार चतुर्थी वा नवमी श्रेष्ठ है। उनमें सिद्धि योग अमृत सिद्धि होय तो मुनीश्वर निमित्तज्ञानतें अतिप्रशस्त कहै हैं ॥ १९५ ॥

सूर्यादितो वा भरणीं च चित्रां तथोत्तराषाढधनिष्ठभं च ।
सदुत्तरां फाल्गुणिकां च ज्येष्ठामन्त्यं तथा जन्मभमेव मोच्यं॥ १९६ ॥

बहुरि सूर्य वारतैं सप्तवारमें अनुक्रम करि भरणी १ चित्रा १ उत्तराषाढ़ा १ धनिष्ठा १ उत्तराफाल्गुनी १ ज्येष्ठा १ रेवती १ त्याज्य है तथा जन्मनक्षत्र भी त्याज्य है ॥ १९६ ॥

दग्धा तिथिः प्रयत्नेन वर्जनीया तथा शुभाः ।
अमृताख्या अत्र योज्याः प्रतिष्ठाया महोत्सवे ॥ १९७ ॥

अर बड़ा प्रयत्नकरि दग्ध तिथि वर्जनीय है तथा शुभ अमृतादि योग ही प्रतिष्ठाका उत्सवमें उचित है ॥ १९७ ॥

क्रूरासन्ने दूषितोत्पातलूता विद्धा दुष्टाः पर्वसन्नोपपाताः ।

वर्ज्याः सर्वेऽसद्ग्रहास्सूर्यवेधो राशिद्रेष्काणर्क्षकांशोऽपि वर्ज्यः ॥ १९८ ॥

तथा क्रूर आसन्न दूषित उत्पात लूता विद्धदुष्ट सन्न उपपात वर्जित है अथवा राशि द्रेष्काण नक्षत्र संबंधी सूर्य वेध भी वर्जित है ॥१९८॥

लग्नात्तृतीये शिवषट्कदेशे भौमो यमश्चापि शनैश्चरोऽपि ।

शुभाय सूर्यो दशमोऽपि सौम्यो मुक्त्वाष्टमं द्वादशमं शुभाय ॥ ९९ ॥

अरु लग्नसैं तीसरे स्थान तथा षट्क स्थान ग्यारैमे स्थान तथा भोम राहु शनेश्चर होय तो शुभ है। अरु दशमे सूर्य श्रेष्ठ है। परन्तु चंद्रमा आठमे तथा बारये नहीं होय तो शुभके अर्थि है॥ १९९ ॥

षष्ठाष्टमं द्वादशकं तृतीयं त्यक्त्वा गुरुः स्याद् शुभदो विधिज्ञः ।

शुक्रो रसाष्टांत्यमुनिस्थितोऽसौ न स्याच्छुभोऽन्यत्र शुभाय बोध्यः ॥ २०० ॥

अरु छठें आठमे तथा वारमे तीसरें नही होय तौ गुरु श्रेष्ठ है। पंचममें गुरु श्रेष्ठ है। अरु छठें आठमे वारमे शुक्र शुभ नहीं, अन्यत्र शुभ होय है ॥ २०० ॥

शशी त्रिरुद्रद्वितये प्रशस्तो यदास्तदौर्बल्यमुपागतो न ।

ताराबलं चात्र विधौ विधेयं त्रिसप्तपंचम्यपराः शुभाय ॥ २०१ ॥

अरु चंद्रमा तीसरे दूसरे ग्यारैमे श्रेष्ठ होय है। जो हीनबली तथा अस्त न होय अथवा तारा बल ही इस विधिमें विधान करनो सो तीसरो पंचमी सप्तमीतैं अन्य होय तौ शुभ होय ॥ २०१ ॥

कृष्णे च ताराबलमत्र शुक्ले सुधांशुवीर्यं नियतं मुनींद्रैः ।

जीवेंदुसूर्योऽस्य बलं प्रधानमन्यद्ग्रहाणामपि निर्बलत्वे ॥ २०२ ॥

अरु कृष्णपक्षमें ताराबल प्रशस्त है। अरु शुक्लपक्षमें चंद्रमाको बल श्रेष्ठ है। अर मुनींद्रने ऐसा कहा है कि अन्य ग्रह निर्बल भी होय तथापि बृहस्पति चंद्र गुरु सूर्य का बल प्रधान निश्चय कियो है ॥ २०२ ॥

अथ प्रतिष्ठामहोद्योगः ।

ऐसे मुहूत कहि, अब प्रतिष्ठाको उत्तम उद्योग कहिये है—

इत्थं मुहूर्त्तं पारिशोध्य सम्यक् राजाज्ञया संघनिमंत्रणार्थं ।
विधानकृत्यस्फुटलेखनांका प्रेष्या पुरः पत्रविनीतरज्जूः ॥ २०२ ॥

प्रतिष्ठाकारक प्रथम ऐसे मुहूर्तका शोधन करि राजाकी आज्ञा लेय सकलसंघ ज्यो मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका समूहकूं निमंत्रणार्थं जिस जिस विधान नियुक्त दिनमें होय उसकी स्फुटता लेखनपूर्वक पत्ररूप विनयपत्रिका-रूप रज्जू प्रेषित करे। रज्जूका कहनेकरि जैसे डोरीसे खेंच लीजिये है तैसे विनयपत्रिका संघकूं खेंचे है ॥ २०३ ॥

आदिष्टिनं सदसि पूज्य विचार्य कार्यं मात्सर्यसंशयितनिस्त्रपवाक्यहीनं ।
पत्रं लतांतमलयादिभिरर्च्य दूरादामंत्रयेद् गुणवतो बहुमानपूर्वं ॥ २०४ ॥

वह कर्ता सभामें आदिष्टी जो आचार्यनें पूजि अरु कार्यनें विचारि मत्सरता संशयता निर्लज्जता वाक्यहीन पत्रने पुष्प चंदनादिककरि पूजि दूरवर्ती गुणवाननें बहुमानपूर्वक आमंत्रित करै ॥ २०४ ॥

सहायान् ब्राह्मणये विधिवदतिथीन् कल्पनिरतान् मरुत्वंतं संतं प्रकृतिविरतं कोशनिरतं ।
परं चान्यं सत्वे सदसि विनियुंज्याद्यजनभृद् धृतौदार्याशंसुः प्रथमपठितार्हच्छ्रुतनुतिः ॥ २०५ ॥

धारण किया है उदारता अरु प्रशंसा जिननें ऐसा यज्ञका कर्त्ता प्रथम अर्हंत अरु शास्त्रका नमन करि विधिपूर्वक यज्ञमें गुरुजनकूं कल्पमें नियुक्त करि उनकूं सहाय मानि अपनी प्रकृति जाननेवाला ऐसा योग्य इन्द्रने तथा कोषाध्यक्षने तथा अन्यने अन्यकार्यमें प्रतिष्ठा-विधानमें नियोजित करै ॥ २०५ ॥

गुरुं नत्वा पृच्छेद् यजनसमनीतांबुधितटं परिप्राप्तुंकामो मुनिवर ! निमित्तानि कथय ।
तदुद्देशे सम्यक्प्रणिधिनिहतात्मप्रतिभया स चाप्यालोकेत श्रितविजनदेशोपवसनः ॥ २०६ ॥

अथ श्रीगुरुसे पूछ है कि हे मुनिवर ! यज्ञका प्राप्त भया है समुद्र पार जिसने ऐसा आचार्य ने नमस्कार करि अपनी बांछाको प्राप्त होनेका इच्छुक मैं हूं, आप इसकार्य का उद्देशमें निमित्तनैं कहो। ऐसे पूछता वह मुनि भी समीचीन चित्तै काग्र-संयुक्त आत्माकी प्रतिभा कहिये युक्ति पूर्वक बुद्धिकरि तिनि निमित्तने आलोकन करे सो एकांत वन आदिमे उपवासका धारण करे ॥ २०६ ॥

अथ तत्समयशकुनावधारण।

भूमौ विधाय परिकर्म चतुष्कमध्ये चक्रं सुकूर्मविधिना परिभाव्य रम्यं।
देवांशसंस्थितिवता खलु सिद्धचक्रं मंत्रं यथोक्तविधिना परिजल्पनीयं ॥ २०७ ॥

अथ ता समय शकुनका अवधारण करे॰वह आचार्य अथवा मुनि भूमिमे ईर्यापथ शुद्धिपूर्वक परिकर्मने करि कूर्मचक्र लिखै। चतुष्क कहिए नियमकरि स्थापन किया चौकामे स्थितिकरि राक्षस मनुष्य देव ऐसा त्रिभागनं जहां देवांश आवै तहां पद्मासन माड़ि सिद्धचक्रयंत्र जो 'ओं ह्रीं अनाहतसिद्धचक्राधिपतये ह्रूं ह्रौ ह्रौ स्वाहा' इस मंत्रका जप करे, पाछै वहां ही शयन करे इहां प्रतिष्ठामें गृहस्थाचार्य हीका प्राधान्य: है। वीत-राग मुनिका क्रियाको कर्तव्यमें मुख्यता नही है। ऐसा भी जान लेना ॥ २०७ ॥

स्वप्ने स्वरांगर्क्षविधाविधिज्ञः प्रातर्जिनाराधनसंस्तवं च।
कृत्वोपदिश्येत यथाध्वरीयं शुभाशुभं यन्निशि लोक्यमानं ॥ २०८ ॥

फिरि वहां स्वप्नमें स्वर अंग नक्षत्र इन भेदनमे निगमन स्फुरण कंपन आदि शुभाशुभ सूचक है तिनकी विधिनैं जाननेवालो प्रभातही उठि जिनेंद्रको पूजन संस्तवन करि जो यज्ञमे शुभाशुभ रात्रिने देखा था सो निवेदन करे ॥ २०८ ॥

गोहस्तिशार्दूलमुनीश्वराणां चंद्रार्यमाम्भोनिधिकल्पभाजां।
शालेयमुक्ताफलपर्वतानां सौख्याय दृष्टिः स्वप्ने नितांतं ॥ ६ ॥

स्वप्नमें बैल, हाथी, सिंह, मुनि तथा चंद्रमा, सूर्य, समुद्र, कल्पवृक्ष तथा चावल, मोती, पर्वत इत्यादिकी दृष्टि पड़ै तो सुख प्राप्ति करे अरु निर्विघ्न कार्य सिद्धि होय ॥ २०६ ॥

समाप्तिकाले मनुजल्पनस्य वामा शुभांका निजनाडिकेष्टा ।
आरंभकाले खलु दाक्षिणाच्यां स्वस्थस्य निर्णीतिकृतो जनस्य ॥ २१० ॥

अर मन्त्रका समाप्ति समयमें अपनी वाम नाडी बहै तो शुभ इष्ट है अर आरंभ समयमें दक्षिण नाड़ी श्रेष्ठ है परंतु इह नियम वात पित्त कफ आदि रोगरहितके अरु स्वर निर्णय करनेवाला जनके होय है ॥ २१० ॥

बाहोः परिस्फूर्तिरुरोनितंबतुंदस्तनानामपि सौख्यपात्रं ।
घस्रे तु नित्यं विपरीतपक्षः स्यादेतदंगस्फुरणे निमित्तं ॥ ११ ॥

अर दक्षिण भुजाका फरकना वा वक्षस्थल अरु नितंब-भाग अरु उदर अरु स्तनका फुरकना भी शुभ है परन्तु दिनमें है। रात्रिमें वामा शरीर ही श्रेष्ठ होय है अर जपमें तथा प्रभातनिमित्तावलोकन समयमें एक कुंभ लग्न विना सर्व ही श्रेष्ठ होय है ॥ २११ ॥

लग्ने विचार्ये सति कुंभवर्ज्यं षष्ठाष्टमे चंद्रमसा वियुक्ते ।
धर्मे गुरौ तद्दशिनापि युक्ते वीर्ये तनौ वा बलवत्प्रदिष्टे ॥ १२ ॥

अरु अन्य लग्नमें चन्द्रमा छठे आठमें नहीं होय अरु दशमभावमें वृहस्पति होय वाकी दृष्टि भी होय अरु लग्न बलवान होय तौ शुभ कहिये ॥ २१२ ॥

तैलसर्पधरणीधरकंपमाक्षिकाक्ततनुकूपनिपाताः ।
यद्यशुद्धशकुनेक्षणलब्धी शांतिकर्म विदधीत तदानीं॥ १३ ॥

अर जो स्वप्नमें तैल सर्प पर्वतका कंपन, अरु स्वहस्तसे लिप्त शरीर यद्वा वनमत्तिकान करि व्याप्त शरीर अरु कुआमें पड़ना इत्यादि अशुभ शकुनका देखना अथवा लाभ होय तो उसी समय शांतिविधान करना ॥ २१३ ॥

अथ यज्ञविधानयोग्यक्षेत्रशुद्धिरुपदिश्यते ।

अब प्रतिष्ठाके योग्य क्षेत्रकी शुद्धि कहिये है—

मनोज्ञवर्णा सुरसा विशाला कार्कश्यवल्मीकशिलादिवर्ज्या ।
दग्धादिदोषै रहिता जलाद्यारामादिसंस्था धरिणी प्रशस्ता ॥ १४ ॥

इस यज्ञमें भूमि ऐसी प्रशस्त है,—मनोज्ञ वर्ण अर्थात् गौरवर्ण सुन्दर रसवती अरु विस्तीर्ण होय अरु कंकर पत्थर बंबी शिला आदि प्राणि-बाधक वस्तु-रहित होय, दग्ध नहीं होय; जल जहां सुलभ होय अरु बाग-बगीचा आदि जहां बहुत होय, ऐसी भूमि प्रशस्त होय है ॥ २१४ ॥

अहो धरायामिह ये सुराश्च क्षमंतु यज्ञाधिकृतिं ददंतु ।
प्रीतिः पुराणा बहुवासयोगात् क्षितावतोऽस्मद्धिनिवेदनं वः ॥ १५ ॥

अर यज्ञकी भूमिमें जब प्रतिष्ठाकी रचना करे, उसके पहली प्रतिष्ठाचार्य वा प्रतिष्ठाकारक भूमिस्थ देव तिर्यंच मनुष्यनि प्रति क्षमापन करै, सो ऐसैं है-अहो! बड़ा हर्ष है, इस स्थानमें देव हैं ते क्षमा करो अरु यज्ञका अधिकार देहु, आपका बहुत कालका इहां निवास है अरु इस क्षेत्रसैं पुरातन प्रीति है, इसी हेतु मैं निवेदन करूं हूं ॥ २१५ ॥

तद्द्वादशांशेषु जिनेंद्रगर्भगृहं तु मध्ये परिकल्पनीयं ।
तत्प्राचि सन्मंडलमुन्नतांगं क्रियाकलापोचितमाविधेयं ॥ १६ ॥

बहुरि उसी भूमिका बारैमा हिस्सामे मध्य जिनेंद्र-गर्भ-गृह करना । अरु ताका पूर्व-मंडप बडा उन्नत जहां विधान होना होय सो करना ॥ २१६ ॥

प्रेक्षागृहं साधनिकागृहं तु तदग्रभूमावपि सव्यपार्श्वे ।
होमाह्वनीयोद्धरणं सुदक्षे पार्श्वे सभा प्रश्नकृतां मनोज्ञा ॥ १७ ॥

अरु जाके अग्र दर्शनार्थी पुरुषनिके वास्तैं द्वितीय मंडप करना, अरु ताका पार्श्वमें सामग्री-संपादन-गृह करना अरु दक्षिणी परवाड़ामें होम आह्वाननादिका उद्धार करना, अरु समीप ही प्रश्न-सभा करना बहुत मनोज्ञ ॥ २१७ ॥

आचार्यशक्रस्थितिरस्य पृष्ठे स्नानासनादीनि तदंतिके च ।
तथोत्तरस्यां जननोत्सवादि दीक्षावनं ज्ञानविभूतिसद्म ॥ १८ ॥

अरु याके पृष्ठ भागमें आचार्य अर इंद्रकी स्थिति करनी, अरु समीप हो स्नान सामयिक आदिकी सभा अर ताके उत्तरमें जन्मोत्सव-सूचक सुमेरु पर्वत रचना अरु ताके अग्र दीक्षावन अरु समवसरण स्थान करना ॥ २१८ ॥

नृत्यालयादिः स्वकयोग्यभूमौ विकल्पनीयं परिणाहभागे ।
गर्भालयात्पश्चिमदिग्विभागे सामग्रिकाकल्पनमग्रभागे ॥ १९ ॥

संप्रेष्यकानामपि नृत्यगीतमतांडवं पुण्यविधानदक्षं ।
मार्गाविदूरा किल दानशाला सद्भेषजागारमपि क्रियावत् ॥ २० ॥

अरु अपनी योग्य दिशामें नृत्य तांडव वादित्र आदिका स्थान बड़ा विशाल स्थानमें करना । अब इनका विधान कहैं हैं कि गर्भगृहका पश्चिमपार्श्व में सामग्रीकी कल्पना अरु अग्रभागमें प्रेक्षक जनोंका स्थान अरु नृत्य गीत तांडव भी सन्मुख करना, अरु तहां पुण्यका विधानमें निपुण ऐसी दानशाला मार्गके समीप किंचित दूर करनी । अर औषधगृह भी क्रियासंयुक्त दानशालाके समीप ही योग्य है ॥ २१९-२२० ॥

निस्तारके धर्मनिरूपणं च पृच्छाश्रुतोद्घोषणवाचनादिः ।
गर्भोत्सवे मातृजनोपवेशः पृथग् नृपागारनिवेशनं च ॥ २१ ॥

अरु निस्तारक जो प्रश्नसभा तिसमें धर्मचर्चा अरु धर्म प्रश्न अर शास्त्रको पठन श्रवण करना, अरु गर्भ कल्याणगृहमें मातृजनोंका निवास होय अरु भिन्न ही राजाका स्थानमें मंडप करे ॥ २२१ ॥

एवं विधिज्ञस्तु यथानुरूपं देशोचितं संविदधीत युक्त्या ।
गर्भालये स्थापनमीश्वराणां वेदीत्रिभूरुर्ध्वविशालमध्या ॥ २२ ॥

या प्रकार विधिने जाननहारो यथायोग्य देशकालोचित रचना युक्तिपूर्वक करै । अर जो गर्भगृह है उसमें प्रतिबिंबनका स्थापन होय अरु वहां वेदी तीन कटिनीकी उर्ध्व-मध्य-अधोरूप विशाल करै ॥ २२२ ॥

तदग्रवेदी चतुरस्त्रकाष्ठकरप्रमाणा सुकुमारिकाभिः ।

सुवासिनीभिश्च सुलिंप्यमाना सन्मृत्स्नया चित्रविचित्रशोभा ॥ २३ ॥

अर ताका अग्रभागमें चौकोर आठ हाथ प्रमाण चोतराके आकार वेदी है सो सुन्दर कुमारिका तथा सुवासिनी स्त्रियां करि शुद्ध मृत्तिका करि लिपी अरु चित्र विचित्र शोभावती करना ॥ २२३ ॥

अपक्वपक्वेष्टिकसंनिवेशा दृढा सिता दर्पणवत्समाना ।

अंतःस्थितैः षोडशभिर्लसद्भिः स्तंभैर्वितानोद्ग्रथितैः प्रयुक्ता ॥ २४ ॥

सो वेदी पक्की तथा कच्ची इटनि करि रची अरु गाढी अरु उज्वल अरु दर्पण समान सम, ऐसी होय। अर ताके भीतर सोलह सुंदर चंद- वाका आधार भूत ऐसे काठके स्तंभनि करि युक्त होय ॥ २२४ ॥

वेद्याः कोणे हस्तिहस्तोच्चवेदस्तंभान् दद्याद् वह्निदिकूतः सचूडान् ।

प्रादक्षिण्यात् पंचमांशं तु भूमौ दद्यादेवं षोडशस्तंभसंस्था ॥ २५ ॥

अरु ता वेदीका कोणमें हाथीकी सूंढि समान ऊंचे ऐसे चार स्तंभ तो अग्निदिशातें देणा, चूडा ऊपर कलश है तिनि संयुक्त होय अरु प्रदक्षिणाकी रीतितें देणा, अरु तहां स्तंभका पांचवां हिस्सा तो भूमिमें गाडना ऐसे षोडश स्तंभनिकी स्थिति कही ॥ २२५ ॥

अथ स्थंडिलशुद्धिप्रकारः ।

अव इहां वेदीकी रचनाकरि ऊपरि मंडल रचना करैं सो ऐसें है—

मध्ये स्थंडिलमुन्नतं शुचिसितस्फाराघ्र्यवासोभृतं, यागोपस्कृतमंडलार्थमभितो वाटीभिरावेष्टितं ।

द्वारैर्दिक्षु विराजितं ध्वजपताकाभिस्ततं सर्वतो राजच्छ्त्रसुचामरादिविभवं प्रेक्षावतां प्रीतिदं ॥२६॥

वेदीका मध्यमें चोंतरो किंचित ऊंचो सुफेद शुद्ध विस्तीर्ण वस्त्र करि ढको, सो यज्ञका उपकारक मंडल निमित्त चोतरफ वाडिकरि वेष्टित

अरु दिशामें द्वारनिकरि शोभायमान अरु ध्वजा अर छोटी धुजानिकरि व्याप्त ऐसा राजचिन्ह छत्रादि चामर सिंहासन आदि हैं संपदा जहां ऐसा दर्शन करनेवारेनके प्रीतिको देनेहारो स्थंडिल करै ॥ २२६ ॥

स्थंडिलं यदि हीनांगं यष्टुर्नाशाय कीर्तितं ।
अधिकं राष्ट्रभंगाय तस्माद् योग्यं प्रकल्पयेत् ॥ २७ ॥

अरु जो स्थंडिल अपनी प्रमाणतासे हीन होय तो यजमानका नाश करे। जो अधिक होय तो राज्यका देशका नाश करे। याही हेतु स्थंडिलने समसूत्रपात करि माप ही करने योग्य है ॥ २२७ ॥

वेदी चतुर्विधा तत्र चतुरस्रा च पद्मिनी ।
श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु ॥ २८ ॥

अर वेदी च्यारि प्रकार है—१ चोकोर, २ कमलके आकार पद्मिनी नामक, ३ श्रीधरी अर्धचन्द्राकार, ३ सर्वतो भद्रा आठ कूटकी, सो दीक्षामें तथा प्रतिष्ठामें करनी ॥ २२८ ॥

चतुरस्रा चतुःकोणा वेदी सौख्यफलप्रदा ।
केचिच्चैत्यप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसंनिभा ॥ २६ ॥

अरु तामें चौकोर बड़ी सुखकी देनहारी आचार्यने बिंबप्रतिष्ठामें पद्मिनी नामक कही है पद्माकार ॥ २२६ ॥

शुभेह्नि लग्नात्प्रथमं तु पक्षादर्वाक् निशीथे यजनस्य कर्ता ।
आचार्यमामंत्र्य तदाज्ञयेंद्रतंत्रः स्वबंधूपस्तृतिं विदध्यात् ॥ ३० ॥

यजनको कर्ता प्रथम एक पक्ष पहिली रात्रिने श्रीआचार्यने आमंत्रणकरि अर ताकी आज्ञाप्रमाण अरु इंद्रने साथि लेय अपना बंधु कुटुंब जनाने बुलावै ॥ २३० ॥

तान्मानयित्वा कुलकामिनीभिः कन्याभिरष्टाभिरलंकृताभिः ।

सन्मंगलोद्गानपवित्रताभिर्वेद्यां तथा स्थंडिलकोपकंठे ॥ ३१ ॥

अर उनको सन्मानकरि कुलवंती शीलवंती स्त्रियां संयुक्त आठ कन्याकरि भूषित होय समीचीन मंगलपाठ स्तोत्रन करि पवित्र अरु भूषण वस्त्रादि संयुक्त कन्याकरि वेदी समीप स्थंडिलमें तिष्ठै ॥ २३१ ॥

चूर्णानि संमर्द्य सितासितानि पीतानि रक्तानि हरिन्निभानि ।
पात्रे निधायार्घ्यमनर्घ्यशील आचार्यभक्तिं प्रपठेद् यतात्मा ॥ ३२ ॥

अरु वहां शुक्लवर्ण, कृष्णवर्ण, अरु पीतवर्ण रक्तवर्ण तथा हरितवर्ण के चूर्णनको पीसकरि पात्रमें स्थापनकरि यजमान स्वच्छ-स्वभावी यजमान हुवो संतो आचार्यभक्तिने पढै ॥ २३२

अत्राचार्यभक्तिश्रुतभक्त्यर्हद्भक्तिनिर्वाणयोगभक्त्योऽनुपदमेव वक्ष्यमाणास्ततोऽत्र सर्वत्रान्नेयाः ।

इहां आचार्यभक्ति श्रुतभक्ति अर्हद्भक्ति निर्वाणभक्ति पाठ करना जरूर है सो आचार्य ग्रंथकर्ता समीप ही कहेंगे, तातैं सर्वत्र जहां जैसी भक्ति पाठका कार्य होय तहां तैसी ग्रहण करि लेना ।

अथ गुर्वाज्ञालंभनविधिः ।

अब प्रथम गुरुकी आज्ञाको लाभको विधान कहिये है, सो ऐसे है—

पुष्पाक्षतैर्मौक्तिकदामभिस्तान् सर्वान् समापृच्छ्य मृदुस्वभावात् ।
रात्रिं समां जागरणव्रतेन नयेत्स्वयं मांगलिकानुभावः ॥ ३३ ॥

स्वयं आप मंगलाचरणकर्ता व सर्व बंधुजन अथवा कन्या अथवा सुवासिनी आदिकूं पुष्पाक्षतादिक मौक्तिक मालानकरि कोमल स्वभावतैं सत्कार-युक्तकरि समस्त रात्रिने जागरण व्रतकरि व्यतीत करै ॥ २३३ ॥

प्रातर्गृहीत्वा गुरुपूजनार्घ्यं वादित्रनादोल्वणयात्रया सः ।
गुरूपकंठे नतमस्तकेन भूमिं स्पृशन् वाक्यमुपाचरेत्तत् ॥३४॥

निर्हेतुबंधो ! सुकृतानुभावात् संप्राप्तजन्मा सुकुले सुगोत्र ।
नरत्वमासाद्य यथार्यदेशे क्षेत्रेऽथ काले जिनधर्ममाप ॥ ३५ ॥

न्यायेन पित्रा धनमर्जितं मे मह्यं प्रदत्तं च मयार्जितं यत् ।
तदात्मनीनं कतिचिद्विधं स्त्रीपुत्राद्यनुज्ञातमुपस्पृशामि ॥ ३६ ॥

यजमान प्रभात समय गुरु-पूजननिमित्त अर्घने पात्रमें लेय नानाप्रकार वादित्रनको बजाय यात्राकरि प्रतिष्ठाचार्य वा मुनि समीप मस्तक नमाय पृथ्वीने स्पर्श करतो संतो बीनती करे कि—हे अकारण बांधव ! मैं कोई पूर्वोपार्जित पुण्यका प्रभावतें सुंदरकुलमें शुभगोत्रमें जन्म प्राप्त भयो हूं अरु आर्यदेशमें इस क्षेत्रमें मनुष्यभव पाय इह जिनधर्म प्राप्त भया। अरु न्यायोपाय करि जो मेरा पिताने धन उपार्जन किया अर मेरा अर्थि दिया तथा मैंने उपार्जन किया सो धन आत्महितकरि अरु स्त्री-पुत्र-मित्रादि करि आज्ञा दियो ऐसो कितनेक संख्यावानने सुकृतार्थ लगायो चाहूं हूं ॥ २३४-२३६ ॥

जानामि लक्ष्मीं कुलटां तथाहि स्त्रीपुत्रमित्राणि वियोगभांजि ।
आयुश्चलं नश्वरमेव गात्रं वियोगमूला परिषद्विभूतिः ॥ ३७ ॥

अरु स्वामिन् तथाप्रकार मैं या लक्ष्मीनैं कुलटा स्त्रीवत् जानूं हूं । अर स्त्री-पुत्र-मित्रनकूं वियोगके भजनवारे जानूं हूं । अर आयुकू चंचल अर शरीरकूं विनश्वर जानूं हूं अर परिवार संपदाकूं वियोगमूल जानूं हूं ॥ २३७ ॥

चक्रेश्वराणां महनीयसंपदपेक्षया मे कतिधानुभूतिः ।
यथांबुधेः कूपजलं कियद्वा शक्रः क्व वा मे प्रचरत्सहायः ॥ ३८ ॥

अर चक्रवर्ती आदिकी महर्द्धि विभूति ही स्थिर नहीं तौ इसकी अपेक्षाकरि तो मेरे कितनीक संपदा है सो स्थिर हो ? जैसे समुद्रका जल की अपेक्षा कूपका जल कितनाक होय ? तथा मागधादि कृतमालदेव पर्यंत देव जिसकी सहायता करैं, तिसकी अपेक्षा मेरे अप्रतिहत सहाय कौन है ; अर्थात् नहीं है ॥ २३८ ॥

तथापि मेऽर्हत्स्तवनाभिलाषा वर्वर्ति हास्यानुपबृंहणाय ।
अतो जनोऽयं भवदाज्ञयैव शास्यो भवेच्चेत्सुकृते समिच्छेत् ॥ ३९ ॥

तथापि हे स्वामिन् ! मेरे अरहंतका पंचकल्याणकी कर्तव्यताका अभिलाषा वत है, सो हास्यका अनुपबृंहणाके कि वृद्धिके अर्थि है सो यो मैं सारिखो जन आपकी आज्ञा मात्रही सहाय पाय शिक्षा करने योग्य हूं यदि तो कल्याण पावूं हूं ॥ २३९ ॥

यस्त्रैधहेतुः कृतकारितानुमोदव्यवस्थाप्रसराद् विधत्ते ।
पुण्यांकुरं मोक्षफलप्रसूतिं बिंबं जिनेंद्रस्य निवेशनीयं ॥ ४० ॥

अर जे पदार्थ तीन प्रकार मन वचन-कायसे हेतुरूप है, सो निश्चय करि कृत-कारित-अनुमतिकी व्यवस्थाका प्रचारतें पुण्यका अंकुरने अर मोक्षरूप फलकी प्रसूतिने देवे हैं। सो जिनेंद्रका बिंब है, सो ही निवेशन किया चाहू हूं ॥ २४० ॥

इंद्रादिभिश्चक्रधरादिभिर्वा न शक्यमिष्टार्थविधानमुच्चैः ।
तत्कल्पना काचिदपि त्वदीयपादाब्जभृंगाय निवेदनीया ॥ ४१ ॥

अरु यो इंद्रादि चक्रवर्ति पर्यंतन करि प्रार्थित करिये तो सो विधान उच्चप्रकार इष्ट अर्थका विधानमें समर्थ नहीं होय है तातें ताकी कल्पना अनिर्वचनीय है। आपका चरणारविंदका भ्रमर समान मेरे अर्थि संबोधित होने योग्य है । २४१ ॥

पिपासुना सौधसरो निदाघे ग्रीष्माकुलश्चाम्रतरुं दरिद्रः ।
निधिं समाश्रित्य सुखी न किं स्यात्तथा भवद्दृष्टिपथानुयायी ॥ ४२ ॥

जैसे ग्रीष्मऋतुमें तृषाकुल पुरुष है सो अमृत समान मिष्ट सरोवरकूं तथा ग्रीष्माकुल पुरुष आम्रका वृक्षकूं तथा दरिद्र पुरुष है सो निधिकूं आश्रित होय सुखी न होय कहा ? अपि तु होय ही होय; तैसे आपका दृष्टिपथका शरणग्राही सुखी ही होय ॥ २४२ ॥

एवंविनीतेन समर्थितोऽपि गुरुः प्रमाणीकृतसंस्तवादिः ।
सामर्थ्यसाकल्यविधिं प्रशस्य निश्छद्मना तं प्रतिबोधमीयात् ॥ ४३ ॥

ऐसे विनीत यजमानकरि प्रार्थनारूप कियो ऐसो अरु प्रमाणीकृत कहिये अंगीकृत कियो है संस्तवादि जानैं असा प्रशंसनीय गुरु इ सो हू अपनी समर्थता अरु यज्ञ-सामग्रीकी विधि कूं निष्कपट भावकरि वा यजमानकूं प्रतिबोध करे ॥ २४३ ॥

अहो नितांतं जनकोटिमध्ये एकेन धन्येन धनं वृषार्थे ।
वितीर्यते तत्र च सत्प्रतिष्ठाविधौ जिनानामुदये प्रकर्षे ॥ ४४ ॥

सो ऐसेकि वड़ा हर्ष है कोडि मनुष्यनिमें कोई एक धन्य पुरुषने अपना अतिशय धनकूं धर्मनिमित्त वितीर्ण कीजिये है कि दीजिये है अरु तहां भी उदयकरि उत्तम ऐसा जिनेश्वरकी प्रतिष्ठाका विधानमें अर्थात् ऐसा उत्तम कार्यकी कहा कहानी ? ॥ २४४ ॥

प्रधानभव्येषु सहस्रकोटिमनस्विचित्तेषु विवृद्धमिष्टं ।
पुण्यांकुरं तत्स्वकुलांशुमांस्त्वं प्रशंसनीयः किमु वाक्प्रभेदैः ॥ ४५ ॥

इस प्रतिष्ठाकूं पुण्य-कार्यमें अतिउत्तमता दिखावै हैं कि, हे भव्य ! तुमने कोटि सहस्र मनस्वीनका चित्तमें अरु प्रधान भव्यनिमें वांछित पुण्यको अंकुर वृद्धिने प्राप्त कियो, तातैं तुम अपना कुलको प्रकाशक सूर्य हो और वचनका प्रवंचन कहा ? ॥ २४५ ॥

तुभ्यं परं स्वस्ति मयाऽभ्यधायि व्रतं गृहाणाखिलकर्मसिद्धयै ।
पूर्वं गृहीतेष्वभिवृद्धिपुष्टिर्यथाभवेत्त्वं कुरु तत्तथैव ॥ ४६ ॥

इस हेतु मैं तेरे अर्थि उत्कृष्ट कल्याण विधान कियो । अव समस्त कर्मकी सिद्धिके अर्थि तू व्रत ग्रहण कर, अरु पूर्वव्रत ग्रहण किया, तिनमें तेरे वृद्धि अरु पुष्टि होउ तथा तैसे होउ ॥ २४६ ॥

यावत्प्रतिष्ठासमयावतीर्णो न स्यादपब्रह्मचतुःकषायाः ।
अन्यायभुक्तिर्वसनाशनानां वर्ज्या त्रिकालं समताग्रहेण ॥ २४७ ॥

अरु यावत् प्रतिष्ठा समयसे पारंगत न होय, तावत् कुशील-सेवन अरु क्रोध-मान-माया लोभ अरु अन्य सजातीयके भोजन अरु अन्यका वस्त्र भोजन ग्रहण करना वर्जनीक हो अरु त्रिकाल सामयिकको ग्रहणसहित होउ ॥ २४७ ॥

अन्यायसर्वस्वकुभुक्तिकुत्सामिथ्याप्रलापादिविमोचनं च ।
पूर्वं प्रयोगेष्वतिचारमृष्टिः स्वतस्तवास्त्येव किमर्थमन्यैः ॥ ४८ ॥

अरु अन्याय सर्व धन, कुभोजन, निंदा- मिथ्याप्रलाप आदिको त्यागकर, अर पूर्व प्रयोग ग्रहण किये हैं तिनमें अतीचारकी मृष्टि कहिये साग स्वतः ही तेरे है। अन्य कार्यन करि कहा है ? ॥ २४८ ॥

इत्याद्यभिप्रायवशादुदीर्य व्रतगृहः सद्गुरुणोपदेश्यः ।
मंत्रेण बद्धांजलिमस्तकाभ्यां यज्वेंद्रकाभ्यामपरैर्विधार्यः ॥ ४९ ॥

इत्यादि अभिप्रायका वसतें उदीरित करि व्रतका ग्रहण है सो गुरुनै उपदेश करना योग्य है अरु मन्त्रपूर्वक बांधी है अंजुली जाम ऐसा मस्तकसंयुक्त यजमान अरु इंद्र जे है तिनने तथा अन्यने वो उपदेश धारण करने योग्य है ॥ २४९ ॥

ओं ह्रीं अर्हं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमक्षकं दृढव्रतं समारूढं भवतु स्वाहा यावत्कलासमाप्तिस्तावदर्थितभंगेन पालयितव्यमिति मन्त्रेण व्रतदानं कुर्यात् ॥

मंत्र ये है— ओं ह्रीं अर्हं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमक्षकं दृढव्रतं समारूढं भवतु भवतु स्वाहा ॥

याका अर्थ—श्री अर्हंत आदि पांच परमेष्ठीकी साक्षीनें व्रत किया सो गाढ तेरे होइ। ऐसे नियम यावत्कार प्रतिष्ठा विधिकी समाप्ति न होइ तावत् ग्रहण करावै।

इत्थं वदंतं प्रणिपत्य भक्त्या स्वीयं कृतार्थं ननु मन्यमानः ।
अभ्यर्च्य पुष्पांजलिना स वोर्वीं नयेत्करिस्यंदनयानवाह्यं ॥ ५० ॥

अपनेकूं कृतार्थ मानता यजमान या प्रकार बोलतो गुरु जो है ताहि भक्ति करि नमस्कार करि अरु पुष्पांजलि आदि करि पूजि हस्तीका रथरूप वाहन करि जहां प्रतिष्ठाकी भूमि है ता-प्रति ले जावे ॥ २५० ॥

अथ नांदीविधानं।

अथ नांदी विधान कहिये है——

अथोपनीतेऽध्वरसंनिवेशस्थले समागत्य पुरंध्रिगानैः।
वादित्रनादैः परिपूरिताशं नांदीविधानं पुरतो विधत्ताम्॥ ५१॥

अब पवित्र रूप यज्ञकी संस्थान भूमिमें महासुंदर स्त्रीनका गीतन करि तथा वादित्रनका शब्द करि सर्व दिशा व्याप्त होते संते श्रीजिनाग्रे नांदीविधान जो है ताहि करना योग्य है ॥२५१॥

शाल्यक्षतैः कुंकुमकर्दमाक्तैर्विधाय नंद्यावर्तमर्जितांशे।
वेद्यां कृतार्घ्यं मणिदर्पणस्रग्वस्त्रावृतं सत्कलशं निवेशयेत्॥ ५२॥

प्रथम वेदीमें देवांश भागमें शालिके अक्षत केशरि चंदन करि लिप्त ऐसेनिकरि नंद्यावर्त नामक सांथिया रचि अरु वहां अर्घ देय मणि-रत्न दर्पण माला वस्त्रनिकरि समीचीन कलशकूं निवेशन करै॥ २५२॥

रक्तवस्त्रफलदामभूषिते वेदिकांतरितभूतले शुचौ।
स्वस्तिके मणिसुवर्णशालिजैर्निर्मिते कुलवधूभिरादरात्॥ ५३॥

कहां निवेशन करे सो कहैं हैं—रक्तवर्ण वस्त्र अरु फूल मालानिकरि भूषित अरु शुद्ध वेदिकाके मध्य भूतलमें मणि रत्न शालि सुवर्ण पुष्पनि करि कुलवंती स्त्रीनि करि आदर पूर्वक रचित ऐसा स्वस्तिकमें स्थापन करे॥ २५३॥

इंद्रमध्वरकृतं सुचंदनैः कुंकुमाक्ततिलजैः सतीर्थगैः।
अंबुभिः कलशधारिधारया स्नापयेदवभृतार्थमंजसा॥ ५४॥

अरु तहां चन्दन कुंकुम करि व्याप्त तिल करि युक्त तीर्थके जल करि कलश धारा करि यज्ञका कार्यमें इंद्र संज्ञक पुरुषने अर यज्ञकर्ता यजमानने अग्रिम क्रियाविशेष वास्तै स्नान करावे॥ २५४॥

स्वस्तिमंत्रपरिपाठनपूर्वमाशिषां ततिमवाप्य हितार्थी ।
श्रोत्रियेण विहितक्रियया‌ऽमू यज्ञयोग्यपरिकर्मभृतौ स्तः ॥ ५५ ॥

या प्रकार स्वस्ति मन्त्रनका पठन पूर्वक गुरुदत्त हितकारी आशीर्वादका समूहने प्राप्त होय करि आचार्यकरि करी क्रिया करि इंद्र अरु यजमान ये दोन्यू प्रतिष्ठाका योग्य कार्यमें सावधान होय है ॥ २५५ ॥

ओं ह्रीं अर्ह अ सि आ उ सा णमो अरहंताणं सप्तर्द्धिसमृद्धगणधराणां अनाहतपराक्रमस्ते भवतु । ह्रीं नमः । अनेन मंत्रेण स्नातयोरुपरि पुष्पाक्षतक्षेप आचार्येण कार्यः ।

अभिषेकका मन्त्र या प्रकार है—ओं ह्री अर्हं अ सि आ उ सा णमो अरहंताणं सप्तर्द्धिसमृद्धगणधराणं अनाहतपराक्रमस्ते भवतु भवतु ह्री नमः ॥

अर्थ—श्री पंचपरमेष्ठी अरु णमोकार अनादि सिद्ध मंत्र अरु सात ऋद्धिके धारक गणधरदेवके साक्षी अतुल पराक्रम तेरे होउ ॥ या मन्त्र करि इंद्र यजमान इनि दोन्यू परि आचार्य पुष्प अक्षत क्षेपे ।

आर्या

उपवासमेकभक्तं तद्दिवसे संविधाय भावनया ।
त्रैषष्टिस्मरणकथानिपुणः पंक्त्यां तु वर्जयेद्‌ भोज्यं ॥ ५६ ॥

उस दिन इंद्र यजमान उपवास तथा एक वखत भोजन करि तथा त्रेसठ सलाका पुरुषनिकी कथा करि अपना भाई पुत्र आदिकी पंक्तिमें भोजन वर्जित करे ॥ २५६ ॥

तत्प्रभृति सोऽपि याजकवर्यो मघवाऽऽज्ञया गुरुदिशा विचरेत् ।
दानाध्ययनपरार्थिषु भक्त्या चेहानयेत्संघं ॥ ५७ ॥

ता दिनसे सो यजमान इंद्रकी आज्ञा करि गुरुकी परिपाटीका उपदेश करि दान अध्ययन परोपकार विषैं प्रवर्त तथा संघकूं बुलावे २५७॥

यद्वंश्यतीर्थकरबिंबमुदीर्य संस्था मुख्या तदीयकुलगोत्रजनिप्रवेशात् ।
संवृत्तगोत्रचरणप्रतिपातयोगादाशौचमावहतु नोद्यभवप्रशस्तं ॥ ५८ ॥

अथ मंत्रः

अरु जिस वंशमें भयो तीर्थंकरका बिंबने उद्देश करि मुख्य प्रतिष्ठा होय ताही वंशका कुल गोत्र अरु जन्म इनका प्रवेशतैं अवार प्रवर्तमान गोत्र अरु आचरणकी निवृत्तिका योगतैं वर्तमान भव गोत्र कुलमें प्राप्त भया अशौचकूं नहीं धारण करे ॥ भावार्थ-जिस दिन नांदी अभिषेक भया ता दिनसे वर्तमान कुलको सूतक तथा सूवो नहीं माने है ॥ २५८ ॥

ओं तत्सदद्य योगभक्तिसिद्धभक्तिस्वस्तिवाचनपूर्वकमंत्राभिषवकर्मणि अस्य यजमानस्य इक्ष्वाक्वादिवंशे श्रीऋषभनाथादिसंताने काश्यपगोत्रे परावर्तनं यावदध्वरं भवतु भवतु क्रौं ह्रीं ह्रं नमः इत्युक्त्वा यजमानस्य पट्टबंधं इन्द्रस्य मुकुटबंधं च क्रियादाचार्यः ।

याका मन्त्र—ओं तत्सदद्य ·· ·॥ याका अर्थ—संवत्सर मास तिथि नक्षत्र वारादि तथा देशकालादि उच्चारण करि योगभक्ति सिद्धभक्ति अरु स्वस्ति वाचन पूर्वक जो इंद्र नांदी अभिषेक कर्ममें अमुक यजमानको इक्ष्वाकु आदि वंशमें श्री ऋषभनाथ आदिका संतानमें काश्यपगोत्रमें परावृत्ति होऊ। यावत यज्ञ समाप्ति न होय तावत ऐसे कहि यजमानकूं पट्टबंध तथा इंद्रके मुकुटबंध आचार्य करे।

तस्मिन् क्षणे तन्महतीपुरस्तात् चतुर्विधं वाद्यगणं प्रशस्य ।
स्थाप्यं तदीशान् पुरुचारुवस्त्रैः सन्मानयेत्तत्र विधौ नियुज्यात् ॥ ५९ ॥

अर ताही क्षण उस उत्सवमें मंडप वेदीके चहुं तरफ च्यार प्रकार जो तत वितत घन सुषिर-रूप जो वादित्र गणने प्रशंसित करि स्थापन करनो अरु ताके स्वामीनिको प्रचुर सुंदर वस्त्रादिकरि ता प्रतिष्ठा विधिमें नियोजित करे ॥ २५९ ॥

एवं नांदीविधानेन कृतारंभक्रियो नरः ।
सन्मंगलपुरस्कारैः सौख्यभागी भवेत्सदा ॥ ६० ॥

ऐसे नांदी विधान करि जो प्रतिष्ठाकी प्रारंभक्रिया करे सो पुरुष समीचीन मंगल अगवाणी करि सदा सुखकों भागी होय है ॥ २६० ॥

अथ ग्रन्थान्तरोपनिबद्ध आचार्यादिभक्तिपाठ उल्लिख्यते ।

*अब यहां दूसरे ग्रंथसे उद्धृतकर आचार्यादि भक्ति पाठ लिखते हैं उनमेंसे सबसे प्रथम यहां सिद्ध भक्तिका उल्लेख करते हैं—

असरीरा जीवघना उवजुत्ता दंसणेय णाणेय ।
सायारमणायारा लक्खणमेयंतु सिद्धाणं ॥ १ ॥

अर्थ—जिनके कोई शरीर नहीं है, जो अनत दर्शन अनंत ज्ञानसे संयुक्त हैं, अंतिम शरीरके सदृश आकारवाले होकर भी निराकार हैं वे परमात्मा सिद्ध भगवान हैं ॥ १ ॥

मूलोत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का ।
मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणा तीदसंसारा ॥ २ ॥

ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके बंध उदय और सत्त्व सबसे जो रहित हैं, सम्यक्त्व आदि आठ निजी गुणोंसे भूषित हैं, जो संसारके आवागमन वा जन्म मरणसे विमुक्त हैं वे मंगलमय सिद्ध भगवान हैं ॥ २ ॥

अट्ठवियकर्मविघडा सीदीभूता णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किंदिकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥ ३ ॥

जो आठ प्रकारके कर्मोंसे विमुक्त हैं, निरंजन नित्य हैं, अष्ट गुणोंसे भूषित हैं, कृतकृत्य हैं, और लोकके अग्रभागपर विराजमान हैं वे सिद्ध परमेष्ठी हैं ॥ ३ ॥

सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्धबुद्धी य लद्धिसब्भावा ।
तिहुअणसिरिसेहरया पसियंतु भडारया सव्वे ॥ ४ ॥

---

* भाषाटीकाकारने इन ७ गाथाओंका अर्थ नहीं लिखा है इसलिये इनका अर्थ हम लिख देते हैं ।—संपाद

जिनके अष्ट कर्मोंसे जायमान समस्त मल नष्ट हो गये हैं, जिनका ज्ञान विशद-निर्मल है, और जो तीनोंलोकोंके मुकुट मणिके समान हैं वे समस्त सिद्ध परमेष्ठी प्रसन्न हों ॥ ४ ॥

गमणागमणविमुक्के विहडियकम्मपयडिसंघारा ।

सासहसुहसंपत्ते ते सिद्धा वंदियो णिच्चं ॥ ५ ॥

जिनका गमनागमन नष्ट होगया है समस्त कर्म प्रकृतियोंको जिन्होंने चूर्ण कर दिया है और जिन्होंने शाश्वत सुख पालिया है उन सिद्ध भगवानकी सदा वंदना करनी चाहिये ॥ ५ ॥

जयमगलभूदाणं विमलाणं णाणदंसणमयाणं ।

तइलोइसेहराणं णमो सदा सव्वसिद्धाणं ॥ ६ ॥

जो जयमंगल रूप हैं, निर्मल हैं, दर्शनज्ञान मय हैं, तीनोलोकोंके मुकुट हैं, उन भगवानको सदा नमस्कार हो ॥ ६ ॥

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवग्गहणं ।

अगुरुलघु अव्वावाहं अठ्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ ७ ॥

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु, अव्याबाध ये सिद्धोंके आठ गुण हैं ॥ ७ ॥

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।

णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥ ८ ॥

जो किसी भी तपसे सिद्ध हुये हैं, किसी भी नयसे सिद्ध हैं, जो किसी भी संयमसे सिद्ध हुये हैं, जो किसी भी चारित्रसे सिद्ध हुये हैं और जो चाहें जिस ज्ञान दर्शनसे सिद्ध हुये हैं सब सिद्ध भगवानोंको मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥ भावार्थ—समस्त ही जीव यद्यपि यथाख्यात चारित्र, और केवल ज्ञान पाकर ही सिद्ध होते हैं तथापि भूतप्रज्ञापन नयकी अपेक्षासे उनके तप चारित्र आदिमें भेद किया जासकता है अर्थात् तपश्चर्या ग्रहण करते समय तेरहवे गुणस्थानसे पहिले उनके तप आदि में भेद था ही। इसलिये सिद्ध भगवानोंमें उक्त श्लोकसे भेद बतलाया गया है ॥ ८ ॥

इच्छामि भंते सिद्धभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचरित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्ममुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमच्छयम्मि पयड्ढियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचरित्तसिद्धाणं तीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं । इति पूर्वाचार्यानुक्रमेण भावपूजास्तवसमेतं कायोत्सर्गं करोमि ॥

मैं अभीष्टार्थ कहता हूं—सिद्ध भक्ति करताहूं, कायोत्सर्ग सहित मैं सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्रसे युक्त, आठो कर्मोंसे मुक्त, आठ गुणोंसे सहित, ऊर्ध्वलोकपर विराजमान, तपःसिद्ध, नयसिद्ध, चारित्रसिद्ध, सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र सिद्ध, और भूत भविष्यत वर्तमान तीनो कालवर्ती समस्त सिद्ध परमेष्ठियोंको वंदना करता हू, नमस्कार करता हूं। हे भगवन्! मेरे दुःखका क्षय हो, कर्मोंका क्षय हो, बोधिलाभ हो, सुगतिकी प्राप्ति हो, समाधिमरणकी प्राप्ति हो, और जिनेंद्र भगवानके गुणोंकी संपत्ति मुझे मिले। मैं पूर्वाचार्योंकी परंपरासे चले आये क्रमसे भावपूजास्तवसहित कायोत्सर्ग करता हूं ॥

अथ श्रुतभक्तिः ।

अब श्रुतभक्ति कहते हैं—

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशांगं विशालं
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगणवृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफलं ज्ञेयभावप्रदीपं
भक्त्या नित्यं प्रवंदे श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ॥ १ ॥

श्री अर्हत भगवानने जिस शास्त्र का उपदेश दिया है, गणधर देवने जिसको बारह अङ्गों में रचा है, जिसका विशाल गभीर अर्थ है, जिसे

ज्ञानी मुनिगणोंने धारण किया है, जो मोक्षका प्रधान द्वार है, जिसके पठन पाठन से व्रत चरणरूप फल मिलता है, जो ज्ञेय—पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें दीपकके समान है, उस समस्त संसारके सारभूत श्रुत को मैं भक्तिपूर्वक बंदन करता हूं ॥ १ ॥

जिनेंद्रवक्त्रप्रविनिर्गतं वचो यतींद्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः ।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्यहं श्रुतं ॥ २ ॥

जिस श्रुतका प्रादुर्भाव श्रीजिनेंद्र भगवान की दिव्य ध्वनिसे हुआ, और उसके वाद श्रीमद् इन्द्रभूति प्रभृति गणधर देवोंने जिसको सुनकर प्रकाशित किया उस बारह प्रकारके श्रुतको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंच पदं नमामि ॥ ३ ॥

जिस श्रुतमें एकसौ बारह करोड तिरासी लाख अट्ठावन हजार पांच ११२८३५८००५ पद हैं उसको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

अंगबाह्यश्रुतोद्भूतान्यक्षराण्यक्षरात्मये ।
पंचसप्तैकमष्टौ च दशाशीतिं समर्चये ॥ ४ ॥

पूर्वश्लोक में पदसंख्या जो कही गई है वह अङ्गप्रविष्ट श्रुत की है और इस श्लोकसे अङ्गबाह्यकी संख्या बतलायी जाती है—मैं अङ्गबाह्य श्रुतके आठ करोड एक लाख आठ हजार एकसौ पचहत्तर ८०१०८१७५ पदोंको पूजता हूं ॥ ४ ॥

अरहतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥ ५ ॥

जिसको अरहंत भगवानने उपदेशा, गणधर देवोंने जिसका सम्यक्तया ग्रंथन किया, उस श्रुतज्ञानरूपी महोदधि को मस्तक नमाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

इच्छामि भंते सुदभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अंगोवंगपइण्णयपाहुडपरियम्मसुत्तपढ-

माहिल्लाय पुव्वगय चूलिया चेव सुत्तत्थयत्थुइधम्मकहाइयं सुदं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णम-
स्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

मैं अभीष्टार्थ कहता हूं मैंने श्रुतभक्ति करनेके लिये कायोत्सर्ग किया है। उस श्रुतको,—जो अङ्ग उपांग प्रकीर्णक प्राभृत परिकर्म सूत्र पूर्वगत चूलिका धर्मकथा आदि रूप है, उसको, सदा पूजता हूं, नमस्कार करता हूं, वंदना करता हूं, (हे श्रुत) मेरे दुःखका नाश हो जाय, कर्मोंका क्षय हो जाय, बोधिकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन हो, सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, समाधिमरण मिले, और जिनेंद्र भगवानके गुणोंकी संपत्ति मुझे प्राप्त हो।

अथ चारित्रभक्तिः।

अब चारित्रभक्ति कही जाती है—

ससारव्यसनाहतिप्रचलिता नित्योदयप्रार्थिनः
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपानमुच्चैस्तरा-
मारोहंतु चरित्रमुत्तममिदं जैनेंद्रमोजस्विनः ॥ १ ॥

जो संसारके भयानक दुःखोंसे घबडा उठे है, जो अविनाशी सुखकी प्राप्ति चाहते हैं, जिनको बहुत ही थोडे समय बाद मुक्ति मिलनेवाली हैं, जिनकी श्रेष्ठ बुद्धि है, जिनके पाप शांत हो गये है, ऐसे उत्तम तेजस्वी प्राणी उस जिनेंद्र भगवानसे उपदिष्ट चारित्रको धारण करते हैं जो चारित्र मोक्ष महलमें पहुंचनेके लिये अनुपम विशल सोपानस्वरुप है ॥ १ ॥

तिलोए सव्वजीवाणं हियं धम्मोवदेसणं।
वड्ढमाणं महावीर बंदित्ता सव्ववेदिनं ॥ २ ॥

तीनो लोकोंमें सब जीवोंका हितकारक एक सर्वज्ञ महावीर भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म ही है ॥ २ ॥

घाइकम्मविघातत्थं घाइकम्मविणासिणा ।
भासियं भव्वजीवाणं चारित्तं पंचभेददो ॥ ३ ॥

उन घातिया कर्मोंके नष्ट करने वाले भगवानने भव्यजीवोंको घातिया कर्म नष्ट करनेके लिये पांचप्रकारके चारित्रका उपदेश दिया है ॥३॥

सामायियं तु चारित्तं छेदोवट्ठावणं तहा ।
तं परिहारविसुद्धिं च संयमं सुहमं पुणो ॥ ४ ॥
जहाखायं तु चारित्तं तहाखायं तु तं पुणे ।
किच्चाहं पंचहाचारं मंगलं मलसोहणं ॥ ५ ॥

वह चारित्र—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, और यथाख्यात वा तथाख्यात भेदसे पांच प्रकारका है और यह पांचों प्रकारका चारित्र पापका नाशक मंगलमय है ॥ ४-५ ॥

अहिंसादीणि वुत्तानि महव्वयाणि पंच य ।
समिदीओ तदो पंच पंचइंदियणिग्गहो ॥ ६ ॥
छब्भेयावासभूसिज्जा अण्हाणत्तमचेलदा ।
लोयत्तं ठिदिभुत्तिं च अदंतवणमेव च ॥ ७ ॥
एयभत्तेण संजुत्ता रिसिमूलगुणा तहा ।
दसधम्मा तिगुत्तीओ सीलाणि सयलाणि य ॥ ८ ॥
सव्वे वि य परीसहा वुत्तुत्तरगुणा तहा ।
अण्णे वि भासिया संता तेसिंहाणीमयेकया ॥ ९ ॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और निःसंगता ये पांच महाव्रत, पांच समिति, पांचों इन्द्रियोंका निग्रह, छह प्रकारके आवश्यकोंका पालन,

भूमि शयन, अस्नान (स्नान नहीं करना) विवस्त्रता, (नग्न रहना) लोच, (केशलोच) स्थितिभोजन (खडे होकर भोजन लेना) अदन्तधावन (दांतोन न करना) एकभुक्ति (एकवार आहार लेना) ये मुनियोंके अट्ठाईस मूल गुण हैं ।

उत्तम क्षमादि दश धर्म, मनोगुप्ति आदि तीन गुप्ति, समस्त प्रकारकेशील और वाईस परिसहका जय ये उत्तर गुण हैं इसीप्रकार अन्य भी मूल गुणों के सहायक उत्तर गुण है ॥ ६—९ ॥

जइ रागेण दोसेण मोहेण णदरेण वा ।
वंदित्ता सव्वसिद्धाणं सजुहा सामुमुक्खुण ॥ १० ॥ (?)

संजदेण मए सम्मं सव्वसंजमभाविणा ।
सव्वसंजमसिद्धीओ लब्भदे मुत्तिजं सुहं ॥ ११ ॥

समस्त प्रकारके संयम पालन करनेवाले तपस्वीको समस्त प्रकारकी संयमकी सिद्धि होती है और मुक्तिसुख प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसासंजमो तओ ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ १२ ॥

धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है, और वह अहिंसामय संयम तप है जिसका उक्त धर्म में सदा मन लगा रहता है उसको देव भी नमस्कार करते हैं ॥ १२ ॥

इच्छामि भंते चारित्तभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ सम्मणाणजोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स सव्वपहाणस्स णिव्वाणमग्गस्स संजमस्स कम्मणिज्जरफलस्स खमाहरस्स पंचमहव्वयसंपण्णस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पंचसमिदिजुत्तस्स णाणज्झाणसाहणस्स समयाइपवेसयस्स सम्मचारित्तस्स सदाणिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खखओ कम्मखओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

मैं अभीष्ट कहता हूं। चारित्र भक्ति करता हूं। उसकी आलोचनामें सम्यग्ज्ञानसे युक्त, सम्यग्दर्शनसे अधिष्ठित, सबमें प्रधान, मोक्षके मार्गस्वरूप, कर्मोंकी निर्जरा करनेवाले, क्षमाके धारक, पांच महाव्रतोंसे संपन्न, तीन गुप्तियोंसे सहित, पांच समितियोंसे भूषित, ज्ञानध्यान के कारण, सम्यक् चारित्रको सदा मैं पूजता हूं, वंदना करता हूं, नमस्कार करता हूं, (हे सम्यक्चारित्र!) मेरे दुःखोंका नाश हो, कर्मों-का क्षय हो, बोधिकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन हो, मुझे समाधिमरण मिले और जिनेंद्र भगवानकेसे गुणों की संपत्ति प्राप्त हो॥

अथ आचार्यभक्तिः।

अब आचार्यभक्ति कही जाती है—

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलत्थिं मे णिच्चं॥ १॥

देश कुल जातिसे शुद्ध, विशुद्ध मन वचन कायसे संयुक्त हे आचार्य तुम्हारे चरण कमल इस संसारमें मेरा सदा कल्याण करें॥ १॥

सगपरसमयविदूण्हु आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता।
सुसमच्छा जिणवयणे विणएसुताणुरूवेण॥ २॥
बालगुरुबुड्ढसेहे गिलाणथेरेयखमणसंजुत्ता।
अट्ठावयग्गअणे दुस्सीले चावि जाणित्ता॥ ३॥
वयसमिदिगुत्तिजुत्ता मुत्तिपहे ठावया पुणो अणो।
अज्झावयगुणणिलया साहुगुणेणावि संजुत्ता॥ ४॥
उत्तमखमाइपुढवी पसणभावेण अच्छंजलसरिसा।
कम्मिंधणदहणादो अगणी वाऊ असंगादो॥ ५॥

गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुनिवसहा ।
एरिसगुणणिलयाणं पायं पणमामि सुद्धमणो ॥ ६ ॥

जो आचार्य महाराज समस्त शास्त्रोंके पारगामी हैं, बाल वृद्ध रोगी आदि समस्त मुनियोंसे सहित उनके अपराधोंको जानकर पुनः चारित्र में दृढ़ करने वाले हैं, व्रत समिति गुप्तियोंसे मंडित हैं, उपाध्यायके गुणोंसे भूषित हैं, साधुके गुणोंसे मंडित हैं, जो क्षमा धारण करनेमें पृथ्वीके समान है, प्रसन्नतामें निर्मल जलसे पूरित सरोवरके तुल्य है, कर्म रूपी ईंधनको जलानेमें अग्निके समान है वायुके समान निःसंग हैं, आकाशके समान निर्लेप—परिग्रहरहित है, समुद्र के समान अक्षोभ्य गंभीर हैं, उन आचार्य महाराजके चरण कमलोंको शुद्ध मनसे नमस्कार करता हूं ॥ २—६ ॥

संसारकाणणे पुण बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं ।
णिव्वाणस्स दु मग्गो लद्धो तुम्हं पसाएण ॥ ७ ॥

हे आचार्य ! इस संसाररूपी भयानक जंगलमें भटकते हुये भव्यजीवोंने आपके प्रसादसे ही मोक्षका मार्ग प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

अविसुद्धलेसरहिया विसुद्धलेसेहिं परिणदा सुद्धा ।
रुद्दट्ठे पुणचत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता ॥८॥

हे आचार्य ! आप अविशुद्ध लेश्याओंसे रहित हैं, विशुद्ध लेश्याओंसे भूषित हैं, रौद्र और आर्तध्यानसे मुक्त हैं, और धर्म्य तथा शुक्ल ध्यानसे संयुक्त हैं ॥ ८ ॥

ओग्गहईहावायाधारणगुणसंपएहिं संजुत्ता ।
सुत्तत्थभावणाए भावियमाणेहिं वंदामि ॥ ९ ॥

जो आचार्य महाराज अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणारूप गुणोंसे संयुक्त है, श्रुतार्थकी भावनासे भावित है उन्हें मैं नमस्कारका करता हूं ॥ ९ ॥

तुम्हे गुणगणसथुदि अयाणमाणेण जं मए वुत्ता ।
दिंतु मम बोहिलाहं गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं ॥ १० ॥

हे आचार्य महाराज ! मुझ अज्ञानीने जो आपके गुणोंकी स्तुति की है वह गुरुभक्ति होनेके कारण मुझे बोधिलाभ दे ॥ १० ॥

इच्छामि भंते आइरियभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

मैं अभीष्ट अर्थ कहता हूं। आचार्य भक्ति करनेके लिये कायोत्सर्ग करता हूं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्रसे भूषित, पंच प्रकारके आचार पालनेवाले आचार्योंको श्रुत ज्ञानके उपदेशक उपाध्यायोंको, रत्नत्रयके पालनमें निरत रहने वाले सर्व साधुपरमेष्ठियोंको सदा पूजता हूं, नमस्कार करता हूं, हे आचार्य महाराज ! मेरे दुःखोंका नाश हो, कर्मोंका क्षय हो, बोधिकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन हो, समाधिमरणकी प्राप्ति हो, और मुझे जिनेंद्र भगवानके गुणोंकी संपत्ति मिले ॥

इस प्रकार आचार्य भक्ति पूर्ण हुई।

अथ योगभक्तिपाठः ।

अब योगभक्ति कही जाती है—

थोसामि गणधराणं अणयाराणं गुणेहिं तच्चेहिं ।
अंजुलिमउलियहत्थो अहिवंदंतो सविभवेण ॥ १ ॥

मैं मुनिराजोंके समस्त गुणोंसे अलंकृत गणधर महाराजको मस्तक पर हाथ लगाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

सम्मं चेव य भावे मिच्छाभावे तहे व बोद्धव्वा ।
चइऊण मिच्छभावे सम्मम्मि उवट्ठिदे बंदे ॥ २ ॥

जोवके सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दो प्रकारके भाव होते है उनमेसे जिनके मिथ्यात्वभाव छूटकर शुद्ध सम्यक्त्वभाव—सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया है उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

दोदोसविप्पमुक्के तिदंडविरदे तिसल्लपरिसुद्धे ।
तिण्णियगारवरहिए तियरणसुद्धे णमस्सामि ॥ ३ ॥

जो रागद्वेषसे विप्रमुक्त हैं, त्रिदंडसे विरत है, तीनों शल्योंसे शुद्ध है, जो तीन गारव दोषोसे रहित है, और जो त्रिकरणसे विशुद्ध हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

चउविहकसायमहणे चउगइसंसारगमणभयभीए ।
पंचासवपडिविरदे पंचेंदियणिज्जदे बंदे ॥ ४ ॥

जिनके चारो कषाय कृश होगये हैं, जो चार प्रकारके संसारमें भ्रमण करनेसे भयभीत हैं, जो पांचों पापोंसे विरत हैं, जिन्होंने पांचों इंद्रियोंको जीत लिया है उन्हें मै वंदना करता हूं ॥ ४ ॥

छज्जीवदयावण्णे छडायदणविवज्जिये समिदभावे ।
सत्तभयविप्पमुक्के सत्ताणभयंकरे बंदे ॥ ५ ॥

जो सदा षड् कायके जीवोंपर दया करते है, छह अनायतनसे जो रहित हैं, जो शांत हैं, सात प्रकारके भयोंसे मुक्त हैं, समस्त प्राणियोंको अभय देनेवाले है उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

णट्ठमयट्ठाणे पणट्ठकम्मट्ठणट्ठसंसारे ।
परमट्ठणिट्ठिमट्ठे अट्ठगुणट्ठीसरे बंदे ॥ ६ ॥

जिनके अष्टकर्म नष्ट होगये हैं, संसार जिनका छूट गया है, जो परमपदमें विराजमान हैं, और जो आठ गुणोंके ईश्वर हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥

णवबंभचेरगुत्ते णवणयसब्भावजाणगे बंदे ।
दसविहधम्मट्ठाई दससंजमसंजुदे बंदे ॥ ७ ॥

जो नव प्रकारके ब्रह्मचर्यको पालते हैं, जो नय सद्भावके ज्ञाता हैं, जो उत्तम क्षमादि दश प्रकारके धर्मके पालक हैं, दशप्रकारके संयमसे संयुक्त हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

एयारसंगसुदसायरपारगे बारसंगसुदणिउणे ।
बारसविहतवणिरदे तेरसकिरयापडे बंदे ॥ ८ ॥

जो द्वादश अंगरूप श्रुत समुद्र के पारको पहुंच गये हैं, बारह प्रकारके तप करनेमें रत हैं, त्रयोदश प्रकारके चारित्रको पालते हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

भूदेसु दयावण्णे चउ दस चउदस सुगंथपरिसुद्धे ।
चउदसपुव्वपगब्भे चउदसमलवज्जिदे बंदे ॥ ९ ॥

जो समस्त जीवोंपर दया करते हैं, चौवीस प्रकारके परिग्रहसे रहित हैं, चौदहपूर्वके पाठी हैं, और चौदह प्रकारके मलसे रहित हैं उन्हें मैं बंदना करता हूं ॥ ९ ॥

बंदे चउत्थभत्तादिजावछम्मासखवणिपडिपुण्णे ।
बंदे आदावंते सूरस्स य अहिमुहट्ठिदे सूरे ॥ १० ॥

जो मुनिराज वेला तेला आदि छह मास तकके उपवासोंको करते हैं, जो सूर्यके सन्मुख खड़े होकर तप तपते हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥

बहुविहपडिमट्ठाई णिसेज्जवीरासणोज्झवासीयं ।
अणिट्ठु अकुडुंबदीये चतदेहे य णमस्सामि ॥ ११ ॥

जो बहुत प्रकारके प्रतिमायोगसे तप तपते हैं, जो वीरासन आदिको माडकर देहमें ममत्व छोड ध्यान धरते है उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ११ ॥

ठाणियमोणवदीए अब्भोवासी य रुक्खमूलीय ।
धुदकेसमंसु लोमे णिप्पडियम्मे य बंदामि ॥ १२ ॥

जो तपस्वी मौनधारण कर आतापन योग धारण करते हैं, वृक्षके नीचे ध्यान धरते हैं, उन निष्प्रतिकर्मयुक्त मुनिराजोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥

जल्लमललित्तगत्ते बंदे कम्ममलकलुसपरिसुद्धे ।
दीहणहणमंसु लोये तवसिरिभरिए णमस्सामि ॥ १३ ॥

जिन मुनियोंका शरीर कर्ण नेत्र आदि अंगोंके मलसे तथा पसीनासे तो संयुक्त है परंतु जो कर्ममलसे परिशुद्ध होरहे है, जो समस्त परिग्रहसे मुक्त है परंतु तपलक्ष्मीसे भूषित हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥

णाणोदयाहिसित्ते सीलगुणविहूसिये तवसुगंधे ।
ववगयरायसुदट्ठे सिवगइपहणायगे बंदे ॥ १४ ॥

जो मुनिराज समस्त शीलके गुणोंसे भूषित हैं, तपसे वेष्टित है, ज्ञानवान् हैं, रागद्वेषसे विमुक्त है जो मोक्ष मार्गमें स्थित है उन्हें मैं बंदना करता हूं ॥ १४ ॥

उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे य घोरतवे ।
बंदामि तवमहंते तवसंजमइट्ठिसंपत्ते ॥ १५ ॥

जो मुनिराज तपकी अतिशयरूप उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप, घोरतप ऋद्धिसे विभूषित हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ १५ ॥

आमोसहिएखेलोसहिएजल्लोसहिय तवसिद्धं ।
विप्पोसहिए सव्वोसहिए बंदामि तिविहेण ॥ १६ ॥

जो योगी आमर्षौषधि, क्ष्वेलौषधि, जल्लौषधि, विडौषधि, सर्वौषधि ऋद्धिके धारी हैं, उन्हें मैं मनवचनकाय तीनोंसे नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥

अमयमुहधीरसथी सव्वी अक्खीण महाणसे बदे ।
मणवत्तिवचंवलिकायवणिणो य बंदामि तिविहेण ॥ १७ ॥

जो तपस्वी अमृतस्रावी, मधुस्रावी, घृतस्रावी, रसस्रावी, तथा अक्षीण महानस ऋद्धियोंके धारक हैं उन्हें मैं मन वचन काय तीनोंसे नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥

वरकुट्ठवीयबुद्धी पयाणुसारीयसमिणसोयारे ।
उग्गहईहसमत्थे सुतत्थविसारदे बंदे ॥ १८ ॥

जो मुनिराज कोष्ठस्थधान्योपम, एकवीज, पादानुसारित्व, संभिन्नश्रोतृत्व इन चार प्रकारकी बुद्धि ऋद्धिके धारक हैं, अवग्रह ईहामें समथ हैं, श्रुतार्थमें विशारद हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥

आभिणिबोहियसुदई ओहिणाणमणणाणि सव्वणाणीय ।
बंदे जगप्पदीवे पच्चक्खपरोक्खणाणीय ॥ ६ ॥

जो मुनिगण आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान ऋद्धियोंके धारक ह उन प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानसे भूषित जगतके दीपकोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥

आयासततुजलसेढिचारणे जंघचारणे बंदे ।

विउव्वणइड्ढिहाणे विज्जाहरपण्णसमणे य ॥ २० ॥

जो मुनिराज आकाशगामिनी ऋद्धिसे संयुत है, तन्तु जल श्रेणी पर विना जीवबाधा पहुंचाये चलनेकी ऋद्धिसे भूषित हैं, जो जंघाओं द्वारा आकाशमें गमन करनेकी शक्तिवाले है उन्हें मैं नमस्कार करता हूं ॥ २० ॥

गइचउरंगुलगमणे तहेव फलफुल्लचारणे वंदे ।
अणुवमतवमहंते देवासुरवंदिदे वंदे ॥ २१ ॥

पृथ्वीसे चार अंगुल ऊंचे रह कर गमन करने की सामर्थ्य रखने वाले, फल फूलको किसी भी प्रकार बाधा न पहुंचाकर चलने की ऋद्धि वाले, अनुपम तपके तपने वाले और सुर असुरोंसे वंदनीय मुनिराजोंको मैं नमन करता हूं ॥ २१ ॥

जियभयजियउवसग्गे जियइंदियपरिसहे जियकसाये ।
जियरायदोसमोहे जियसुहदुक्खे णमस्सामि ॥ २२ ॥

जिन्होंने समस्त प्रकारके भय जीत लिये है, जो समस्त उपसर्गोंको जीतते हैं, जिन्होंने इंद्रियोंपर विजय करलिया है, जो समस्त परिषहों को जीतते हैं, जिन्होंने कषायोंपर विजय करलिया है, राग द्वेष मोहको जीत लिया है, जो सुखदुःखको समान समझते हैं, उन योगिराजोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ २२ ॥

एवमए अभित्थुआ अणयारा रायदोसपरिसुद्धा ।
संघस्स वरसमाहिं मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥ २३ ॥

इस प्रकार जिन मुनिराजोंकी मैंने स्तुति की है वे यद्यपि रागद्वेषसे सर्वथा शुद्ध है तो भी संघके लिये श्रेष्ठ समाधि और मेरे लिये दुःखोंका नाश करें ॥ २३ ॥

इच्छामि भंते जोगभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अड्ढाईजजीवदोससुद्देसु पण्णरसकम्म-भूमीसु आदावणरुक्खमूल अब्भोवासठाणमोणवीरासणेकवासकुक्कडासणचउत्थपरकरक्खवणादिजोग-

जुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंस्सामि दुक्खक्खय कम्मक्खय बोहिलहोई सुगइगमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥ २५ ॥

इति योगभक्तिपाठः ।

अब इष्ट प्रार्थना करता हूं । योग भक्ति करता हूं कायोत्सर्ग धारण करता हूं, उसकी आलोचनामें मैं आतापन वृक्षमूल अभ्रोवास, स्थान, मौन, वीरासन, एकवास, कुक्कुटासन आदि योगोंसे युक्त समस्त साधुओंको सदा पूजता हूं बंदना करता हूं, नमस्कार करता हूं । मेरे दुखोंका क्षय, कर्मोंका क्षय हो, वोधिलाभ हो, सुगतिमें गमन हो, सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो, समाधिमरण हो, और मुझे जिनेंद्र भगवानके गुण प्राप्त हों ॥

इसप्रकार योगभक्ति पाठ समाप्त हुआ ।

एवं यत्र यस्या भक्तेरावश्यकता तत्र अस्मात् पाठो हितेच्छुना विधेयः, पश्चात सर्वत्रांते कायोत्सर्गादिराचार्येणेंद्रेण वा तत्तत्क्रियावता करणीय इति दिक् ।

इस प्रकार जहां जिस भक्तिकी आवश्यकता हो, उस जगह वह पाठ इस ग्रन्थसे हित चाहनेवाले आचार्य अथवा इंद्रको अथवा अन्य उचित क्रिया करनेवालेको पढना चाहिये और पाठके वाद सर्वत्र अंतमें कायोत्सर्ग धारण करना चाहिये ॥

अथ निर्वाणभक्तिपाठः ।

अब निर्वाणभक्ति पाठ कहते हैं—

तद्यथा।—इच्छामि भंते परिणिव्वाणभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थसमयस्स पच्छिमे भागे आहुट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णखत्ते पच्चूसे भयवदोमहादि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिंगदो तीसुवि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसिय कप्पवासिय त्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण

पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति परिणिव्वाणमहाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इहसंतो तत्थ मत्ताइ णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि बंदामि णमंस्सामि परिणिव्वाण महाकल्लाणपुज्जं करेमि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइ-गमणं सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं । इति पूर्वाचार्यानुक्रमेण कर्मक्षयार्थं भावपूजाभाव-बंदनासमेतं कायोत्सर्गं करोमि इति तत्तत्क्रिया निष्ठापनीया । अन्योऽपि पाठः क्रियासंपत्त्यै कर्मनिर्जरायै च कार्यः प्रामाणिकः । इत्थं निर्वाणभक्तिः ।

वह इस प्रकार है—

इष्ट प्रार्थना करता हूं । निर्वाण भक्तिमें कायोत्सर्ग करता हूं । उसकी आलोचना यह है कि—इस अवसर्पिणीके चतुथ कालके अंतिम भागमें आठ मास हीन चार वर्ष समय रह गया उस समय पावा नगरीमें कार्तिक मासको कृष्ण चतुर्दशीको रात्रिको स्वाति नक्षत्रके उदयमें प्रातःकाल श्रीमहावीर वर्द्धमान मुक्तिको प्राप्त हुये इसलिये उस समय तीनो लोकोंके भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी चारो प्रकारके देव सपरिवार दिव्य गंध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य वस्त्र, दिव्य स्नानसे सदा पूजन करते हैं, वंदना करते है, परिनिर्वाण कल्याणकी पूजन करते है, उसी प्रकार मैं भी यहां रह कर ही उस समय जिनेंद्र भगवान को सदा पूजा करता हूं, वंदना करता हूं, नमस्कार करता हूं औ परिनिर्वाण कल्याणकी पूजन करता हूं । मेरे दुःखोंका क्षय हो, कर्मोंका नाश हो, बोधिकी प्राप्ति हो, सुगतिमें गमन, सम्यक्त्वकी प्राप्ति, समाधिमरणका लाभ हो और मुझे जिनेंद्र भगवानकेसे गुणोंकी प्राप्ति हो ।

इसप्रकार पूर्वाचार्योंके अनुक्रमसे कर्मोंके नाशार्थं भावपूजा वंदनासहित मैं कायोत्सर्ग धारण करता हूं । इसके बाद जिस जिस क्रियाके अंतमें यह पाठ पढा जाय वह समाप्त करनी चाहिये ।

इसीप्रकारके अन्य भी प्रामाणिक पाठ क्रियाकी पूर्णता और कर्मोंकी निर्जराके लिये करने चाहिये ।

या प्रकार मूल-ग्रन्थकर्ता ग्रंथांतरसैं प्रबंधित आचार्यादि भक्तिका पाठ लिख्या, याका अर्थ नहीं लिखा; अन्यत्र पाइए है इस वास्तै । अरु पूर्वाचार्यननै मंत्रनविषैं अर क्रियानमैं अधिक शक्ति कही है। अर इन विना अन्य भी उपयोगी पाठ जप स्तव आदि हैं सो क्रियाकी पुष्टिनिमित्त तथा कर्म-निर्जरार्थं करना जो प्रमाणीक होय; सो ।

अथ वेदीप्रतिष्ठा।

अब वेदीनकी प्रतिष्ठा कहिए हैं,—

मुहूर्त्तसिद्धौ कृतसिद्धभक्तिर्विलिख्य यंत्र सुविनायकाख्यं।
छत्रत्रयं सिद्धमुनीश्वरर्द्धिश्रुतानि संस्थाप्य चरेत्सपर्याम् ॥ २६१ ॥

ऐसैं पूर्वोक्त मुहूर्तनकी सिद्धि होतेसंतैं करी है सिद्ध भक्ति जानैं ऐसो यजमान वा इंद्र है सो आगैं कहैंगे ऐसा विनायक नामक यंत्रनैं विलेखन करि अरु तीन छत्र अरु सिद्ध अरु मुनीश्वरांकी ऋद्धिनैं अरु श्रुतदेवतानैं स्थापित करि पूजानैं रचै ॥ २६१ ॥

प्रत्यूहनिर्णाशविधौ प्रसिद्धं गणेंद्रवक्त्राम्बुजगीतकीर्तिम्।
यंत्रं पुरापूजितमत्र नेयं पात्रे लिखित्वाऽपि कृतार्चनादि ॥ २६२ ॥

इहां वेदीमैं यजमाननैं सर्व विघ्ननका नाशमैं प्रसिद्ध अरु गणधरादि करि गाई है कीर्ति जाकी अरु पहली ही प्रतिष्ठा प्राप्त भया ऐसा यंत्रनैं ल्यावना योग्य है। यदि ऐसा यंत्र नहीं मिले तौ पात्रमैं चंदनादिकसैं लिखिकर भी अर्चन करना ॥ २६२ ॥

ओं जय जय जय, निस्सही, निस्सही, निस्सही, वर्धस्व, वर्धस्व, वर्धस्व, स्वस्ति, स्वस्ति, स्वस्ति, वर्द्धतां जिनशासनं। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमोलोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं, अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहुमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो [illegible]मो सरणं पव्वज्जामि।

अब अनादिसिद्ध मंत्रका अर्थ कहैं हैं—

ॐ जयवंते वर्तौ, ॐ जयवंते वर्तौ, ॐ जयवंते वर्तौ। मैं निःसहाय हूं, मैं निःसहाय हूं, मैं निःसहाय हूं। वृद्धिकूं प्राप्त होउ, वृद्धिकूं

प्राप्त होउ, वृद्धिकूं प्राप्त होउ ॥ जिनशासन सदा वृद्धिगत होउ ॥ अरहंतके अर्थि नमस्कार होउ। सिद्धनकूं नमस्कार होउ। आचार्यनकूं नमस्कार होउ। उपाध्यायनिकूं नमस्कार होउ। ईं लोकमैं सर्वसाधु है, तिनकूं नमस्कार होउ ॥ अर चार मंगल होउ। श्रीअरहंत मंगल होउ। अर सिद्ध मंगल होउ। साधु मंगल होउ। अर केवलीकरि प्रणीत धर्म है सो मंगल होउ ॥ अर च्यारि लोकोत्तम हैं। श्रीअरहंत लोकोत्तम है। सिद्ध लोकोत्तम है। साधु लोकोत्तम है। अर केवली करि प्रणीत धर्म है सो लोकोत्तम है ॥ च्यारिकी शरण प्राप्त हूं। श्रीअरहंतकी शरण प्राप्त हूं। सिद्धनकी शरण प्राप्त हूं। साधूनकी शरण प्राप्त हूं। अर केवली-प्रणीत धर्म है ताकी शरण प्राप्त हूं ॥ ऐसैं अनादिसिद्ध मंत्रका अर्थ है।

ओमद्य वेदीमंडपप्रतिष्ठायां, तत्शुद्धयर्थं भावशुद्धये पूर्वं आचार्यभक्तिश्रुतभक्तिपूर्वं कायोत्सर्गं करोम्यहं।

'ॐ अद्य' कहिए इस अवसर वेदीमंडपकी प्रतिष्ठामें, ताकी शुद्धिके अर्थि अरु भावनकी शुद्धिके अर्थि प्रथम आचार्यभक्ति अरु श्रुतभक्ति पूर्वक मैं कायोत्सर्ग करूं हूं ॥

अथ यंत्रपूजा।

अब यंत्र पूजा कहै है—

परमेष्ठिन् ! मंगलादित्रय विघ्नविनाशने।
समागच्छ तिष्ठ तिष्ठ मम सन्निहितो भव ॥ २६३ ॥

हे पंच परमेष्ठी हो ! हे मंगल लोकोत्तम शरण ! इहां आवहु, तिष्ठहु तिष्ठहु, मेरे समीप होउ ॥ २६३ ॥

ओं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपरमेष्ठिन् ! मंगल लोकोत्तम !! शरणभूत !!! अत्रावतर अवतर संवौषट् (आह्वाननं), अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनं), अत्र मम संनिहितो भव भव वषट्। (संनिधिकरणं)।

स्वच्छैर्जलैस्तीर्थभवैर्जरापमृत्यूग्ररोगापनुदे पुरस्तात् ।

अर्हन्मुखान् पंचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २६४ ॥

निर्मल अरु तीर्थसैं उत्पन्न ऐसे जलनि करि जरा अपमृत्यु अर रोग इनिका नाशके अर्थि अग्रभागमें अर्हत हैं मुख्य जिनमें ऐसे पंच-पद-रूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप है तिननैं मैं पूजूं हूं ॥ २६४ ॥

ऐसैं मंत्र पढ़ि जलधारा देवै—

ओं ह्रीं अद्य बिंबप्रतिष्ठोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तम-शरणेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ जलं ॥

सच्चंदनैर्गंधहृतालिवृंदचित्तैर्हिमांशुप्रसरावदातैः ।

अर्हन्मुखान् पंचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २६५ ॥

गंध करि हरया है भ्रमर-समूहका चित्त जिननैं अरु चंद्रमाका प्रसर कहिए किरण तत्समान निर्मल ऐसे चंदन करि, 'अरहंत' हैं मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप हैं तिननैं मैं पूजूं हूं ॥ २६५ ॥

ऐसैं मंत्र पढ़ि चंदन चढ़ाना—

ओं ह्रीं अद्य बिंबप्रतिष्ठामहोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोको-त्तमशरणेभ्यश्चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ चंदनं ॥

सदक्षतैर्मौक्तिककांतिपाटच्चरैः सितैर्मानसनेत्रमित्रैः ।

अर्हन्मुखान् पचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २६६ ॥

मोतीनकी कांतिकूं हरनेवारे, स्वेत, अरु मन अर नेत्र इनकूं प्रिय, ऐसे समीचीन अखंडित अक्षतन करि अरहंत है मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप हैं तिननै मैं पूजूं हूं ॥ २६६ ॥

ऐसैं मंत्र पढ़ि अक्षतका पुंज करना—

ओं ह्रीं अद्य विंबप्रतिष्ठामहोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तमशरणेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा । अक्षतम् ।

पुष्पैरनेकैरसवर्णगंधप्रभासुरैर्वासितदिग्वितानैः ।
अर्हन्मुखान् पंचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २६७ ॥

रस वर्ण गंध इन करि देदीप्यमान अरु सुगंधित किया है दिशाका समूह जिननैं, ऐसे अनेक पुष्पनि करि 'अरहंत' हैं मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप है तिनने मैं पूजू हूं ॥ २६७ ॥

ऐसैं मंत्र पढ़ि पुष्पांजलि देना—

ओं ह्रीं अद्य विंबप्रतिष्ठामहोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तमशरणेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा । पुष्पं ।

नैवेद्यपिंडैर्घृतशर्कराक्तहविष्यभागैः सुरसाभिरामैः ।
अर्हन्मुखान् पंचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २६८ ॥

बहुरि घृत शर्करा करि व्याप्त है हविष्यान्न भाग जिनविषैं अरु सुन्दर रसकारि मनोज्ञ, ऐसे नैवेद्यकी पंक्तिनकरि 'अरहंत' है मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप है तिनने मैं पूजू हूं ॥ २६८ ॥

ऐसैं मंत्र पढ़ि नैवेद्य स्थापन करना—

ओं ह्रीं अद्य विंबप्रतिष्ठामहोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तमशरणेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा । नैवेद्यं ।

आरार्तिकैरत्नसुवर्णरुक्मपात्रार्पितैर्ज्ञानविकाशहेतोः ।
अर्हन्मुखान् पञ्चपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २६९ ॥

रत्ननिका अरु सुवर्ण-चांदीका पात्रमें स्थापित किये, ऐसे आरार्तिक दीपन करि ज्ञान प्रकाशनका हेतुतैं 'अरहन्त' हैं मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठीका शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप हैं तिनने मैं पूजू हूं ॥ २६९ ॥

ऐसैं दीपन करि आरती उतारनी—

ओं ह्रीं अद्य बिंबप्रतिष्ठोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तम-शरणेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा । दीपं ।

आशासु यद्धूमवितानमूर्द्धं तैर्धूपवृंदैर्दहनोपसर्पैः ।
अर्हन्मुखान् पंचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २७० ॥

सर्व दिशानमैं श्रेष्ठ धूमकौ समूह फैलायौ ऐसा अग्निमैं क्षेपे धूपका समूह करि 'अरहंत' हैं मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगलरूप है तिनने मैं पूजू हूं ॥ २७० ॥

ऐसैं मंत्र पढ़ि धूप क्षेपना—

ओं ह्रीं अद्य बिंबप्रतिष्ठोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तम-शरणेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा । धूपं ।

फलैरसालैर्वरदाडिमाद्यैर्हृद्घ्राणहार्यैरमलैरुदारैः ।
अर्हन्मुखान् पंचपदान् शरण्यान् लोकोत्तमान्मांगलिकान् यजेऽहं ॥ २७१ ॥

सुन्दर सरस मनोज्ञ फल आदि हृदय अरु नासिकाकूं प्रिय अरु प्रचुर अनेक फलनि करि 'अरहंत' हैं मुख्य जिनमें ऐसे पंचपदरूप परमेष्ठी शरण अरु लोकोत्तम अरु मंगल रूप हैं तिनने मैं पूजू हूं ॥ २७१ ॥

ऐस मंत्र पढ़ि फल स्थापन करना—

ओं ह्रीं अद्य बिंबप्रतिष्ठोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तम-शरणेभ्यो फलानि निर्वपामीति स्वाहा। फलानि।

द्रव्याणि सर्वाणि विधाय पात्रे ह्यनर्घमर्घं वितरामि भक्त्या।
भवे भवे भक्तिरुदारभावाद्येषां सुखायास्तु निरंतराया॥ २७२॥

बहुरि पूर्वोक्त सर्व द्रव्य पात्रमैं धारण करि बहुमूल्य अर्घ जो ताहि मैं चढाऊं हूं जाकरि उदार भावतैं उत्पन्न हुई मेरैं भक्ति है सो भव भवमैं निर्विघ्नके अर्थि होउ ऐसैं अर्घ चढ़ावना॥ २७२॥

ओं ह्रीं अद्य बिंबप्रतिष्ठोत्सवे वेदिकाशुद्धिविधाने अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुमंगललोकोत्तम-शरणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा। अर्घं।

इति अष्टप्रकार पूजा।

समुदायरूप करि प्रत्येक अर्घ सो ऐसैं—

अनादिसंतानभवान् जिनेंद्रानर्हत्पदेष्टानुपदिष्टधर्मान्।
द्वेधा श्रिया लिंगितपादपद्मान् यजामि वेदीप्रकृतिप्रसत्त्यै॥ २७३॥

अनादिकालके संतानतैं उत्पन्न अरु अरहंत पदमैं इष्ट उपदेश कियो है धर्म जिननैं ऐसे जिनेंद्र जे है तिननैं वेदीकी प्रकृतिकी प्रसन्नता निमित्त मैं यजन करूं हूं कैसे हैं जिनेंद्र? दोय प्रकार—अंतरंग अरु बहिरंग लक्ष्मी करि आलिंगन किये हैं चरणकमल जिनके॥ २७३॥

ओं ह्रीं उद्भिन्नानंतज्ञानगभस्तिसंदृष्टलोकालोकानुभावान् मोक्षमार्गप्रकाशनानंताचिद्रूपविलासान् अर्हत्परमेष्ठिनः संपूजयामि स्वाहा॥ अर्घं॥

कर्माष्टनाशाच्च्युतभावकर्मोद्भूतीन् निजात्मस्वविलासभूपान् ।
सिद्धाननंतांस्त्रिककालमध्ये गीतान् यजामीष्टविधिप्रशक्त्यै ॥ २७४ ॥

अष्ट कर्मका नाशतैं खिर गये हैं कर्मनिके उदय जिनके, अरु निज कहिए अपनो स्वभाव—परिणतिका विलासके भूपति अरु अनंत अरु भूत-भविष्यत्-वर्तमान रूप तीन कालमैं वर्तते ऐसैं सिद्ध परमेष्ठीननैं मैं इष्ट विधानकी प्राप्तिके अर्थि यजन करूं हूं ॥ २७४ ॥

ओं ह्रीं द्विविधकर्मतांडवापनोदविलसत्स्वाकारचिद्विलासवृत्तीन् निजाष्टगुणगणोद्घूर्णान् प्रगुणीभूतानंतमाहात्म्यान् लोकाग्रशिखरावस्थायिनः सिद्धपरमेष्ठिनोऽर्चयामि स्वाहा ॥ अर्घं ॥

ये पंचधाचारपरायणानामग्रेसरा दीक्षणशिक्षिकासु ।
प्रमाणनिर्णीतपदार्थसार्थानाचार्यवर्यान् परिपूजयामि ॥ २७५ ॥

जे पंच प्रकारके आचरणमैं निपुण हैं, तिनमैं अग्रेसर अरु दीक्षा-शिक्षाके देनेमैं निपुण अरु प्रमाण करि निर्णय किये हैं पदार्थनिका समूह जिननैं, ऐसे आचार्यनमें मुख्यनैं मैं पूजूं हूं ॥ २७५ ॥

ओं ह्रीं व्यवहाराधाराचारवरत्वाद्यनेकगुणमणिभूषितोरस्कान् संघप्रतिसार्थवाहानाचार्यवर्यान् परिपूजयामि स्वाहा ॥ अर्घं ॥

अर्थश्रुतं सत्यविबोधनेन द्रव्यश्रुतं ग्रंथविदर्भनेन ।
येऽध्यापयंति प्रवरानुभावास्तेऽध्यापका मेऽर्हणाया दुहंतु ॥ २७६ ॥

मतिज्ञानका जाननपणा करि अर्थरूप श्रुतनैं अरु ग्रन्थनका पठन पाठन तथा रचना करि द्रव्यश्रुत जो है, तानैं जे पढावैं ऐसे प्रवर अनुभवमें प्राप्त भये उपाध्याय परमेष्ठी मेरी करी अर्हणा पूजा करि प्रसन्न होऊ ॥ २७६ ॥

ओं ह्रीं द्वादशांगश्रुतांबुनिधिपारंगतान् परिप्राप्तपदार्थस्वरूपान् उपाध्यायपरमेष्ठिनः पूजयामि स्वाहा ॥ अर्घं ॥

द्विधा तपोभावनया प्रवीणान् स्वकर्मभूमिध्रविखंडनेषु ।
विविक्तशय्यासनहर्म्यपीठस्थितान् तपस्विप्रवरान् यजामि ॥ २७७ ॥

दोय प्रकार, अंतरंग अरु वाह्य जो तपकी भावना करि सावधान अरु कर्म-रूप पर्वतनिका खंडनमैं निपुण अरु एकांत शय्यासन रूप प्रासादकी पीठ परि स्थित असे तपस्वीनमैं प्रवर जे, तिननैं मैं पूजूं हू ॥ २७७॥

ओं ह्रीं घोरतपश्चरणोद्युक्तप्रयासभासमानान् स्वकारुण्यपुण्यपुण्यागण्यपण्यरत्नालंकृतपादान् साधुपरमेष्ठिनः पूजयामि स्वाहा ॥ अर्घं ॥

अर्हन्मंगलमर्चे सुरनरविद्याधरैकपूज्यपदं ।
तोयप्रभृतिभिरर्थ्यैर्विनीतमूर्ध्ना शिवाप्तये नित्यं ॥ २७८ ॥

सुर-नर-विद्याधरनि करि पूज्य हे पद जिनके असे अर्हंत मंगलनैं जलादि अष्ट द्रव्यनि करि नम्र ,मस्तक करि मोक्ष प्राप्ति निमित्त पूजूं हूं ॥ २७८ ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मंगलाय अर्घम् ।

ध्रौव्योत्पादविनाशनरूपाखिलवस्तुजाननार्थकरं ।
सिद्धं मगलमिति वा मत्वार्चे चाष्टविधवसुभिः ॥ २७९ ॥

ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय रूप जो अखिल कहिए समस्त वस्तु वा पदार्थ जानवा करि तत्त्वका कहनेवारा अरहंत रूप मंगलनैं असा मानि अष्ट द्रव्यनि करि पूजूं हूं ॥ २७९ ॥
असैं सिद्ध मंगलके अर्घ अर्थ देना—

ओं ह्रीं सिद्धमंगलायार्घं ।

यद्दर्शनकृतविभवाद् रोगोपद्रवगणा मृगा इव मृगेंद्रात् ।

दूरं भजंति देशं साधुश्रयोऽर्च्यते विधिना ॥ २८० ॥

जाका दर्शनका किया प्रभावतैं रोग उपद्रवनिके गण हैं ते जैसैं सिंहतैं मृग दूर भाजै तैसैं दूर देशनतैं आश्रय करैं हैं, ऐसे साधु मंगल हैं सो विधि करि पूजिये हैं ॥ २८० ॥

ऐसें साधु मंगलके अर्थ अर्घ देना—

ओं ह्रीं साधुमंगलायार्घं ।

केवलिमुखावगतया वाण्या निर्दिष्टभेदधर्मगणं ।

मत्वा भवसिंधुतरीं प्रयजे तन्मंगलं शुद्ध्यै ॥ २८१ ॥

मैं श्रीकेवलीका मुखतैं निर्गत दिव्यध्वनि करि दिखायौ है मुनि-श्रावक भेद-युक्त धर्मको गण जो है, ताहि भवसागरको जिहाज मानि तिहिं मंगलनैं शुद्धि निमित्त पूजूं हूं ॥ २८१ ॥

ऐसे केवली-प्रणीत धर्मके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तिधर्ममंगलायार्घम् ।

लोकोत्तममथ जिनराड् पदाब्जसेवनममितदोषविलयाय ।

शक्तं मत्वा धृतये जलगंधैरीडितुं प्रभवे ॥ २८२ ॥

लोकोत्तम ऐसे जिनराजका चरणबिदकौ सेवन है सो समस्त दोषनिका विनाशके अर्थ समर्थ मानि आत्मधृति निमित्त जल-गंधादिकनि करि पूजन करनेकूं समर्थ हुवो हूं ॥ २८२ ॥

ऐसें केवली-प्रणीत धर्मके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं अरहंतलोकोत्तमायार्घं ।

सिद्धाश्च्युत दोषमला लोकाग्र्यं प्राप्य शिवसुखं व्रजिताः ।

उत्तमपथगा लोके तानर्चें वसुविधार्चनया ॥ २८३ ॥

गये हैं दोप-मल जिनतैं ऐसे सिद्ध जे हैं, ते लोकका अग्रभागनैं प्राप्त होय शास्वत शिवसुखनैं प्राप्त भये; अरु उत्तम मार्ग गामी जे हैं, तिननैं अष्ट प्रकार पूजन करि पूजू हूं ॥ २८३ ॥

ऐसें सिद्धलोकोत्तमके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं सिद्धलोकोत्तमायार्घं ।

इंद्रनरेंद्रसुरेंद्रै रर्थिततपसां व्रतैषिणां सुधियां ।
उत्तमपंथानमसावर्चेऽहं सलिलगंधमुखैः ॥ २८४ ॥

इंद्र नरेंद्र अरु सुरेंद्रनि करि प्रार्थन किया तप जे है, तिनका अरु व्रतका वांछक सुन्दर बुद्धिमानका उत्तम मार्ग नै जलगंधादि अष्ट द्रव्यनि करि यो मैं हूं सो पूजू हूं ॥ २८४ ॥

ऐसें साधु लोकोत्तम-अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं साधुलोकोत्तमेभ्यः अर्घम् ।

रागपिशाचविमर्दनमत्र भवे धर्मधारिणामतुलम् ।
उत्तममव..तकामो वृषमर्चे शुचितरं कुसुमैः ॥ २८५ ॥

राग रूप पिशाचको मर्दन इस भवमें धर्म धारी पुरुषनके अतुल अप्रमाण होइ, ऐसा शुद्ध उत्तम धर्म नैं पुष्पनिकरि पूजू हूं ॥ २८५ ॥

ऐसें केवली-प्रणीत लोकोत्तम धर्म के अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तिधर्माय लोकोत्तमायार्घम् ।

अर्हच्चरणमथार्चेऽनंतजनुष्वपि न जातु संप्राप्तं ।
नर्तनगानादिविधिमुद्दिश्याष्टकर्मणां शांत्यै ॥ २८६ ॥

अनंत भवनिमैं कदाचित् भी न प्राप्त भयो ऐसा अरहंतका शरण जो है, ताहि नृत्य गानादि विधिनै उद्देश करि अष्ट कर्मनिकी शांतिके अर्थ मैं पूजू हूं ॥ २८६ ॥

ऐसें अरहंत शरणके अर्थि अर्घ दना—

ओं ह्रीं अरहंतशरणायार्घम् ।

निर्व्याबाधगुणादिक प्राग्र्यं शरणं समेतचिदनंतं ।

सिद्धानाममृतानां भूत्यै पूजेयमशुभहान्यर्थम् ॥ २८७ ॥

अव्याबाध आदि गुणनि करि प्रसिद्ध अरु चैतन्यालंकृत अरु मृत्यु करि रहित ऐसे सिद्धनिका शरण जो है ताहि अशुभकी हानि निमित्त संपदाके अर्थि पूजू हूं ॥ २८७ ॥

ऐसें सिद्ध शरणके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं सिद्धशरणायार्घम् ।

चिदाचिद्भेदं शरणं लौकिकमाप्यं प्रयोजनातीतं ।

त्यक्त्वा साधुजनानां शरणं भूत्यै यजामि परमार्थम् ॥ २८८ ॥

शरण चैतन्य अचैतन्य-रूप लौकिकनै भजनीय अरु प्रयोजन व्यतीतकूं छोड़ि करि साधुजनका शरणनैं परमार्थभूतनैं यजन करूं हूं ॥ २८८ ॥

ऐसें साधुशरणके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं साधुशरणायार्घम् ।

केवलिनाथमुखोद्गतधर्मः प्राणिसुखहितार्थमुद्दिष्टः ।

तत्प्राप्त्यै तद्यजनं कुर्वे मखविघ्ननाशाय ॥ २८९ ॥

केवली जिनराजका मुखारविंदतै उत्पन्न अरु प्राणीनका सुख-हितके अर्थि उपदेश किया ऐसा धर्म जो है, ताहि यज्ञके विघ्नका नाशिके अर्थि पूजन करूं हूं ॥ २८९ ॥

ऐसें केवली-प्रणीत धर्मकी शरणके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणायार्घम् ।

अथ महर्षिपर्युपासनम् ।

ऐसें अर्घ पाद्य करि महर्षिनकी उपासना करिये है,—

औषधीरसबलर्द्धि तपःस्था क्षेत्रबुद्धिकलिताः क्रिययाढ्याः ।
विक्रयर्धिमहिताः प्रणिधानप्राप्तसंसृतितटा मुनिपूज्याः ॥ २६० ॥

औषधि-ऋद्धि अर रसऋद्धि-जनक तप करि युक्त, क्षेत्रऋद्धि अरु बुद्धिऋद्धि करि संयुक्त, क्रिया नामक ऋद्धि तथा विक्रियाऋद्धि करि पूजित अरु अपना अनुभव करि प्राप्त किया है संसारका पार जिननैं, ऐसे मुनीनमैं पूज्य जयवंते रहो ॥ २६० ॥

केवलावधिमनः प्रसरांगाः बीजकोष्ठमतिभाजनशुद्धाः ।
वीतरागमदमत्सरभावा बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २६१ ॥

अरु केवलज्ञान अवधिज्ञान अर मनःपर्ययज्ञानका फैलावका अंग संयुक्त अरु बीज-बुद्धि-कोष रूप भाजन करि शुद्ध, अरु गये हैं राग-मद-मत्सरभाव जिनके, ऐसे महर्षि निःपाप हमारे अर्थि ज्ञानलाभनैं देवो ॥ २६१ ॥

यद्वचोऽमृतमहानदमग्ना जन्मदाहपरितापमपास्य ।
निर्वृ्वुः सुखसमाजतटेषु बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २६२ ॥

जिनके वचनामृतरूपी महानदमें मग्न होनेवाले भव्य जीव जन्ममरणके दाह (संताप)-से छूटकर परम सुखको प्राप्त करते हैं, वे पाप रहित मुनिराज हमें ज्ञानलाभ देवै ॥ २६२ ॥*

श्रोतभिन्नमतयः पदपंथाः दृष्टसंसृतिपदार्थविभावाः ।
तत्त्वसंकलितधर्म्यसुशुक्लाः बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २९३ ॥

---

* इस श्लोकका अर्थ हस्तलिखित प्रतिमें न रहनेके कारण हमने लिख दिया है । —संपादक.

अरु संभिन्न-श्रोत्र-मतिका धारी अरु पादानुसारी ऐसे देखे हैं संसारका पदार्थ विभाव जिनन, अरु तत्त्व करि संकल कियौ है धर्म-ध्यान अर शुक्लध्यान जिननें, ऐसे निःपाप मुनीश्वर जे हैं ते ज्ञानलाभनैं देवौ॥ २६३ ॥

स्पर्शनश्रवणालोकनबुद्धाः घ्राणसंस्थरसनोपकृता ये ।
दूरतोऽप्यनुभवं समाप्ता बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २६४ ॥

अरु स्पर्शन श्रवण अवलोकन बुद्धिके धारी अरु घ्राण रसनाका उपकार-कर्त्ता, ते दूरतैं अनुभवनै प्राप्त भये जे निःपाप मुनीश्वर मेरे अर्थि बोध-लाभनै देवौ ॥ २६४ ॥

छिन्नस्वर्यविधिना चतुर्दश दिग्सुंपूर्वमतिना निमित्तगाः ।
वादिवुद्धकृतिनो मतिश्रमाः बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २६५ ॥

बहुरि छिन्नस्वर आदि निमित्त विधि करि चौदह पूर्वका धारी निमित्तज्ञानी तथा वादित्वबुद्धिका धारी, नहीं है मतिका परिश्रम जिनकैं, ऐसे निःपाप मुनीश्वर जे हैं ते मेरे अर्थि ज्ञानलाभ देवौ ॥ २६५ ॥

अष्टधोक्तदशधाभिदया ये बुद्धिवृद्धिसहिताः शिवयत्नाः ।
विप्रमलादिगदहापनदेहा बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २६६ ॥

बहुरि अठारा प्रकार बुद्धि ऋद्धिका धारी अरु मोक्षमैं है यत्न जिनकैं अरु विशुद्ध अरु जिनके मल आदि करि रोग नष्ट होजांय ऐसे निःपाप मुनीश्वर मेरे अर्थि ज्ञानलाभनैं देवौ ॥ २६६ ॥

दृष्टिवक्त्रमनसां विषभाक्ति प्रीणिताः श्रुतसरित्पतिपुष्टाः ।
लोकमंगलिषु संन्यसिता ये बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २६७ ॥

अरु दृष्टि अर मुख अर मनके आधार विषऋद्धिके धारी अरु शास्त्र-समुद्रका पारगामी अरु लोकनैं अपनी अंगुलि करि स्थापन करनेवारे जे हैं, ते मेरे अर्थि ज्ञानलाभनैं देवौ ॥ २६७ ॥

वाक्यमानसबलेन समग्राः उग्रदीप्ततपसस्त्रिकगुप्ताः ।

घोरवीर्यगुणभावितचित्ता बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २९८ ॥

अरु वचनवली अर मनोवली अर उग्रदीप्त तपके धारक अरु तीन गुप्ति संयुक्त अरु घोर पराक्रम करि भवित चित्त जिनके, ते निःपाप मुनीश्वर मेरे अर्थि ज्ञानलाभनैं देवौ ॥ २९८ ॥

दुग्धमध्वमृतभोजनकृत्याः संर्पिषाश्रववचोऽभिनियुक्ताः ।

अणवलाघववशित्वविदर्भा बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ २९९ ॥

वहुरि दुग्धस्रावी, मधुस्रावी अरु अमृत भोजन ऋद्धिका धारी, अरु सर्पिस्रावी वचनऋद्धिके धारी, अरु अणु-गुरु वश करनेवारी ऋद्धिके धारी ग्रन्थनके कर्त्ता निःपाप मुनीश्वर मेरे अर्थि ज्ञानलाभ देवौ ॥ २९९ ॥

कामरूपगुरुताप्रतिसर्पांतर्द्धहीनवसतिगृहयुक्ताः ।

चारणा जलफलाग्निकसूला बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ ३०० ॥

वहुरि काम-रूप ऋद्धिके धारी, विस्तार अरु अन्तर्धान अरु अक्षीण महालय ऋद्धिके धारी, अर जल फल अग्नि अरु सूत्र आदि चारण ऋद्धि के धारी जे है, ते निःपाप मुनीश्वर मेरे अर्थि ज्ञानलाभ देवौ ॥ ३०० ॥

आत्मशक्तिविभवागतसर्वपौद्गलीयममताश्च्युतवस्त्राः ।

सत्परीषहभटार्दनदास्ते बोधिलाभमनघाः प्रदिशंतु ॥ ३०१ ॥

अरु आत्मशक्तिके वधावनेवारे, पौद्गलिक भावरहित दिगंवर अरु वाईस परीषह-रूप पटनिके जेता, ऐसे निःपाप मुनीश्वर मेरे अर्थि ज्ञानलाभ देवौ ॥ ३०१ ॥

ऐसें आठ प्रकार ऋद्धिधारीनके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं अष्टप्रकारसकलऋद्धिप्राप्तेभ्यो मुनिभ्योऽर्घं म्।

अव तीर्थंकरोंके आदि कहिये मुख्य गणधरका नाम लेय सवं गणधरनके अर्थि प्रार्थना करिये हैं।

ध्येसितु वृषभसेनपुरस्सरा ये, सिंहादिसेनपुरतोऽजिततीर्थभर्तुः ।
श्रीसंभवस्य किल चारुविसेनमुख्यास्तुर्यस्य वज्रधरमुख्यगणाधिराजाः ॥ २०२ ॥
कोकध्वजस्य चमराधिपपूर्वगाः स्युः पद्मप्रभस्य कुलिशादिपुरःस्थिताश्च ।
श्रीसप्तमस्य बलमुख्यकृताः पुराणे चंद्रप्रभस्य शमिनः खलु दत्तमुख्याः ॥ २०३ ॥
मकरांकितो गणभृतश्च विदर्भमुख्याः श्रीसीतलस्य गणया अनगारगण्याः ।
श्रेयोजिनस्य निकटे ध्वनि कुंथुपूर्वा धर्मादयो गणधरा वसुपूज्यसूनोः ॥ २०४ ॥
मेर्वादयश्च विमलेशितुरुद्धबुद्ध्या जय्यार्यनामभरणाश्चतुर्दशस्य ।
धर्मस्य भांति शमिनः सदरिष्टमूलाश्चक्रायुधप्रभृतयः खलु शांतिभर्तुः ॥ २०५ ॥
कुंथुप्रभोर्यमभृतः कथिताः स्वयंभूवर्याः पुनंत्वरविभोः स्मृतकुंभमान्याः ।
मल्लेर्विशाखमुनयो मुनिसुव्रतस्य मल्लिप्रवेकगणता नमिभर्तुरिष्टाः ॥ २०६ ॥
सप्तर्द्धिपूजितपदाः सुप्रभासमुख्या नेमीश्वरस्य वरदत्तमुखा गणेशाः ।
पार्श्वप्रभो स्वयमितः सुभवोंतनाम्ना वीरस्य गौतममुनींद्रमुखाः पुनंतु ॥ २०७ ॥

जे श्रीआदिनाथ स्वामीके वृषभसेन आदि गणधर हैं, अरु अजितनाथस्वामीके सिंहसेन आदि गणधर हैं, अरु श्रीसंभवनाथ भगवानके चारुसेन आदि मुख्य गणधर हैं, अरु चौथे श्रीअभिनंदननाथ स्वामीके वज्रधरस्वामी आदि गणधर हैं, अरु कोकको है चिह्न जिनकैं अैसा सुमतिनाथके चमरसेन आदि हैं , अरु पद्मप्रभस्वामीके कुलिशनाथ आदि है, अरु सातमां सुपार्श्व नाथ प्रभूके बल आदि गणधर है, अरु पुराणमैं श्रीचंद्रप्रभके शमका धारी दत्तधर आदि हैं, अरु मत्स है चिह्न जिनकैं अैसा पुष्पदंतस्वामीका विदर्भ आदि गणधर हैं, अरु शीतलनाथका अनागार आदि गणधर हैं, अरु श्रेयांसनाथका 'निकटमार्गवर्ती कुंथदत्त आदि गणधर हैं, अरु धर्मसेन आदि गणधर हैं श्रीवासुपूज्य-महाराजका जानो, अरु विमलनाथके मेरु आदि सुन्दर बुद्धिधारी गणधर हैं, अरु चौदमां अनंत नाथस्वामीके जयदत्त आदि नामधारी हैं, अरु

धर्मनाथके अरिष्ट आदि शमधारी गणधर हैं, अरु शांतिनाथ स्वामीके चक्रायुध आदि हैं, अरु कुंथनाथके स्वयंभूदत्त आदि गणधर है, अरु अरनाथके कुम्भ आदि मान्य गणधर हमकूं पवित्र करो। अरु मल्लिनाथके विशालभूति आदि, अरु मुनिसुव्रतके मल्लिदत्त आदि, अरु नमिनाथके सप्तऋद्धिके धारी प्रभास आदि गणधर हैं, अरु नेमिनाथ महराजके वरदत्त आदि गणधर है, अरु पार्श्वनाथ प्रभुके स्वयंपद है अग्र जाके ऐसा भू नामक अर्थात् स्वयंभू आदि, अरु वीरनाथस्वामीके गोतम आदि गणधर हैं, ते पवित्र करो ॥ ३०२—३०७ ॥

एभ्योऽर्घ्यपाद्यमिह यज्ञधरावनार्थं दत्तं मया विलसतां शुचिवेदिकायां।
पुष्पांजलिप्रकर तुंदिलमाज्यपाल मुत्तारयामि मुनिमान्यचरित्रभक्त्या ॥ ३०८ ॥

अरु यज्ञ-पृथ्वीका रक्षण निमित्त सुन्दर वेदीमैं करि दीया अर्घ पाद्य, इनिके अर्थ प्रकाशमान हो। अरु मुनीश्वरोंकी भक्ति करि कि आचार्यभक्ति पढ़ि अरु चारित्रभक्ति पढ़ि पुष्पांजलिका समूह करि पुष्ट, ऐसा चारुपात्र अग्रभागमैं उतारण करूं हूं ॥ ३०८ ॥

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरगणधरेभ्यस्त्रिपंचाशत्सहित चतुर्दशशतसंख्येभ्यश्चरुपात्रमग्रे कृत्वाऽर्घमुत्तारयामि स्वाहा ॥

ऐसा चोईस तीर्थंकरोंके गणधर जो चोदह सौ त्रेपन (१४५३) है, तिनके अर्थि चारुपात्र-पूर्वक अर्घ उतारण करना।

अत्र चारित्रभक्तिपाठं कृत्वा पुष्पांजलिना वेदिकां भूषयेत्।

इहां चारित्रभक्तिपाठ पढ़ि पुष्पांजलि करि वेदिकानैं भूषित करै। पुनश्च—

इंद्रभूतिरग्निभूति र्वायुभूतिः सुधर्मकः।
मौर्यमौड्यौ पुत्रमित्रावकंपनसुनामधृक् ॥ ३०९ ॥

बहुरि इंद्रभूति कहिये गौतम अरु वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य नामक, मौड्य, अरु पुत्र नामक, मित्र नामक, अकंपन, अंधवेल अरु प्रभास, ऐसा ग्यारा गणधर श्रीमहावीरके है, तिन मुनिनकूं पूजूं हूं ॥ ३०९ ॥

ऐसैं गौतम आदि एकादश मुनि प्रति अर्घ देना।

ओं ह्रीं गौतमादि एकादशमुनिभ्योऽर्घम्।

अंधवेलः प्रभासश्च रुद्रसंख्यान् मुनीन् यजे।

गोतमं च सुधर्मं च जंबूस्वामिनमूर्ध्वगम् ॥ ३१० ॥

तथा वेही केवलज्ञानी हुवे—गौतम १, सुधर्माचार्य १, जम्बूस्वामी १ ऐसैं वीरस्वामीके पीछैं तीन उर्ध्वगतिके गामी जे है तिननैं अर्घ देना ॥३१०॥

ऐसैं अंसकेवलीत्रयके अर्थि अर्घ देना—।

ओ ह्रीं अंसकेवलित्रयायार्घम्।

श्रुतकेवलिनोऽन्यांश्च विष्णुनंद्यपराजितान्।
गोवर्धनं भद्रबाहुं दशपूर्वधरं यजे ॥ ३११ ॥

अन्य जे श्रुतकेवली—विष्णुनन्दी १, अपराजित १, गोवर्द्धन १, भद्रबाहु १, ये दशपूर्वका धारीनैं पूजू हूं ॥ ३११ ॥

ऐसैं श्रुतकेवलीनकूं अर्घ देना—

ओं ह्रीं श्रुतकेवलिनोऽर्घम्।

विशाखप्रोष्ठिलनक्षत्र जयनागपुरस्सरान्।
सिद्धार्थधृतिषेणाह्वौ विजयं बुद्धिबलं तथा ॥ ३१२ ॥
गंगदेवं धर्मसेनमेकादश तु सुश्रुतान्।
नक्षत्रं जयपालाख्यं पांडुं च ध्रुवसेनकम् ॥ ३१३ ॥
कंसाचार्यं पुरोंगीयज्ञातारं प्रयजेऽन्वहं।

अरु विशाखदत्त १, प्रौष्ठिल १, नक्षत्र१, जय १, नाग१, सिद्धार्थ १, धृतिषेण१, विजय१, बुद्धिवल १, गंगदेव १, धर्मसेन १, ऐसेग्यारा सुन्दर श्रुतपाठी जे हैं तिननैं, तथा नक्षत्र १, जयपाल १, पांडु १, ध्रुवसेन १, कंसाचार्य १, ऐसें प्रथम पूर्वका जाननेवारानैं निरंतर पूजू हूं ॥ ३१२—३१३ ॥

ऐसैं कितनाक अंगपाठीननै अर्घ देना—

ओं ह्रीं कतिचिदंगधारिभ्योऽर्घम्।

सुभद्रं च यशोभद्रं भद्रबाहुं मुनीश्वरम् ॥ ३१४ ॥

लोहाचार्यं पुरा पूर्वज्ञानचक्रधरं नमः ।

अर्हद्‌बलिं भूतबलिं माघनंदिनमुत्तमम् ॥ ३१५

धरसेनं मुनींद्रं च पुष्पदत्तसमाह्वयं ।

जिनचंद्रं कुंदकुंदमुमास्वामिनमर्थये ॥ ३१६ ॥

अरु सुभद्र १, यशोभद्र १, भद्रबाहु मुनि १, अरु लोहाचार्य १ प्रथमपूर्वका किंचित् ज्ञाताकै अर्थि नमस्कार करै हैं तथा अर्हद्‌बलि १, भूतबलि १, माघनंदि १, धरसेन १, पुष्पदंत नामक मुनि १, जिनचंद्र १, कुंदकुंद १, उमास्वामि १ जे हैं, तिननैं प्रार्थना करूं हूं ॥३१४-३१६॥

ऐसैं अवार पंचमकाल-स्थित निर्ग्रंथ वीतराग आचार्यनिनैं वेदीका स्थापन विधानमैं अष्ट प्रकार पूजन करूं हूं । ऐसैं अर्घ देना—

ओं ह्रीं ऐदंयुगीनदीक्षाधरणधुरंधरनिर्ग्रंथाचार्यवर्यान् वेदीप्रतिष्ठाने संस्थाप्याष्टविधार्चनं करोमि स्वाहा ॥

निर्ग्रंथान् वकुशान् पुलाककुशलान् किंशीलनिर्ग्रंथकान् ।

मूलस्वोत्तरसद्‌गुणावधृतसाः किंचित्प्रकारं गतान्

वंदित्वा जिनकल्पसूत्रितपदान् प्रध्वस्तपापोदयान् ।

वेदीशुद्धिविधिं ददंतु मुनयो ह्यर्घेण संपूजिताः ॥३१७॥

बहुरि निर्ग्रंथ जे पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ हैं, तिननैं मूलगुण-संयुक्त उत्तरगुणनिमैं किंचित् प्रकार भेदनैं प्राप्त भये, अरु जिन कल्पसूत्रके पदारूढ़ अरु दूरि किये है पापका उदय जिननै ऐसे मुनीश्वरनकूं वंदन करि अर्घ करि पूजित किये संते वेदीकी विशुद्ध विधिनैं देवो ॥ ३१७ ॥

ऐसैं तीन घाटि एक कोटि मुनीश्वरनिके अर्थि अर्घ देना अर पुष्पांजलि क्षेपना—

ओं ह्रीं पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातकपदधरत्रिकन्यूनैककोटिसंख्यमुनिवरेभ्योऽर्घं म । इति अर्घ पाद्यं दत्त्वा वेदीशुद्धि प्रतिज्ञानाय पुष्पांजलि क्षिपेत् ॥

अथ ध्वजास्थापनं ।

अब ध्वजा-स्थापन विधान कहिये हैं,—

तदग्रदेशे ध्वजदंडमुच्चै र्भास्वद्विमानं गमनाद्विरुंधत् ।
निवेश्य लग्ने शुभभोपदेश्ये महत्पताकोच्छ्रयणं विदध्यात् ॥ ३१८ ॥

ध्वजा इह यज्ञका चिह्न है सो यज्ञभूमिकी अग्रभूमिमैं स्थापना करिये हैं ॥ ३१८ ॥

ओं ह्रीं अर्हं जिनशासनपताके सदोच्छ्रिता तिष्ठ तिष्ठ भव भव वषट् स्वाहा ॥ अर्घम् ॥

अथ मंडपप्रतिष्ठाविधानं ।

सो सोहू मंडपमैं सुशोभित होय तातैं प्रथम मंडपको वर्णन ऐसा जानना कि,—

चीनश्लक्ष्णमृदूत्तरीयपटलैश्छन्नं पुरा निर्मितं
मस्तोपर्यनुयोगसूचिकलशं लंबत्पताकापटं ।
चातुर्दिश्य तिरस्करिण्यधिवृतं गोपानसीभिर्युतं
द्वारोपांतविशोभियक्षयुगलं प्रांशु मनोह्लादकं ॥ ३१९ ॥
कोणोद्भूतपताकमुच्छलदपावृत्ताभिरुर्जस्वला-
भीरज्जूभिरुदंचितं कलरवत्किंकिण्युदात्तारवं ।
स्फूर्जद्वंदनमालिकं परिलुठत्सत्प्रातिहार्याष्टकं
लज्जत्स्वर्गविमानशोभमभितो धूपोत्थगंधांचितं ॥ ३२० ॥

द्वारोपांतसुतोरणादिसुषमं छत्रैश्च हंसैरिव
सेवार्थं स्थितवद्भि रबंधुरकृद्बाधातिगं भूयसा।
घंटादर्शकसुप्रतीकविधुभाभृंगारसिंहासनै-
र्भास्वद्भूतलमीशपूजनकृतां हस्तैर्भृशं स्थापितैः॥ ३२१॥

चीनका कोमल सचिक्कण सुंदर आच्छादन वस्त्रनि करि ढक्या हुवा पूर्व निर्मापित किया अर उपरिभागमैं अनुयोग कहिये च्यारि है कलस जामैं अर्थात् एक उपरि मस्तक परि अर च्यार च्यारूं कोणमैं कलस शिखराकारनि करि युक्त, अरु लंबायमान है पताकाका पट जामैं अरु च्यारूं दिशामें तिरस्कारिणी कहिये चढ़ाई आदिकी कनात तिन करि वेष्टित, अरु ऊपरि छाजा तिन करि युक्त, अरु द्वारके समीप शोभायमान है यक्ष-युगल जाके, अरु उन्नत अर मनको आनंद करणे हारो, अरु कोणमें उद्धृत है छोटी ध्वजा जामैं, अरु उछलती अर दृढ़ देदीप्यमान रज्जून करि बंधननैं प्राप्त भयो, अरु शब्दायमान किंकणी जे क्षुद्र घंटा जिनका उदार शब्द है जहां, अरु नवीन वंदनमाला करि संयुक्त अरु पर्यंत भागमैं स्थित है आठ प्रातिहार्य जामें, अरु स्वर्गके विमानकी शोभाकूं हंसनेवारो अरु चऊं तरफ धूपका सुगंधसैं धूजित ऐसौ, अरु द्वारका प्रांतभागमैं तोरणादिकी शोभा संयुक्त, अरु मानूं जिनेंद्रकी सेवा निमित्त आए हंसे समान स्थित छत्रन करि भूषित अर मेघकी बाधा-रहित अर प्रचुर घंटा, दर्पण, ठोणो, भामंडल, झारी, सिंहासन आदि करि भूषित है भूतल जाको अरु तीन लोकपति जिनेंद्रका पूजन करणेवारेनके हस्तन करि नित्य स्थापन किये; ऐसैं मंडपके अग्रध्वजारोहण करना॥ ३१९—३२१॥

अथ तत्रैव शेष विधिः।

अव इहां विशेष विधि है सो वर्णन करिये है,—

चतुर्णिकायामरसंघ एष आगत्य यज्ञे विधिना नियोगं।
स्वीकृत्य भक्त्या हि यथार्हदेशे सुस्था भवंत्वान्हिककल्पनायां॥ ३२२॥

प्रथम चतुर्निकायका जिनभक्त देवका समूह जे इहां यज्ञमैं आय विधि-पूर्वक अपना नियोगनैं अंगीकार करि भक्ति करि यथायोग्य स्थानमैं तिष्ठ करि नित्य सेवामें सावधान होहु॥ ३२२॥

आयात [illegible]सुराः पवनोद्भटाशाः संघट्टसंलासितनिर्मलतांतरीक्षाः ।
वात्यादिदो[illegible]रेभूतवसुंधरायां प्रत्यूहकर्मनिखिलं परिमार्जयंतु ॥ ३२३ ॥

अरु—भो पवनकुमार-जातिके देवहो ! तुम, पवन करि उद्भट किई है दिशा जिनि, अरु पवनका संघट्ट करि लसित निर्मल किया है आकास जिननै, अरु पवनका समूह आदि दोष करि तिरष्कृत भूमिमैं समस्त प्राप्त भयो, विघ्नकर्मनै दूरि करो, इहां आवो ॥ ३२३ ॥

आयात वास्तुविधिषूद्भटसंनिवेशा योग्यांशभागपरिपुष्टवपुः प्रदेशाः ।
अस्मिन् मखे रुचिरसुस्थितभूषणांके सुस्था यथार्हविधिना जिनभक्तिभाजः ॥३२४॥

अरु—भो वास्तुकुमार-जातिके देवहो ! तुम, अपना योग्य अंश विभाग करि पुष्ट देह संयुक्त इस यज्ञ-प्रयुक्त सुन्दर सुस्थित भूषणानि करि अंकित विधानमैं जिनेंद्रकी भक्तिपूर्वक आवो, तिष्ठो, योग्य स्थानमैं सन्निवेश करो ॥ ३२४ ॥

आयात निर्मलनभः कृतसंनिवेशा मेघासुराः प्रमदभारनमच्छिरस्काः ।
अस्मिन्मखे विकृतविक्रियया नितांते सुस्था भवंतु जिनभक्तिमुदाहरंतु ॥ ३२५ ॥

अरु—भो मेघकुमार-जातिके देवहो ! निर्मल आकाशका सन्निवेशके धरनहारे तुम, इस जिनयज्ञ-विधानमैं विक्रिया करि अरु आनंदभार करि मस्तक धारि जिनेंद्रकी भक्तिमैं अत्यंत सावधान होय तिष्ठो ॥ ३२५ ॥

आयात पावकसुराः सुरराजपूज्यसंस्थापनाविधिषु संस्कृतविक्रियार्हाः ।
स्थाने यथोचितकृते परिबद्धकक्षाः संतु श्रियं लभत पुण्यसमाजभाजां ॥ ३२६ ॥

बहुरि—भो अग्निकुमार जातिके देवहो ! जे इंद्रनिकरि पूज्य श्रीजिनेंद्रदेवकी सम्यक् प्रतिष्ठा विधानमैं तुम आवो, अरु अपनी संस्कार-रूप विक्रियाके योग्य हो अर अपना योग्य स्थानमैं कटिबद्ध होहु, अर इस पुण्यका समाजकूं भजनेवारेनकी शोभा तथा लक्ष्मी जो है ताकूं प्राप्त होहु ॥ ३२६ ॥

नागाः समाविशतभूतलसंनिवेशाः स्वां भक्तिमुल्लसितगात्रतया प्रकाश्य ।

आशीविषादिकृतविघ्नविनाशहेतोः स्वस्था भवंतु निजयोग्यमहासनेषु ॥ ३२७ ॥

बहुरि—भो नागकुमार-जातिके देवहो ! तुम इहां समावेश करो। तुम पृथ्वीतलमें रहनेवारे हो, सो अपनी भक्तिनैं प्रसन्न शरीर विक्रिया करि प्रकाशित करि आशी-विष (सर्प) आदि कृत विघ्नका विनाशके अर्थि अपना योग्य आसनमें स्वस्थ होइ तिष्ठो ॥ ३२७ ॥

इति जिनभक्तितत्परवास्तुकुमारयथायोग्यस्थाननिवेशनाथ पुष्पांजलिं क्षिपेत् मंडपोपरि ।

ऐसें जिनभक्तिमें तत्पर वास्तुकुमारदेवनकूं यथायोग्य स्थानका सन्निवेश निमित्त वेदीमंडल ऊपरि पुष्पांजलि क्षेपणी ॥

अब च्यारूं दिशामैं नियोगवारे चोवदारके कार्यमें सावधान हैं सो ऐसैं जानना,—

पुरुहूतदिशिस्थितिमेहि करोद्धृतकांचनदंडगखंडरुचे ।

विधिना कुमुदेश्वरसव्यशये धृतपंकजशंकितकंकणके ॥ ३२८ ॥

हे कुमुदेश्वर ! शंकायुक्त अर्थात् निःशब्द है कंकण जामें ऐसा वाम हस्तमें धारण किया है कमल पुष्प जानै अरु दक्षिण हस्तमैं विधि करि सुवर्णका दंड करि गमन करनेवारे अरु खंडरुचिवारे तुम इहां पुर्वदिशामें स्थिति करो ॥ ३२८ ॥

वामनाशुयमदिग्विभागतः स्थानमेहि जिनयज्ञकर्मणि ।

भक्तिभारकृतदुष्टनिग्रहः पूतशासनकृतामवंध्यकः ॥ ३२९ ॥

बहुरि—हे वामन नामधारक ! तुम जिनराजका यज्ञ-विधानमें दक्षिणदिशाका विभागमें स्थान प्राप्त होवो। अरु भक्ति करि दुष्टनका निग्रह कारक अरु जिनाज्ञा धारण करनेवारेकूं सफलताका देनहारा होउ ॥ ३२९ ॥

पश्चिमासु विततासु हरित्सु भूरिभक्तिभरभूकृतपीठाः ।

अंजनस्वहितकाम्ययाऽध्वरे तिष्ठ विघ्नविलयं प्रणिधेहि ॥ ३३० ॥

बहुरि—हे प्रचुरभक्तिका भार करि पृथ्वीकूं किया है पीठस्थान जानैं ऐसा अंजन नामक द्वारपाल ! यज्ञकी पश्चिम विस्तृत दिशामें अपना हितकी कामना सिद्धि करि या जिनेंद्रका यज्ञमें तिष्ठो, अरु दुष्ट-कृत विघ्नका नाशकूं करो ॥ ३३० ॥

पुष्पदंतभवनासुरमध्ये सत्कृतोऽसि यत इत्थमवोचम् ।
उत्तरल मणिदंडकराग्रस्तिष्ठ विघ्नविनिवृत्तिविधायी ॥ ३३१ ॥

बहुरि—हे पुष्पदंत यक्ष ! तुम भवनकुमार-जातिके देवनमें सत्कार पाया है, यातैं मैं ऐसै कहूं हूं कि उत्तर दिशामें विघ्नकी निवृत्तिका विधान करनेवारा होय मणिदंड है करके अग्रभागमें जाके ऐसा तिष्ठो ॥ ३३१ ॥

इत्युक्त्वा चतुर्दिक्षु द्वारेषु पुष्पाक्षतक्षेपं क्रियात् ॥

ऐसें कहि च्यारों दिशाके द्वारमें पुष्प अक्षतनका अंजलि क्षेपै ।

करकृतकुसुमानामंजलिं संवितीर्य धनदमणिसुरत्नानीशपूजार्थसार्थे ।
विकिर विकिर शीघ्रं भक्तिमुद्भावयित्वा निगदतु परमांके मंडपोर्ध्वावकाशे ॥ ३३२ ॥

बहुरि—हे कुवेर ! तुम हस्तमें पुष्पनिकी अंजुलिकूं वितरण करि जिनेंद्रकी पूजाका साहिसमैं मणि अरु रत्ननिनै शीघ्र भगवानकी भक्तिकूं प्रगट करि वर्षावो वर्षावो, ऐसैं मंडपका उपरिभागमें पुष्पांजलि करि यजनकर्त्ता कहै ॥ ३३२ ॥

इत्युक्त्वा मंडपोपरि सर्ववर्णांचितपुष्पाक्षताः क्षेप्याः ।

ऐसैं कहि मंडपके उपरि सर्वप्रकार रंग-संयुक्त पुष्प अक्षतनकूं क्षेपना । ऐसैं मंडपकी प्रतिष्ठाका विधान जानना ।

इति मंडपप्रतिष्ठाविधानं ।

अथ मंडले चूर्णनिक्षेपविधिः ।

अब मंडलमैं चूर्णका स्थापनकी विधि कहिये हैं;—

मुक्ताचूर्णमुदीर्णपूर्णकनकस्थाल्यर्पितं शुद्धिभृद्
व्यस्तोद्भासितपेषणीषु युवती श्लाघ्याभिरुत्पेषितम् ।

चंचच्चंद्रकलाकलापहृदयाहंकारनिर्वापकं
स्थाप्याग्रेविधिमंजुलं धनद भो सन्मंडलं संलिख ॥ ३३३ ॥

पंचवर्णांके चूर्ण-मंडल मांडनेके योग्य विस्तीर्ण पूर्ण सुवर्णांके थालमैं अर्पण किया, अरु शुद्धिकूं धारण करनेवारा अरु रात्रिमैं प्रकाश करै ऐसी चाकीमैं युवान शोभनीक स्त्रियां करि पेषित किया अरु देदीप्यमान चंद्रमाकी कला सुमूहका मनका मानकूं दूरि करनेवारा ऐसाकूं, हे कुवेर! अग्रभागमैं स्थापन करि समीचीन मंडलकूं लिख। ऐसैं पढ़ि सुफेद चूर्णनकूं स्थापन करना ॥ ३३३ ॥

श्वेतचूर्ण स्थापनं ॥

हारिद्रपीतमणिचूर्णकृताधिवासो स्वर्णाविखंडपरिमंडलभृद्विकल्पः ।
त्वं भो कुवेर। जिनसद्मनि चित्रशोभे सन्मंडलं रदशुभायति पुण्यहेतोः ॥ ३३४ ॥

वहुरि हलदी समान पीतवर्ण मणिका चूर्ण करि किया है वास्तु-विधि जानैं, ऐसा हे कुवेरदेव! तुम सुवर्ण खंडनके परिमंडल कहिये आभूषण तिननैं धारण करनेमैं है विकल्प जाकैं ऐसा हुवा संता चित्र विचित्र है शोभा जाकी ऐसा जिनेन्द्रभगवानमैं सुन्दर पुण्य-फलके समीचीन मंडल लिखौ ॥ ३३४ ॥

पीतचूर्णस्थापनं ॥

वैडूर्यरत्नकृतचूर्णमनर्घ्यजातं वास्तोष्पतीयवनभूसदृशं मनोज्ञं ।
उड्डीयमानशुकपक्षवदाप्लुतांगं संगृह्य गुह्यकपते रदमंडलानि ॥ ३३५ ॥

वहुरि—हे गुह्यकपते, हे कुवेर! वहुमूल्य अरु इंद्रके नंदनवनकी पृथ्वी समान, अर्थात् सघन हरितवर्ण ऐसा मनोज्ञ अरु उड़ता जो शुभ पत्तीका पत्तवत् देदीप्यमान चिह्न-युक्त वैडूर्यमणिका चूर्णनै ग्रहण करि मंडलननैं लिखौ ॥ ३३५ ॥

हरिच्चूर्ण स्थापनं ॥

माणिक्यताम्रमणिचूर्णसुपांशुमंतैः हस्ते प्रगृह्य समवस्त्रातिचित्रकार ।
सन्मंडलं जिनपतेः प्रतियातनेष्टौ संलिख्य निर्जरगणे कृतिमान् भवेथाः ॥ ३३६ ॥

बहुरि—हे कुवेर ! हे समवसरणका चित्रकार ! तुम वेद-मंत्रन करि माणिक्य मणि अरु तांमडा नामक मणिका चूर्णनैं हस्तमैं ग्रहण करि जिनेंद्रका बिंबकी प्रतिष्ठा-यज्ञमें मंडलनैं लिखि देवनका गणमैं कृतकृत्य होउ ॥ ३३६ ॥

रक्तचूर्णस्थापनं ॥

गारुत्मताश्मशिखिकंठमणिप्रवाहजातः सुकौशलकृता हृदयापहारी ।
चूर्णोलिपक्षसमतामुपनीय यक्षराजेन मंडलविधौ विनियोक्तुमिष्टः ॥ ३३७ ॥

बहुरि नीलकंठ मणि अरु मयूरकंठ मणिका प्रवाहमैं उत्पन्न भयौ ऐसा चतुराई करनेहारेनका हृदयकूं हरणेवारो चूर्ण है सो भ्रमर-पक्षकी समान तानैं प्राप्त होय कुवेरनैं मंडलका विधानमैं विनियोग करनेकूं इष्ट किया है ॥ ३३७ ॥

कृष्णचूर्णस्थापनं ॥

कोणेषु वेद्याश्चतुरस्रदेशे संस्थाप्य गाढं घनघातयोगात् ।
सद्धीरकान् शंकुवदासितांश्च काष्ठाविमूढीं शिथिलीकरोतु ॥ ३३८ ॥

वेदीका च्यारयूं कोणामैं गाढ़ा घणाकी चोटतैं समीचीन कीलां समान हीरानैं स्थापित करि दिग्-मूढतानैं निवारण करौ। ऐसैं हीरक स्थापन करै ॥ ३३८ ॥

इति वेद्याः कोणे हीरक स्थापनं ॥

ऐसैं पृथक् पृथक् मंत्र पढ़ि करि पंच वर्णका चूर्णकूं स्थापन करै अरु मंडल लिखै ॥ आगैं अन्य विधि कहिये हैं,—

स्थाने स्थाने संनिवेश्याः पताका लघ्वः स्थूला उन्नतांशा महोर्व्याम् ।
वादित्राणां नादपूर्वं वरस्त्रीगीतध्वानैर्मंगलार्थैरनूनैः ॥ ३३९ ॥

बहुरि ठिकाणैं ठिकाणैं छोटी बावड़ी ध्वजा ऊंची स्थापन करनी, अरु यज्ञभूमिमैं वादित्रनका शब्द-पूर्वक बहुत सुन्दर स्त्रियोंका गीत-गान मंगलके अर्थि करावना ॥ ३३९ ॥

इति वेद्यग्रभूमौ च वेदीपरितो लघुपताका स्थापनं ॥

ऐसैं वेदीकी अग्रभूमिमैं तथा चहुंओर छोटी ध्वजा स्थापन करनी ॥ अब मंगल-कलसका स्थापन कहिये हैं,—

वाहद्वाहिन्युत्तमे तीरदेशे पुण्यस्त्रीभिर्मंगलध्वानरम्यं ।
गत्वा शुद्धं संवरं स्वर्णकुम्भे संग्राह्योच्चै र्नीयतां वेदिकायाम् ॥ ३४० ॥

यज्ञकर्त्ता पवित्र स्त्रियांका मंगल शब्द-पूर्वक सुन्दर गंगा सिंधु आदि नदीनका उत्तम तीर-प्रदेशमैं प्राप्त होय अरु शुद्ध सुवर्णका कुंभमैं जल ग्रहण करि उच्च वेदीमैं ल्यावै ॥ ३४० ॥

वेद्या मूले पंचरत्नोपशोभं कंठेलंबान्माल्यमादर्शयुक्तं ।
माणिक्याभं कांचनं पूगदर्भस्त्रक्वासोभं सद्घटं स्थापयेद् वै ॥ ३४१ ॥

वहुरि वेदका मूलमैं रत्न-पंचक पंच वर्णात्मक करि शोभित अरु कंठमैं लंबायमान है माला पुष्पनिकी जाकैं, अरु दर्पण-संयुक्त अरु माणिक्य वर्ण सुवर्णमयी अरु सुपारी दर्भ पुष्प वस्त्र करि भासमान, ऐसा घटकूं स्थापन करै ॥ ३४१ ॥

कलश स्थापनका इह मंत्र पढ़ना—

ओं ह्रीं अर्हं मंगलकलशकस्थापनं करोमि स्वाहा ॥

इति कलशस्थापनं ॥

अव इस यज्ञमें दोय वेदी सम्मत हैं; एक तौ याग-मंडलके वास्तैं मुख्य वेदी, अरु दूजी उत्तरकर्म जप ध्यान मंत्र आदिके निमित्त उत्तर-वेदी है ॥

अथोत्तरस्मै कृतिकर्मणे कृती वेदीं द्वितीयां विनिवर्त्य पावनीं ।
यागीयमंत्राणि तथोत्तरं पृथक् कर्मारंभतां यजनक्रियोचितं ॥ ३४२ ॥

अथानंतर यज्ञका कर्त्ता उत्तर क्रियाकर्मके निमित्त दूसरी पवित्र वेदीकूं रचि, उसमैं यज्ञके मंत्रनकूं तथा यज्ञ-क्रियाके योग्य कर्म जुदा आरंभ करै ॥ ३४२ ॥

अत्रैव शैलानयनं विधाय मुहूर्त्तवर्यें विधिवेदिशिल्पी ।
पद्मासनकायविसर्जनांकं विंबं जिनेंद्रस्य घटेत युक्त्या ॥ ३४३ ॥

अर इहां ही सुन्दर मुहूर्तमैं विधिनैं जाननेवारो शिल्पी है सो जिनेंद्रका बिंबनैं पद्मासन वा कायोत्सग आसन युक्त करि गढ़ै; अर्थात् पूर्व घटित भी मूर्ति ताका लांछनका चिह्न इहां घडै ॥ ३४३ ॥

चंद्रप्रभं वा नवमं वलक्षं सुपार्श्वपार्श्वौ हरितौ विधेयौ ।
श्यामं तु विंशं खलु नेमिनाथं श्रीवासुपूज्यं कमलप्रभं च ॥ ३४४ ॥
गांगेयवर्णानितरान् विदध्यात् सत्प्रातिहार्यादिविभूतिभूषान् ।
सिद्धेश्वराणां तु विभूतिमुक्तं विंबं मुनीनामपि नामचिन्हं ॥ ३४५ ॥

तहां चन्द्रप्रभ अष्टमतीर्थंकर तथा नवम जो पुष्पदंत तीर्थंकर तो स्वेतवर्ण तथा सुपार्श्व नाथ स्वामीका बिंबनैं हरितवर्ण निर्मापन करना अरु वीसमां मुनिसुव्रतस्वामी अर नेमिनाथनैं श्यामवर्ण करना, अरु वासुपूज्य अर पद्मप्रभनैं रक्तवर्ण करना, अरु अन्य षोड़श तीर्थंकरोंका वर्ण सुवर्ण समान करना । सो सर्व प्रातिहार्य विभूति संयुक्त करना । अरु सिद्धांकी प्रतिमा प्रातिहार्य अर चिह्नरहित करनी अरु बाहुबलि संजयंतस्वामीकी मूर्तिभी अपना नाम ही चिह्न जाकैं ऐसी करनी ॥ ३४४—३४५ ॥

गोवारणाश्वाः कपिकोकपद्माः स्वस्त्यौषधीशौ मकरद्रुमांकौ ।
गंडौलुलायः किटिसेधिके च वज्रं मृगोजः कुसुमं घटश्च ॥ ३४६ ॥
कूर्मोत्पलं शंखभुजंगसिंहाः क्रमेण बिंबेऽकाविकल्पनानि ।
स्थाप्यानि तेषां सुखतो ग्रहार्थमचेतने संव्यवहारसिद्ध्यै ॥ ३४७ ॥

अब वे चिह्न कौनसैं हैं, तिनकूं क्रमकरि दिखावैं हैं । गो कहिये वृषभ १, वारण वा हाथी १, अश्व वा घोड़ा १, कपि वा बानर १, कोक चकवो १, पद्म लाल-कमल १, स्वस्तिक सांथियो १, औषधीश कहिये चंद्रमा १, मकर वा वडो मत्स्य १, द्रुमवृक्ष१, गंड गैंडो १, लुलाय भैंसो १, किटि शूकर १, सेधिका सेही १, वज्र आयुध विशेष १, मृग हरिण१, अज बकरो १, कुसुम पुष्प १, घट कलश १, कूर्म कछुवो १, उत्पल मुद्रित कमल १, शंख समुद्र-जलजंतु १, भुजंग सर्प १, सिंह नाहर १, ऐसैं चौईस तीर्थंकरनके चौईस चिह्न सुखसैं मूर्तिका पिछाणवा तांई तथा कार्यांतरमैं मूर्तिका ग्रहण करने अर्थि अचेतन वस्तुमैं संव्यवहार सिद्धि निमित्त स्थापन कारना ॥ ३४६—३४७ ॥

अचाल्यबिंबे तु तदग्रभूमौ कल्याणयोगाद्धरणं विधेयं ।
भावानुरूपाऽऽत्मनि शक्तिरिष्टा गौणार्पिता न्यायसमागमेन ॥ ३४८ ॥

और विशेष इह है कि पर्वतमैं भित्तिमैं उकीरा अचल बिंब निर्माण करिये तौ ताका अग्रभागमैं कल्याण कल्पना अथवा याग मंगल आदिको उद्धार करनो। इस आत्मामैं अपने भावानुकूल गौण मुख्य विधि करि अनंतशक्ति कथित है सो इष्ट है ॥ ३४८ ॥

प्राणप्रतिष्ठाप्यधिवासना च संस्कारनेत्रोच्छ्रितिसूरिमंत्राः ।
मूलं जिनत्वाऽधिगमे क्रियाऽन्या भक्तिप्रधाना सुकृतोद्भवाय ॥ ३४९ ॥

इहां प्राण-प्रतिष्ठा मंत्रविधि अरु अधिवासना मंत्रविधि अरु नेत्रोन्मीलन संस्कार कहिये अंक स्थापन अरु सूरिमंत्र, ये विधि सर्वज्ञत्व प्राप्तिमैं मुख्य है। अन्य विधि पुण्यानुबंध देनेवारी क्रिया भक्तिविशेष निमित्त है। अर्थात् आवश्यक विधि सर्व बिंबनमैं करनी, अन्य क्रिया मूल बिंबमैं करनी, अर्थात् प्राण-प्रतिष्ठा आदि तौ होय ही अरु पंचकल्याणकादि विधि स्वभावसिद्ध है ॥ ३४९ ॥

विधाय गर्भान्वयसत्क्रियादिं यागोपकार्याध्वरमंडलार्चाम् ।
मेरौ कृतस्नानविधिं जिनेंद्रं पूर्वत्र वेद्यां तु नयेन्मरुत्वान् ॥ ३५० ॥

अरु तिन विधिमैं गर्भान्वय क्रिया आदि अरु यज्ञ-मंडल यज्ञपूजा अरु मेरुपै स्नान कराय स्थापन पूर्व वेदीमैं इंद्र करै ॥ ३५० ॥

इति बिंबानयनविधानम्।

होमार्थकुंडानिपुरोत्तरस्याः क्रियान्नवोत्कृष्टतया च पंच ।
मध्याद्विधेर्वा त्रयमेव तत्र वृत्तं त्रिकोणं.चतुरस्रमेव ॥ ३५१ ॥

तन्मेखलानां त्रयमत्र कुंड प्रशस्तमार्यैः पृथुनोन्नतत्वे।
वाणानुयोगाग्निमितं वितस्तिप्रमावगाहा यतिरुढपक्षात् ॥ ३५२ ॥

वेद्याः कुंडीयभूम्याश्चांतरं हस्तद्वयाधिकं ।
तत्पीठे छत्रचक्रत्रयं पूजार्हमादिशेत् ॥ ३५३ ॥

गार्हपत्याहवीयाख्यौ दाक्षिणाग्नि रुदाहृताः ।
आहूतिकार्ये तीर्थेशान्यकेवलिगणोद्धृतः ॥ ३५४ ॥

शांतिकृन्मनुभिस्तत्राज्ञाहूतिर्व्याहृतीष्टिभिः ।
अग्निसंस्कारपूर्वं तत्प्रकारस्त्वग्निमे विधौ ॥ ३५५ ॥

वास्तुप्रमाणेन तु गात्रकेन वामेन शेते खलु नित्यकालः ।
त्रिभिस्तु कालौ परिवर्त्त्य भूमौ तं वास्तुनागं प्रवदंति संतः ॥ ३५६ ॥

भाद्रादिके वासवदिक् शिरस्को मार्गादिषु स्यात्रिषु याम्यमूर्धा ।
प्रत्यक्शिरस्कः खलु फाल्गुनादौ ज्येष्ठादिमासेषु कुबेरदृश्यः ॥ ३५७ ॥

मूलवेद्याविधानेऽपि मुख्याकालव्यवस्थितिः ।
यथार्हं शोधयेद् वास्तुशास्त्रं नोल्लंघयेत् कदा ॥ ॥ ३५८ ॥

अथवाऽपि मृदा सुवर्णभासा करमानं चतुरंगुलोच्चमल्पे ।
हवने विदधीतकार्यमूलं विबुधः स्थंडिलमेव वेदकोणं ॥ ३५९ ॥

इति होमकुंडप्रक्लृप्तिः ।

अथ राजगृहोपकल्पनं ।

अव जिनेंद्रकी उत्पत्ति आदि उत्सवको मूलकरण राजाको गृह होय है। ताकी रचना कहिये है—

दक्षिणदिशि जिनवेद्या राजगृहं प्रसृतचत्वराकीर्णम् ।
दशपंचकत्रिकधरिणीभागमनेकाट्टवासयुतं ॥ ३६० ॥

कुर्यादंतः पुरकृतसुषममधोभुवि च सर्वतोभद्रं ।
पाषाणकाष्ठशिविरे रचितं दृढबंधनाकीर्णम् ॥ ३६१ ॥

चलत्पताकं धृततोरणांकं संगीतवादित्रगणेन रुद्धं ।
स्वर्गात्समानीतमिव प्रक्लृप्तं तदूर्ध्वभागेडितमातृगेहं ॥ ३६२ ॥

स्वप्नावलीषोडशचित्रवल्ली संदर्भमांगल्यनियावभासि ।
अनेकनारीकलगीतरम्यमंतःपुरं संविदधीत यज्वा ॥ ३६३ ॥

वेदीतैं दक्षिण दिशाकी ओर विस्तार युक्त अंगणावारो दशखंण पांचखंण तीनखंणको अरु अनेक अटारी युक्त, अरु अंतःपुर जो राणी-कां महल तिनकी शोभा युक्त अरु नीचली पृथ्वीमैं सर्वतोभद्र नाम स्थान संयुक्त अर पाषाण अरु काष्ठके गृह वस्त्रके गृहके दृढ़ बंधन करि रचित, अरु चलायमान ध्वजावारो अरु तोरणका चिह्नैं धारण करनेवारो अरु संगीत वादित्रका समूह करि व्याप्त अरु स्वर्गसैं ही मानूं आय रच्यौ गयौ अरु माताका शयन-स्थान ऊर्द्ध भाग है जाके ऐसो अरु षोडश स्वप्नका चित्राम संयुत आभूषण स्नानशाला करि शोभायमान अरु अनेक सौभाग्यवती स्त्रियांका मधुर गीत करि रमणीक ऐसो अंतःपुर यजमान रचै। ऐसो च्यार श्लोकको संबंध है॥ ३६०—३६३॥

तदंगणे नाटकसत्प्रसङ्गोपकार्यमाराद्दिशि चोत्तरस्यां ।
सुदर्शनो मेरुरुदीर्णशालो वनैश्चतुर्भिः परितो विभातु ॥ ३६४ ॥

अरु ताका अंगणमैं तांडव नृत्यका स्थान रचै अरु ताकी उत्तर दिशामैं दूर वा समीप सुदर्शनमेरु, भद्रशालादि च्यारूं वन करि वेष्टित शोभायमान करै॥ ३६४॥

अथ मेरुवर्णनम् ।

अथ मेरु वर्णन । जन्मकल्याणमैं मेरु ऐसा है सो कहिये है—

सप्तच्छदाशोकरसालचंपामहीरुहानेककृतोपशोभः ।
पांशुश्चतुर्भिः क्षणकोपरिष्टात् भागैः सुवर्णांचितविग्रहोद्धः ॥ ३६५ ॥

सप्तछद कहिये सनूनो अशोक-आसोपालो आम्र अरु चंपा आदिके अनेक वृक्ष निकरि उपशोभित अरु ऊपरि उपरि च्यार वन अर्थात् भद्रशाल नंदन सौमनस पांडुक वन चतुष्टय करि उन्नत अरु सुवर्ण रत्नमय ऐसा करावना ॥ ३६५ ॥

पांडुशिलामासनसंनिविष्टां संस्थाप्य सोपानचतुष्पथाढ्यां ।
तत्रैवकार्यो जलधिः शशांकः क्षीराब्धिनामा शुचितोयपूर्णः ॥ ३६६ ॥

अरु वहां सोपान-पैडी राजमार्ग संयुक्त पांडुकशिला तीन सिंहासन संयुक्त स्थापि करि वहां ही पंचम क्षीरसमुद्र सुंदर-शुद्ध] जल करि भृत ऐसा रचना ॥ ३६६ ॥

तत्रैव पूर्वत्र दिशासु दीक्षावनं विशालांगणकल्पशाखं ।
दीक्षातरुस्तत्र शिलाप्रदेशः संस्कारवाटीकृतगूढमध्या ॥ ३६७ ॥

अरु वहां ही वेदीकी पूर्वदिशामैं विशाल अनेक वृक्ष युक्त दीक्षावन स्थापन करना । वहां दीक्षावृक्ष मुख्य स्थापनां, तिसका अधोभागमें शिला स्फटिकमयी संस्कार करनेके पात्र अरु वाटिका कहिये अच्छादनकी कनात करि मध्यभाग है गूढ़ जामैं ऐसी थापना ॥ ३६७ ॥

अथाचार्यो यजमानेंद्रसामानिकानां तत्पत्नीनां च रक्षाबंधनपूर्वकसकलीकरणम् ।

अब इहां विधिका प्रारंभमैं आचार्य है सो यजमान अरु ताकी विवाहिता स्त्री अरु अन्य सभा-निवासी अरु स्त्रीजनोंके रक्षाबंधन करि सकलीकरण करै ॥ अब सकलीकरणके योग्य पात्र कहै हैं,—

अथेंद्रराजः परिबद्धकर्मा ह्याचार्यवर्यः क्रतुनायकश्च ।
स्थित्वा स चैत्योपकृतौ सुवेद्यां देहस्य शुद्धिं विदधातु मंत्रैः ॥ ३६८ ॥

प्रथम इंद्र बांध्यौ है यज्ञकौ व्यवसाय जानैं सो अरु यज्ञकौ कर्त्ता यजमान अरु आचार्य ए तीन प्राचीन प्रतिष्ठित विंब-युक्त वेदी मैं स्थित होय मंत्र करि देहकी शुद्धि करै ॥ ३६८ ॥

मनःप्रसत्यै वचसः प्रसत्यै कायप्रसत्यै च कषायहानिः ।
सैवाऽर्थतः स्यात् सकलीक्रियाऽन्या मंत्रैरुदारैःकृतिकल्पनांगा ॥ ३६९ ॥

मनकी प्रसन्नता निमित्त अरु वचनकी अरु कायकी प्रसन्नता निमित्त अंतरंग मल क्रोध मान माया लोभादि कषायनिकी हानि है सो ही निश्चय सकलीकरण है । और वडे उदार मंत्र करि हस्त हृदयादि स्पर्शन आदि क्रिया है सो यज्ञादि विधानमैं कल्पना मात्र है कि उसका ही संबोधनार्थ है ॥ ३६९ ॥

प्राक्कल्पितानेकविदुष्टभावप्रत्याहृतिं तां पुरतो विधाय ।
आचार्यसिद्धश्रुतभक्तिपाठं करोतु पूर्वं विजनप्रदेशे ॥ ३७० ॥

अरु ये तीन महाशय श्रीजिनके आगे पहली कालांतरमैं कल्पित रचित अनेक दुष्ट-भावनका प्रत्याख्यान करि, फिर एकांत स्थानमैं आचार्यभक्ति सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति पाठनैं करै ॥ ३७० ॥

शिरस्युरस्यक्षिगले ललाटे पंचाक्षरान् पिंडगधर्मसिद्ध्यै ।
आद्यंतवीजादिविदर्भगर्भै र्गुरूपदेशादथवा विदध्यात् ॥ ३७१ ॥

अरु पिंडस्थ धर्मध्यानकी शुद्धिके हेतु मस्तकमैं तथा वक्षःस्थलमैं, नेत्र अर कंठमैं, ललाटमैं पंच अक्षर 'अ सि आ उ सा' जे हैं तिननैं आदि अंतम 'ॐ नमः' इत्यादि बीज अर विदर्भ जो ममशिरो रक्ष रक्ष आदि गर्भ करि विधान करो अथवा गुरु उपदेशतैं अन्य प्रयोजनांतर देखि करै ॥ ३७१ ॥

अथ न्यासः।

अब न्यास कहिये है—

पूर्वमाचार्यसिद्धश्रुतचारित्रभक्तिपाठः कर्तव्याः कायोत्सर्गसमालोचनं च कृत्वा । ओं ह्रां णमोअरहंताणं, ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं, ह्री तर्जनीभ्यां नमः। ओं ह्रूं णमो आइरीयाणं, ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः। ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं, ह्रौं अनामिकाभ्यां नमः। ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं, ह्रः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ओं ह्रां ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ओं ह्रीं णमो अरहंताणं ह्रां मम शीर्षं रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वदनं रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रूं णमो आइरीयाणं ह्रूं हृदयं मम रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौ मम नाभि रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः मम पादौ रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रां णमो अरहंताणं ह्रां पूर्व-दिशात आगतविघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्री दक्षिणदिशात आगतविघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रूं णमो आइरीयाणं ह्रूं पश्चिमदिशात आगतविघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रौ णमो उवज्झा-याणं ह्रौं उत्तरदिशात आगतविघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वदिशात आगतविघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रां णमो अरहंताणं ह्रां मां रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं मम वस्त्रं रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं मम पूजाद्रव्यं रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं मम स्थलं रक्ष रक्ष स्वाहा। ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वं जगत् रक्ष रक्ष स्वाहा। क्षां क्षी क्षूं क्षौ क्षः सर्वदिशासु ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः सवदिशासु ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृत-वर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय सं सं क्ली क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रीं द्री द्रावय द्रावय ठः ठः ह्री स्वाहा ॥

इति चुलुकोदकं मंत्रयित्वा शिरः परिषेचनं ॥

पहली आचार्य, सिद्ध, श्रुत, चारित्रभक्ति पाठ करने योग्य है; फिरि कायोत्सर्गनैं समालोचन करै। प्रथम अरहंतकूं नमस्कार करि अंगुष्ठ, शुद्धि करै, फिरि सिद्धांका मंत्र करि तर्जनी अंगुलीकी शुद्धि करै, फिरि आचार्यनका नमस्कार मंत्र पढ़ि मध्यमा अंगुलीकूं शुद्ध कर, फिर उपाध्याय-मंत्र करि अनामिका अंगुलीकूं तथा साधु-मंत्रका उच्चारण करि कनिष्ठा अंगुलीकूं शुद्ध करै। अर सकल मंत्र करि अपने हाथ अरु तलभागका शोधन कर। सर्व क्रिया हस्तसैं होय है तातै हस्तशुद्धि कही ऐसें ही शिर, वदन, हृदय, नाभि, पादनकूं शुद्ध करै। फिरि दिशा-शुद्धि मंत्र पढै। फिर शरीरकूं, वस्त्रनकूं, पूजा-द्रव्यनकूं, वैठनेके स्थानकूं, तथा सर्व दृश्यमान जगत्कूं शुद्ध करै। 'क्षां' आदि पंच वीजनतैं सर्व दिशानैं द्वितीय 'ह्रां' आदि मंत्रनतैं शुद्ध करै। आगैं 'ॐ ह्रीं' आदि अमृत मंत्र करि अपनां दक्षिण हस्तकी अंजुलीमैं पवित्र जल करि अपना मस्तक परि सींच।

निजोत्तमांगामरभूधराग्रे संस्नापितः पार्श्वजिनेंद्रचंद्रः ।
क्षीराब्धिवृंदेन सुरेंद्रवृंदैः स्वं चिंतयेत्तज्जलपूतगात्रं ॥ ३७२ ॥

अरु ऐसा ध्यान करै कि अपना मस्तक-रूपी मेरुपर्वतका अग्रभागमैं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्र संस्थापित है अरु देवनका समूह करि क्षीर-समूद्र करि सिंचित किया ता जल करि मैं पवित्र भया हूं ॥ ३७२ ॥

पृथक्द्विधैकवाक्यांतं मुक्त्वोच्छ्वासं जपेन्नव ।
वारान् गाथां प्रतिक्रम्य निषिद्यालोचयेत्ततः ॥ ३७३ ॥

बहुरि णमोकार मंत्रके पंच पदनकूं दोय दोय वाक्यका अर एक वाक्यका अन्तमैं उच्छ्वास छोडि नव वार ज॰ । अरु गाथा सामायिकोक्त पढ़ि करि प्रतिक्रमण करि फिरि बैठि आलोचना करै ॥ ३७३ ॥

हस्तद्वये कनीयस्याद्यंगुलीनां यथाक्रमं ।
मूले रेखात्रयस्योर्ध्वमग्र च युगपत् सुधीः ॥ ३७४ ॥
तस्यौंह्रामादिह्रोमांतान्नमस्कारान् मिथः करौ ।
संयुज्यांगुष्ठयुग्मेन व्यस्तान् स्वांगेष्विति न्यसेत् ॥ ३७५ ॥

फिरि दोन्यू हाथकी छोटी आदि अंगुलीनका मूल मूलमैं रेखात्रयके ऊपरि यथाक्रम एकैं काल, ॐ ह्रीं आदि स्वाहान्त पंच नमस्कारनैं स्थापि दोन्यूं हाथनैं जोड़ि अंगुष्ट आदि क्रमतै विचक्षण अपना अंगमैं न्यास करै ॥ ३७४—३७५ ॥

ओं ह्रीं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं स्वाहा । ओं ह्रीं णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं स्वाहा । ओं ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं स्वाहा ॥ एवं नववारं जपः, ततः प्रतिक्रमणं आलोचनं दोषगर्हणां.निंदनं च कुर्यात् ॥ ओं ह्रां णमो अरहंताणं ह्रां स्वाहा हृदये । ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं स्वाहा ललाटे । ओं ह्रूं णमो आइरीयाणं ह्रूं स्वाहा शिरसि दक्षिणे । ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं स्वाहा शिरसि पश्चिमे । ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः स्वाहा शिरसि वामे ॥ पुनस्तानेव मंत्रान् शिरसः प्राग्भागे शिरसि दक्षिणे पश्चिमे उत्तरे च क्रमेण विन्यसेत् ॥ ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष ह्रूं फट् स्वाहा ॥ अनेन पुष्पाक्षतं सप्तवारानभिमंत्र्य परिचारकानां शीर्षे परिक्षिपेत् ॥ ओं क्षूं ह्रूं फट् किरिटिं

घातय घातय परिविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखंडान् कुरु कुरु परमुद्रां छिंद छिंद परमंत्रान् भिंद भिंद द्यां दंवः फट् स्वाहा ॥ अनेन सिद्धार्थानभिमंत्र्य सर्वविघ्नोपशमार्थं सर्वदिक्षु क्षिपेत् ॥

सो मंत्र 'ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं' इत्यादि नव वार करै । पीछै प्रतिक्रमण चतुर्दिशा प्रति करि अपना दोषांनैं चितारै अर दोषांकी गर्हा करै, आगामी कालमैं निंदा करै, फिरि हृदय आदिमैं; शिरका वामभाग तांई विचारै। फिरि तिन मंत्रननैं शिरका पूर्वभागमैं, दक्षिणभागमैं, पश्चिमभागमैं, उत्तरभागमैं, अधोभागमैं अर्थात् ग्रीवा उपरि थापै । बहुरि 'ॐ नमोऽर्हते सर्वं रक्षेति' इस मंत्र करि पुष्प अक्षत मंत्र सप्त वार, परिचारक जे समीप रहनेवारे सामग्री संपादक आदि, तिनके मस्तकपरि क्षेपै। फिरि पुष्पाक्षतनैं, ॐ ह्रूं फट् किरिटीं आदि मंत्र करि अभिमंत्रित करि सर्व विघ्ननका निवारणार्थ सर्व दिशामैं छेपै ।

अथ मातृकान्यासः ।

अकारादिक्षकारांता वर्णा प्रोक्तास्तु मातृकाः ।
सृष्टिन्यासः स्थितिन्यासः संहृतिन्यासतस्त्रिधा ॥ ३७६ ॥

मातृका नाम अकारादि क्षकारांत वर्णका है, ताका तीन क्रम है—सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम, संहारक्रम ॥ ३७६ ॥

हलो वीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः ।
मूर्धादिपादपर्यंतन्यासान् मंत्राणि कारयेत् ॥ ३७७ ॥

तहां ककारादि हकारांतकूं हल संज्ञा है, ते वीज हैं। अकारादि स्वर है, ते शक्तिरूप है, तिनकूं मस्तकादि पाद पर्यन्त स्थापन करै। येह स्थापन ध्यानमात्र है, लिखना नहीं है। सो मूल पाठमें स्पष्ट है ॥ ३७७ ॥

तथाहि—ओं अं नमः ललाटे, ओं आं नमः मुखवृत्ते, ओं इं नमः दक्षनेत्रे, ओं ईं नमः वामनेत्रे, ओं उं नमः दक्षकर्णे, ओं ऊं नमः वामकर्णे, ओं ऋं नमः दक्षनसि, ओं ॠं नमः वामनसि, ओं ऌं नमः दक्षगंडे, ओं ॡं नमः वामगंडे, ओं एं नमः अध ओष्ठे, ओं ऐं नमः

ऊर्ध्वओष्ठे, ओं ओं नमः अधोदन्ते, ओं औं नमः ऊर्ध्वदन्ते, ओं अं नमः मूर्ध्नि, ओं अः नमः जिह्वाग्रे, ओं कं नमः दत्तवाहुदंडे, ओं खं नमः दत्तवाहुमध्यसंधो, ओं गं नमः दत्तवाहुनाडोसंधो, ओं घं नमः दत्तकरांगुलिसंधौ, ओं ङं नमः दत्तकराग्रे, ओं चं नमः वामवाहुदंडे, ओं छं नमः वामवाहुमध्यसंधौ, ओं जं नमः वामहस्तनाडोसंधौ, ओं झं नमः वामहस्तांगुलिसंधौ, ओं ञं नमः वामहस्ताग्रे, ओं टं नमः दत्तपादमध्यसंधौ, ओं ठं नमः दत्तपादसंधो, ओं डं नमः दत्तपादगुल्फे, ओं ढं नमः दत्तपादमूले, ओं णं नमः दत्तपादाग्रे ॥ एवं वामपादे तवर्गं न्यस्य पार्श्वादिकुत्त्यंतं पवर्गं न्यस्य, हृदि यं, दत्तोसे रं, ककुदि लं, वामांशे वं, हृदादिदत्तकरे शं, हृदादिवामकरे षं, हृदादिदत्तपादे सं, हृदादिवामपादे हं, हृदादिजठरे लं, हृदादिवदने क्षं न्यसेत्। पिंडस्थधर्म्यध्यानमिदं ।

आगैं कहैं हैं कि येह न्यास कहां करना;—

आचार्येण सदा कार्यः क्रियां पश्चात्समाचरेत् ।
श्रीमुखोद्धाटने नेत्रोन्मीलने कंकणोज्झने ॥ ३७८ ॥
सूरिमंत्रप्रयोगे चाधिवासने च मुख्यतः ।
कृत्वैव मातृकान्यासं विदध्याद्विधिमुत्तमं ॥ ३७९ ॥

आचार्य जो हैं तानैं येह न्यास सदा ही करने योग्य हैं। पश्चात् श्रीमुखोद्घाटनमैं अरु कंकणमोचनमैं क्रिया करनी। तथा सूरिमंत्रका प्रयोगमें अधिवासन विधिमैं मुख्यता करि मातृकान्यासनैं करि उत्तम विधि करै ॥३७८–३७९॥

नांदी यस्मिन् दिने क्लृप्ता तदादि प्रत्यंहमनु ।
अनादिसिद्धं जपतां सिद्धिर्लक्ष्मीश्च वर्धते ॥ ३८० ॥

बहुरि जा दिनमैं नांदी-विधान कलपना किया, ता दिनसैं अनादिसिद्ध मंत्रकूं प्रतिदिन जपनेवारेनकैं लक्ष्मी अर सिद्धि-वृद्धि प्राप्त होय है ॥ ३८० ॥

अथ मातृकामंत्रः ।

ओं नमोऽर्हं अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, क्लीं ह्रीं क्रौं स्वाहा ॥ १०८ ॥ इति ॥

अथ मातृकामंत्र,—ॐ नमो अह अआ इई उऊ ऋॠ ऌॡ एऐ ओऔ अंअः । क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, क्लीं ह्रीं क्रौं स्वाहा ॥

अथानादि मंत्रः ।

ओं ह्रीं णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ चत्तारिमंगलं, अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहुमंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मोमंगलं, चत्तारिलोगुत्तमा, अरहंतलोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहुलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मोलोगुत्तमा, चत्तारिसरणं पव्वज्जामि, अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि ॥ ओं ह्रीं स्वाहा ॥ १०८ जपः कार्यः ॥

व्यग्रतालस्यनिष्ठीवक्रोधपादप्रसारणं ।
अन्यभाषान्त्यजेक्षे च जपकाले त्यजेत्सुधीः ॥ ३८१ ॥

अथ अनादिमन्त्र—ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं इत्यादि धम्मोसरणं पव्वज्जामि ॐ ह्रीं स्वाहा इत्यंत है, ताका जप करना । अर जप समय व्यग्रता, चंचलचित्तता अरु आलस्य अर थूकना अर क्रोध करना अरु पगका फैलवाना तथा अन्यसै भाषण अरु चांडालका देखना सो सुधी पुरुष छोडै ॥ ३८१ ॥

उक्तंच—स्त्रीशूद्रभाषणं निंदां तांबूलं शयनं दिवा ।
प्रतिग्रहं नृत्यगीते कौटिल्यं वर्जयेत्सदा ॥ १ ॥
त्रिकालपूजां देवस्य स्तुतिं विश्वासमाश्रयेत् ।
प्रत्यहं प्रत्यहं तावन्नैव न्यूनाधिकं चरेत् ॥ २ ॥
तीर्थादौ निर्जन स्थाने भूमिग्रहणपूर्वकम् ।
नवधा तां धराङ्कृत्वा पूर्वादिषु समालिखेत् ॥ ३ ॥
कोष्ठेषु सप्तवर्गांश्च लक्षौ मध्ये तथा स्वरान् ।

क्षेत्रनामादिमोवर्णो यत्र कोष्ठे भवेत्ततः ॥ ४ ॥
उपविश्य जपं कुर्य्यात् नान्यस्मिन् दुःखदेस्थले ।
आत्मध्यानं जपं कुर्य्यादुपांशुर्वाथमानसम् ॥ ५ ॥*

इति कूर्मचक्रशोधनविधिः ।

अव कूर्म का शोधन करि वहां बैठि जप करै सो ग्रंथांतरसैं कहिये हैं। तीर्थकी भूमिका नव विभाग करि नव कोष्टमैं सप्त वर्गानैं लिखै अरु मध्यमैं लक्ष अरु स्वरानैं लिखै। तहां क्षेत्रको आदिको वर्ण जिस कोष्टमैं होय, तहां बैठि जप करै। मध्याह्न पहलो जपका प्रारंभ करै, स्पष्टोच्चारण अथवा मानस जप करै।

अन्य ग्रंथनमैं,—कहा भी है स्त्रीका शूद्रका स्पर्श अरु भाषण अरु निंदा करना अरु तांबूल चर्वण तथा शयन दिनमैं अरु दानका लेना अरु नृत्य गान अरु कुटिलता इनकूं सदा वर्जन करना। अरु देवताको त्रिकाल पूजा स्तुति अरु विश्वासका रखना। ऐसैं प्रतिदिन करि न्यूनाधिकता दोषकूं परिहार करै।

अथ यंत्रः ।

<table>
<tr><td>लक्ष</td><td colspan="3">क ख ग घ ङ</td><td>च छ ज झ ञ</td></tr>
<tr><td rowspan="3">श ष स ह</td><td>अं अः</td><td>अ आ</td><td>इ ई</td><td rowspan="3">ट ठ ड ढ ण</td></tr>
<tr><td>ओ औ</td><td>ॡ</td><td>उ ऊ</td></tr>
<tr><td>ए ऐ</td><td>ऌ ॡ</td><td>ऋ ॠ</td></tr>
<tr><td>य र ल व</td><td colspan="3">प फ ब भ म</td><td>त थ द ध न</td></tr>
</table>

* इन श्लोकोंकी भाषा मूलप्रतिमें नहीं मिली।

अथ यंत्रमंत्राधिकारः ॥ १ ॥

अब यंत्र मंत्रनिका अधिकार कहिये हैं—पूर्व विनायकं विघ्नापहरापरनामकं उद्धार्यते ॥ १ ॥

मध्ये तेजस्ततः स्याद् वलयमयधनुः संख्यकोष्ठेषु पंच
पूज्याद्यान् स्थाप्य वृत्ते तत उपरितने द्वादशांभोरुहाणि ।
तत्र स्युर्मंगलान्युत्तमशरणपदान्याद्यसिद्धा महर्षि-
धर्मप्रख्यातभांजि त्रिभुवनपतिना वेष्टयेदंकुशाढ्यं ॥ ३८२ ॥

तहां प्रथम विनायक यंत्र सो ही शांति-यंत्र है अरु सो ही विघनहर-यंत्र है, कि मध्यमैं ॐकार वाके वलयमैं कोष्ठ पांच करना, तामैं 'अ सि आ उ सा' लिखैं। पीछैं तृतीय वलय, तामैं द्वादश कोठा, तिनमैं अरहंत मंगलादि द्वादश मंत्र लिखै। पीछैं 'ह्रींकार वेष्टन क्रौं' करि : रोकन करै ॥ ३८२ ॥ अब याका फल कहै है—

यंत्रं विनायकपदं विनयार्थमूलं सर्वेषु मंगलविधिष्वनुयोज्यमानं ।
प्रत्यूहजालमपहाय समाप्तिमेति शास्त्रप्रतिष्ठितविधौ च विवाहकार्ये ॥ ३८३ ॥

यह विनायक नामक यंत्र विनयकरि सिद्ध होय है। मुख्यता करि शास्त्रकी रचनाका आदिमैं अरु प्रतिष्ठा-विधानमैं अरु विवाह-कार्यमैं कहा है ॥ ३८३ ॥

(विनायक यंत्रका आकार पृथक् दिया है)

अथ शांतियंत्रोद्धारः ॥ २ ॥

अब शांतिदायक यंत्रकों कहै है—

स्थाप्यं ब्रह्मपदं ततोऽपि वलयेऽनादि प्रसिद्धाक्षरं
तस्मादूर्ध्ववृते चतुर्युतसुविंशास्तीर्थनाथास्तत

ऊर्ध्वे ऋद्धिधरा विनेयमुखनुत्यंताश्चतुः षष्टिकाः
ह्रीं वेष्ट्याग्गजशस्त्रकृद्धुधिहरं यंत्रं सुशांतिप्रदं ॥ ३८४ ॥

मध्य कर्णिकामैं 'अर्हं' ऐसा पंच परमेष्ठीका बीज है, ताके ऊपरि वलयमैं अनादि मंत्र १ लिखना, ता ऊपरि वलयमैं चतुर्विंशति तीर्थंकरका नाम अरु ता ऊपरि वलयमैं चौंसठि ऋद्धिके धारक मुनीनका मंत्र अर 'ह्रींकार वेष्टित क्रौंकार' रुद्ध करना ॥३८४॥ अब फल कहैं हैं:—

घोरारिदुःखजनितामपराधजातां लूताज्वरव्रणभगंदरकासपीडां ।
बाधां व्यपोहति समर्चितमेतदाशु शांतिप्रदं परममंत्रनिरूपणेन ॥ ३८५ ॥

घोर वैरीके दुःखकूं अर अपराधसैं उत्पन्न बाधा, लूता कहिये मकड़ी आदिका विष, ज्वर, व्रण, भगंदर, काश इत्यादिकी पीडानैं दूरि करै है, अर पूजन किया परम मंत्र जो णमोकार मंत्र करि शांतिनैं देवै है ॥ ३८५ ॥

(श्रीशांतियंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ पूजायंत्रोद्धारः ॥ ३ ॥

अब पूजा-यंत्र कहै हैं,—

विघ्नहर यंत्रकौं ताम्रपत्र पर लिख वेदीमैं अन्य प्रतिष्ठेय मूर्तिनिके समीप स्थापित करै । अन्य यंत्र भी जिन जिन कल्याण विधिनिमैं उपयुक्त होइगे उनको आगै स्पष्ट लिखैंगे ।

मध्येनाहतलोकभर्तृजठरेऽर्हद्भ्यो नमस्तद्धृते
कोष्ठानां नवके प्रपूज्य विततिः स्याच्चैत्यचैत्यालयाः ।
वाणी धर्मविधी चतुर्थविभजा भक्त्यादिनुत्यंतकाः
ह्रीं क्रौं ऋद्धमिदं महार्चनकृतौ यंत्रं विमुक्तिप्रदं ॥ ३८६ ॥

अनाहत स्वरूपमें 'अर्हद्भ्यो नमः' ऐसा लिख; पाछैं ह्रींकार वलय, पीछैं नव कोठामें पंचपरमेष्ठी पद अरु चैत्य चत्यालय आगम धर्म स्थापन करि, ॐ ह्री आदि चतुर्थ्यंत पद अग्रमें नमः अंतमें मंत्र स्थापन करै। ह्रीं वेष्टित क्रौं रुद्ध करै ॥ ३८६ ॥ याका फल,—

यः पूजयेदतुलभक्तिभरेण पूजायंत्रं त्रिकालजपयुग्विधिना मनुष्यः।
तस्यार्थसिद्धिपरिवृद्धिरनर्थहानिर्नित्यं करामलतले लुठति प्रसह्य ॥ ३८७ ॥

जो प्राणी अतुल भक्ति करि त्रिकाल इस यंत्रकूं पूजै उस मनुष्यके मनोरथकी सिद्धि अरु अनर्थकी हानि स्वतः ही करतलमैं बलात्कारतैं लुठै (आय प्राप्त होय) है ॥ ३८७ ॥

विघ्नहरं यंत्रं ताम्रपत्रे लिखित्वा वेद्यां प्रतिष्ठेयसंनिधाने स्थाप्यं अन्यानि यंत्राणि तत्तत्कल्याणविधिषूपयुक्तानि भविष्यन्तीति स्पष्टमग्रे लिखिष्यामीति दिक् ॥

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ श्रीकल्याणयंत्रोद्धारः ॥ ४ ॥

अब कल्याण-यंत्र कहै हैं:—

मध्येऽर्हं प्रणवोत्पुटं त्रिभुवनक्लींकारवेष्ट्यं ततः
पार्श्वे पंचशरद्वयं वहिरिते वृत्तेऽष्टकोष्ठान्विते।
ओं ह्रीं संपुटितानि मन्मथमहालक्ष्मीश्रुतानि क्रमात्
विश्वेशांकुशयोःस्मृतिरिदं त्रैलोक्यसाराभिधं ॥ ३८८ ॥

मध्यवृत्तमैं ॐकारका पुटमैं 'र्हं' ऐसा जिन बीज, फिर वलय देय ह्रींकार क्लींकारका वलय है; पीछैं वलयमैं पंचवाण द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः, तथा ह्रां ह्रीं ह्रौ ह्रः, अरु वाह्य वलयमैं आठ कोठा है तिनमें ॐ ह्रीं करि संपुटित क्लींकार ऐंकार अग्र गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाण पद चतुर्थ्यंत नमोन्त ऐसा पीछैं ह्रीं वेष्टित क्रौंकार रुद्ध, यह त्रैलोक्यसार यंत्र है ॥ ३८८ ॥ याका फल कहैं हैं:—

गर्भादिपंचभविकेषु त्रिलोकसारं पूर्वं समर्च्य विधिना तत उत्तराणि ।

कर्माणि संवितनुते परमार्थमार्गे नो प्रच्यवो भवति पूजयतो नरस्य ॥ ३८९ ॥

प्रतिष्ठा-विधानमै पंचकल्याण होय हैं, तिनमैं त्रैलोक्यसार यंत्रका प्रथम पूजन करि पीछैं उत्तम कर्म का कार्य करै, ताकैं कोई प्रकार क्षति नहीं होय है ॥ ३८९ ॥

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ यंत्रेशयंत्रोद्धारः ॥ ५ ॥

अब यंत्रेश नाम यंत्र कहिये हैं:—

अंतोऽर्हत्गजरुद्रमात्रिभुवनं क्लीं शांतिपुष्टिंकुरु

द्विः स्वाहा परितोऽब्जषोडशदले पंचेव्यहोमामृतैः ।

द्वीं वें हं ह्यमृतेनवेष्ट्यमसुना विश्वक् रमात्र्यंगयो

ह्रीं वेष्ट्या कलशेन च क्षितिभुजा यंत्रेशमेवंविधं ॥ ३९० ॥

मध्य कर्णिकामैं ॐ हैं गज रुद्र कहिये क्रौं रमा श्रीं त्रिभुवन ह्रीं अरु क्लीं अग्रे शांति पुष्टि कुरु कुरु स्वाहा, ऐसैं लिखै। फिर वलयमैं षोडश वलयमैं अ सि आ उ सा स्वाहा, ह्रीं द्वीं वं मं तं पं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं ऐसैं लिखै अरु पीछैं वलयमैं जलमंडलमैं पार्श्वमैं वं वं, अधः ऊर्द्ध मैं पं पं मध्यमैं ह्रीं श्रीं ह्रीं लिखै, पृथ्वीमंडल ऐसा यंत्रेश नामक यंत्र है॥ ३९० ॥ याका फल ऐसा है कि—

विद्याः प्रसाधयतुमर्हति योऽत्र धीमान् यंत्रेशमुत्तममिदं प्रथमं समर्च्य ।

एतन्मनुं जपति शास्त्रगमित्ववाग्मित्वाद्यंबुधिं तरति तर्कवितर्कणोद्धः ॥ ३९१ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष कोई उत्तम विद्यानैं सिद्धि करै सो प्रथम इस यंत्रेशकूं पूजि अरु कर्णिकागत मंत्रकूं जपै, सो शास्त्रित्व वाणीकी चतुराई आदि श्रुतांबुधिनैं तर्क संयुक्त करै ॥ ३९१ ॥

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अब सिद्धयंत्र कहैं हैं—

अथ सिद्धयंत्रोद्धारः ॥ ६ ॥

ऊर्ध्वाधोरयुतं सविंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजतटं तत्संधितत्त्वान्वितं ।
अंतः पत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकार संवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ ३६२ ॥

ऊपरि नीचैं रकार-युक्त हकार विंदु-सहित ह्रँ ताकों ब्रह्म जो ॐकार अरु स्वरकरि वेष्टित करै; पीछै वलयमें आठ कोष्ठक तिनमें अनाहत अष्ट अकारादि वर्ग संयुक्त लिखैः ताके पार्श्व मे णमो अरहंताणं लिखै अरु ह्रीं-वेष्टित क्रौंकार रुद्ध करि ऐसा यंत्रात्मक देवनैं ध्यावः सो वैरी रूप हस्तीनमें शार्दूल सिंह समान होय ॥ ३६२ ॥ दूसरा फल इह है कि—

यः सिद्धचक्रनिरतोऽर्हणामा करोति वैरिव्रजं दहति कर्मसमूहसार्थं ।
अन्या च का बहुकथा शिवसौख्यलक्ष्मीः स्वैरं पदाब्जयुगले भ्रमरायतिद्राक् ॥३६३॥

जो सिद्धचक्रकी नित्य पूजा करै है सो कर्मगणके सहित वैरी समूहनै भस्म करै है। विशेष अन्य कहा कहना, मोक्षलक्ष्मी स्वतः ही ताका चरणारविंदमें भ्रमरसमान होय है ॥ ३६३ ॥ (इसका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ वृहत्सिद्धचक्रयंत्रोद्धारः ॥ ७ ॥

अब बड़ा सिद्धचक्र महाफलदायक ताहि कहैं हैं—

ऊर्ध्वं रेफयुतं सविंदुसपरं मायावृतं पंचभि-
र्गुर्वाद्यक्षरकैः सहोमनिधनै र्वेदादिकैर्वेष्टितं ।

ह्रीं वेष्ट्यं सपरं स्वरैरविमितै र्युक्तं ततोऽनाहतं
युक्तं पंचपदैरनुप्रणवदृग्बोधेन वृत्तेन च ॥ ३६४ ॥

सम्यग्यूकृतपसा च होमनिधनेनास्यं ठकारावृतं
वाह्ये षोडशभिः स्वरैः परिवृतं तेभ्योऽनुपलाष्टकं ।

ओं ह्रीं अर्हमनाहताक्षरमुखं वर्गाष्टकं होमयुक्
यंतांतः प्रथमं च मंत्रमथ तत् पलाग्रतोऽनाहतं ॥ ३६५ ॥

मायावेष्टितमंकुशेन नमितं पश्चात् ठकारावृतं
ओं ह्रीं अर्हमनाहतादिगुरुभिः सर्वैर्नमोऽन्तैर्युतं ।

स्वाहांताय सुसिद्धचक्रपतये युक्तं ततो भः पुरं
क्षोणीमंडलगं जगत्पतिशयं श्रीसिद्धचक्रं महत् ॥ ३६६ ॥

हँ वीज मध्य अरु अ सि आ उ सा स्वाहा युक्त ह्रींकार ता करि आवृतं, पुनः ह्रींकार तन्मध्य हकार चौदा स्वरनि करि युक्त, ताके वलय तामें आठ कोठा तिनमें अनाहत युक्त णमो अरहंताणं तथा ये णमोकारका पंच पद अरु सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र चतुष्ट्यत नमो, ताके अग्र वलय ठकारको, ताके अग्र वलय स्वरांको, फिरि ताके अग्र वलय तामें षोडश कोठा तिनमें अष्ट वर्ग संयुक्त णमो अरिहंताणं अरु मध्य मध्यमें अनाहत विद्या, तदनंतर वलय तामें ठकार तदनंतर वलय तामें अनाहत मंत्रत्रय, फिरि ह्रींकार-वेष्टित क्रौं करि रोकना। पृथ्वी-मंडल सो वृहतसिद्धचक्र है ॥ ३६४—३६६ ॥ अब याका फल कहिये है कि—

यः सिद्धचक्रमलघु प्रतिणौति रोगान् दुष्टान् निहंति शिवसौख्यरसायनानि ।
लब्ध्वोर्जयंतशिखरे तदनंतवीर्य स्वामीव वाक्प्रगुणतामनणुं विभर्ति ॥ ३६७ ॥

जो वडा सिद्धचक्रनैं नमस्कार करै है, सो पुरुष सर्वरोगानैं हनै है अरु सिद्ध रसायनादि गुटिकानैं प्राप्त होय है। जैसैं श्रीगिरनारि पर्वत-का शिखरमें अनंतवीर्य स्वामीकी ज्यों पांडित्यगुणनैं बहु प्रकार धारण करै है ॥ ३९७ ॥

इति श्रीवृहद्सिद्धचक्रोद्धारः ।

(इसका आकार पृथक् दिया गया है)

राज्यं देयं शिरो देयं सर्वसंपत्तिरुत्तमा ।
चक्रवर्तिपदस्थापि न देयं सिद्धचकूकं ॥ ३९८ ॥
विनीताय सुशांताय ब्रह्मचर्ययुताय च ।
निजाशिष्यविशिष्टाय देयं तदपि चावृतं ॥ ३९९ ॥
यदि निःशीलताभाजे ह्यविनीताय दीयते ।
तदाऽपमृत्युमाप्नोति निरये घोरवेदनाम् ॥ ४०० ॥

तथा राज्य तो दे देना अरु मस्तक भी दे देनो अर चक्रवर्तिपद संपदा हू दे देनो, परंतु वृहत्सिद्धचक्रमंत्र यंत्र नहीं देना। अरु देना तौ जो अपना निज शिष्य है अर विनयवान है अर शांतपरिणामी है घोर ब्रह्मचय-संयुक्त है, ताके अर्थि प्रतिज्ञा-पूर्वक देना। जो कदाचित् अविनीत कुशीलवानकूं दे देवे, तौ आपकी अपमृत्यु होय, नरकमें घोर वेदना पावै ॥ ३९८—४०० ॥

अथ गणधरवलययंत्रोद्धारः ॥ ८ ॥

अब गणधरवलययंत्र कहैं हैं,—

षट्कोणे प्रणवादिमर्हमभितः कोष्ठे वहिःसंधिषु
द्वादश्यप्रतिचक्रफट्गमनुना क्ल्पासुलेख्या ततः ।

वृत्तेऽष्टावितरे तु षोडश ततो वृत्ते चतुर्विंशतिः

ऋद्धीनामुदयाद् गणेशगदितं यंत्रं गणेशाभिधं ॥ ४०१ ॥

मध्यमैं षट्कोण यंत्र करै, ताके मध्य 'ॐ अर्हते नमः' लिखै, ता चक्रके वहिर्भागमैं 'अप्रतिचक्रे विचक्राय फट् स्वाहा' ऐसा लिखै, ताके अग्र तीन वलय, तहां ॐ ह्रीं णमो जिणाणं इत्यादि पाठ तथा ॐ ह्रीं हैं भिन्नसोदराणं इत्यादि तथा ॐ ह्रीं उग्गतवाणं इत्यादि वीर वड्ढवाणं इत्यंत अठतालीस ऋद्धि क्रमतैं लिखै। पीछैं ह्रीं-वेष्ठित क्रौं निरुद्ध करै। येह गणेश-यंत्र है ॥ ४०१ ॥

यः प्रांशुधीः प्रतिदिनं जिनबिंबसंस्थाऽभ्यर्च्योऽर्चयन् जपति गाणमसुं त्रिकालं।

देवेंद्रवृंदरचितांजलिकुड्मलश्रीपूज्यांह्रिपद्मयुगलाः शिवमावृणीते ॥ ४०२ ॥

जो प्राणी जिनबिंब आगैं प्रति दिन गणेशमंत्र जप-पूर्वक येह यंत्र पूजै, ताके सकल दुरित दूर होंय अर निश्चयसैं लक्ष्मी पावै है ॥ ४०२ ॥

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ वर्धमानयंत्राधिकारः ॥ ९ ॥

अब वर्द्धमान-यंत्र कहै हैं,—

भक्त्यंतोऽर्हमनुस्त्रिलोकजिनभूस्वाम्युत्पुटस्थस्वरै-

रावृत्योर्ध्वपुटे रविप्रमगृहे वर्गाष्टकावर्जितं।

सिद्धाचार्यगुरूपदेष्टपदकं दत्वा चतुर्थ्यन्तकं

स्वाहान्वीतमिदं नमामि महितं श्रीवर्धमानाख्यया ॥ ४०३ ॥

ॐकारके मध्य हैं बीज ताकूं ह्रीं वेष्टित करै, ताकूं हैं वेष्टित करै, फिर ह्रीं-वेष्टित करै, ताकूं स्वरन करि वेष्टित करै. पीछैं वलयमैं द्वादश कोष्टक, तहां 'ॐ ह्रीं हैं वर्द्धमानाय' लिखि अष्टवर्ग लिखै। अवशिष्टमैं सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु-मंत्र लिखै। पीछैं वलय देय वर्द्धमान-मंत्रकों वेष्टन करै, फिरि ह्रीं क्रौं निरोधन करै ॥ ४०३ ॥

मंत्रेण यः सह यजेद् गुरुभक्तिशीलः श्रीवर्धमानमुखपद्मविनिर्गतांकं ।
तस्याशु बुद्धिमुपयाति नरेंद्रचक्रस्तुत्या विनष्टदुरिता शिवसौख्यलक्ष्मीः ॥ ४०४ ॥

जो गुरुभक्त शीलवान् वर्द्धमानमंत्र पूजै, ताके दुष्ट ग्रह व्याधि पिशाच सब दूर होय अरु मोक्षलक्ष्मीका पात्र होय ॥ ४०४ ॥ यो मंत्र अधिवासनामैं कार्यकारि होय है ।

अथ मन्त्रः । उपरि मन्त्रप्रकरणे वक्ष्यते । तस्माद्विंशायजपकाले उक्तो यः उद्धारस्त्वयम् इदं वर्द्धमानयन्त्रमधिवासनायां काष्ठत्रिपादिकायामुपरि यन्त्रे तीर्थसर्वौषधिजलेन वर्द्धमानमन्त्रोच्चारकविंशतिवारं यावद्बिम्बप्लावनं उपयोगीतिदिक् ॥

(इसका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ बोधिसमाधियंत्रोद्धारः ॥ १० ॥

अब बोधिसमाधियंत्र कहिये हैं,—

गर्भेभक्तिजिनेशपञ्चमनवः श्रीर्हंममेष्टं शुभं ।
ह्रिः कुर्वाग्निवधूयुजस्तदभितोवृत्तेष्टवर्गा यथा ॥
पूर्वोक्ता जलभूमिमंडलगता ज्ञानार्कसंपत्करा-
श्चक्रं बोधिसमाधिनाम जिनपैः स्पष्टीकृतं सिद्धये ॥ ४०५ ॥

कर्णिकाके गर्भमैं ॐकार अरु पंच परमेष्ठी बीज अर अ सि आ उ सा लिखै । पीछैं श्रींकार हैं, पीछैं मम इष्टं शुभं कुरु कुरु स्वाहा ऐसा लिखि करि वलय तामैं आठ कोष्ठक तिनमैं ॐस्वाहा युक्त अष्ट वर्ग लिखै । सो ह्रीं-वेष्टित क्रौं रुद्ध करि जलमंडल अरु पृथ्वीमंडल लिखै । येह जिनराजनैं ज्ञानकल्याणकी संपत्ति अर्थि बोधिसमाधि नामक कह्यो है ॥ ४०५ ॥

सव्ये स्वरे समुदयत्यहनिप्रभाते सूर्योदये च सति साष्टसहस्रसंख्यं ।
यो मंत्रयेदखिलपापविमुक्तदेहस्तत्त्वस्य शुद्धिमुपयातिसमाधियंत्रात् ॥ ४०६ ॥

इस यंत्रकों वाम नाडीका उदयमैं प्रभात सूर्योदयमैं एक हजार आठ वार जपैं तौं देहकी शुद्धि प्राप्त होय ज्ञानशुद्धि पावै ॥ ४०६ ॥

इदं बोधिसमाधियन्त्रंतपःकल्याणे उपयोगि भवति। येह यंत्र तपकल्याणमें उपयोगी होय है।

(इसका आकार पृथक् दिया है)

अथ मोक्षमार्गयंत्रोद्धारः ॥ ११ ॥

अब मोक्षमार्ग-यंत्रकूं कहैं हैं:—

मध्ये पंचमनूनस्वपल्लवयुतान् तद्वृत्तकोष्ठाष्टके
तान्येवाक्षरसंमितानि परितो वृत्ते चतुः कोष्टके।
सम्यग्दर्शनज्ञानतत्स्थितितपांस्येवंविधान्यर्जयद्
यंत्रं मोक्षपथप्रदं समवसृत्यासौ तु पूज्यं श्रये ॥ ४०७ ॥

कर्णिकाके मध्य पंच णमोकार ॐ ह्रीं स्वाहा संयुक्त लिखै; तदनंतर वलयमैं आठ कोष्टकमैं ॐ अ सि आ उ सा नमः ऐसा लिख, ताके पीछैं वलयमैं आठ कोठामैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप लिखै तथा ॐ वेष्टित क्रौं रुद्ध करि भूमंडल लिखै॥ ऐसैं मोक्षमार्गयंत्र समवसरनमैं पूज्य कहिये है ॥ ४०७ ॥

नो केवलं यजनसृष्टिषु पूज्यमेव कामप्रदायिमनसोऽर्थसमापने च।
इत्यामनंति मुनयो गतरागभावा बंदीच्युतावपि रुषाभिभवं करोति ॥ ४०८ ॥

यह यंत्र पूजाविधानहीमैं पूज्य नहीं है, किन्तु मनोरथ सिद्धिनैं भी अभीष्ट है। अरु मुनीश्वर जैसैं अष्टकर्मका क्षयमैं इस यंत्रकूं प्रसिद्ध कहैं हैं, तसैं बंदी जो कारागृहमैं पतित पुरुषनका दुःख नाशमैं तथा राजाका रोष निवारणमैं भी मुख्य कहिये हैं ॥ ४०८ ॥

मोक्षमार्गचक्रयंत्रं समवसरणे गंधकुट्या अधोभागे स्थाप्य पूजनीयं भवति ॥

इस मोक्षमार्गचक्रयंत्रकौं समवशरणमें गंधकुटीके नीचे भागमें स्थापित कर पूजना चाहिये।

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया है)

अथ निर्वाणसंपत्करयंत्रोद्धारः ॥ १२ ॥

अब निर्वाणसंपत्कर नामक यंत्र कहैं है—

मध्येनाहतसंपुटे मनसिजोद्बीजं रमाभिर्वृतं
तद्बाह्येऽष्टदलेषु पंचजिनराट् वर्णा यथा न्यासतः ।
तद्बाह्ये दलसीम्नि तन्मनुपुरः शांतिं च पुष्टिं कुरु
द्विः स्वाहेति परं तदेव मनुभृन्निर्वाणसंपत्करं ॥ ४०६ ॥

मध्य कर्णिकामैं अनाहतका संपुटमैं हँ बीज सो ह्रं क्लींकार मध्यगत, तदनंतर वलयमैं श्रींकार मंडल, तदनंतर वलयमैं अष्ट कोठा तिनमें अ सि आ उ सा ह्रीं च्वीं ह्रः पः हः ॐ उं पं क्रम करि अमृतवर्णा, फिर वलयमैं अमृतवर्णोंके अग्र शांतिं पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा येह मंत्र, पीछैं ह्रीं वेष्टित क्रौं रुद्ध, येह निर्वाणसंपत्करयंत्र है ॥ ४०९ ॥

निर्वाणपूजनविधौ महनीयमेवं काम्येऽपि हेमरजतप्रतिलब्धिहेतोः ।
प्रोक्तं पुरातनमुनींद्रगणेन तद्वन्मोक्षार्थिभिर्गतविभावविभासनैश्च ॥ ४१० ॥

येह यंत्र निर्वाणकल्याण-विधिमैं पूजने योग्य है अरु कामनाकार्यमैं सुवर्ण रुपैयाका लाभ निमित्त याकी पूजा पुरातन मुनीश्वरननैं अर मोक्षार्थी रागद्वेष-रहितननैं कही है ॥ ४१० ॥ (इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ सुरेंद्रयंत्रोद्धारः ॥ १३ ॥

अब सुरेंद्रयंत्र कहै है—मध्ये भक्तित्रिलोक्यां प्रथमपुरुपदं पूर्वमाह्वाननांगे
तत्राद्ये मातृकाया न्यसनमिह वृते रत्नपंचप्रणामः ।
पाताः क्रौं ह्रीं नमः स्यादिति मदभुवने तोयपृथ्वीनिबंध
एवं देवेंद्रचक्रं स्मरति नमति यो देवकांतामनोज्ञः ॥ ४११ ॥

ॐकारके मध्य 'ॐ वषट् ह्रीं णमो अरहंताणं वौषट्' ऐसा लिखै; ताकूं ह्रींकार-वेष्टित करै, ताके वलय आठ पॉखडीका कमल क , ताम 'आं क्रौं ह्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः' लिखै ॐ नमः सहित ; पीछै ह्रीं वेष्टन क्रौं रुद्ध करि जलमंडल अरु पृथ्वीमंडल मातृका-संयुक्त लिखै। येह देवेंद्रयंत्र है सो देवांगना भी मोहित करै ॥ ४११ ॥

सुरेंद्रचक्रं विधिना प्रयुक्तं सुरासुराराधितपादपद्मं ।

बिभर्ति कंठे रतिलेह्यदेहो नैरोग्यकारी जलपानकर्तुः ॥ ४१२ ॥

इस सुरेन्द्रयंत्रनैं जो विधि-पूर्वक जपै पूजै, सो देव विद्याधरन करि पूजित होय है अरु कामदेव समान रूप होय है। अरु केसरिसैं लिख कंठमें धारै तथा याकी प्रक्षाल करि पीवै तौ नीरोग देह होय ॥ ४१२ ॥ उद्धारः सुरेन्द्रस्य।

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ मातृकायंत्रोद्धारः ॥ १४ ॥

अब भगवानकी मूर्ति स्थापनम उपयोगी मातृकायंत्र कहिये हैं—

मध्येऽर्हं विलिखेत् तदभितो वृत्तऽष्टकूटाक्षरं

रेखानां च चतुष्टयेषु कुलिशाग्रेषु स्थिता मातृकाः ।

षट्त्रिंशद्भवनेषु च द्विरसगेष्वग्रेस्मरो भक्तिग–

श्चक्रेऽस्मिन् जिनसंस्थितिं विरचयेत् श्रीसूरिमंत्रक्षणे ॥ ४१३ ॥

कर्णिकाके मध्यमैं र्हं लिखै अरु ताके आठ कोठा करै, तिनमाँह भ म र ढ स ख क हनका कूटअक्षर क्रमसैं लिख, जैसैं हल्व्यूं है तसैं, तदनंतर च्यार रेखा चतुष्कोण करै अरु वज्र रुद्ध करै। तिनम प्रदक्षिणा क्रमतैं मातृका स्थापन करै, वज्राग्रमैं ॐ ह्रीं लिख, छत्तीस स्थान मातृकाका अरु वज्राग्रमैं चौईस क्लीकार ऐसा यंत्रमैं मूर्ति स्थापन करि आचार्य सूरिमंत्र देवै हैं ॥ ४१३ ॥

आचाल्यविंबेऽग्रनिवासभूमौ विलेखनीयं पटुनर्त्विकेन ।
सुवर्णलेखिन्यजयंत्रधार्या श्लाघ्या रहस्येव मनःप्रसत्तौ ॥ ४१४ ॥

अरु अचाल्य मूर्ति होय तौ ताकी अग्रभूमिमैं चतुर आचार्यनैं सुवर्णकी लेखनी करि मूल मंत्र संयुक्त एकांत मनकी प्रसन्नता-पूर्वक लिखना ॥ ४१४ ॥

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया गया है)

अथ नयनोन्मीलनयंत्रम् ॥ १५ ॥

अब नयनोन्मीलन यंत्र कहिये हैं—

अनाहतं समावेष्ट्य ठकारैश्च स्वरैः क्रमात् ।
क्लीं क्ष्वीं र्व्वीं हंसः सद्बीजे रंभोमंडलमध्यतः ॥ ४१५ ॥

मध्य कर्णिकामैं अनाहत लिखै, फिरि वलय देय ठकारन करि वेष्टित करै, पीछैं वलयमैं स्वर लिखै, पीछै वलयमै अमृताक्षरनि करि बेढै, पीछैं जलमंडल लिखै ॥ ४१५ ॥

कुंकुमाद्यै लिखेद् यंत्रं पात्रे स्वर्णादिनिर्मिते ।
लवंगादिभवैः पुष्पैः पद्मरागसमप्रभैः ॥ ४१६ ॥
ओं ह्रीं श्रीं अर्हं नमो मंत्रं जपेदष्टोत्तरं शतं ।
तद्रौप्यपात्रविन्यस्त सिताक्षीराज्यसंयुता ॥ ४१७ ॥
विदध्यात्तेन गंधेन चामीकरशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलनं शक्रः पूरकेन शुभोदये ॥ ४१८ ॥

सुवर्ण-शलाका करि कुंकुम करि लिख, लवंग अर रक्तपुष्पनि करि 'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः' ऐसा मंत्र एकसौ आठ वार जापे चांदीका पात्रमैं मिश्री दूध घृत स्थापन करि तिह गंध करि सुवर्ण-शालाका करि मूर्तिका नेत्रमैं फेरि इंद्र है सो पूरक नाडी बहतां नेत्रोद्घाटन करै ॥४१६-४१८॥

मूलविंबस्य चान्येषां यथायोग्यं समाचरेत् ।
आचार्यशक्रयष्टॄणां मध्ये एकेन सत्क्रियात् ॥ ४१६ ॥

मूल विंबकी यह विधि है, अन्य विंबनमें यथायोग्य करैं। इनमैं आचार्य १ यजमान १ इंद्रकी प्रधानता है, इन बिना अन्य प्राणीं नहीं करै ॥ ४१९ ॥ ये ही केवल ज्ञान प्राप्ति जाननी ॥

अथ मन्त्राधिकारः ।

अथ प्रतिष्ठायामुपयोगिन एव मंत्रा उपोद्धृयन्ते नान्ये, तेषामत्र प्रयोजनाभावात् । तत्र मन्त्र्यन्ते गुप्तं भाष्यन्ते उपासकैरिति मन्त्राः ।
उक्तञ्च—अनधीत गुरुदिष्ट मनुपार्श्वे वदे त्तदा हीनशक्ति र्भवेत्तस्मा न्नाचार्य्यं मंत्रिणा सदा ॥१॥... ... ...२ ... ३ ...४

अथ मंत्राधिकार लिखिये है कि—शांत्यादि कर्मके कर्त्ता यद्यपि मंत्र अनेक हैं, तथापि इहां प्रतिष्ठाके उपयोगी ही मंत्रनकूं उद्धार करिये है; अन्य नहीं कहिये हैं क्यूं कि अन्यका इहां प्रयोजनका अभाव है। तहां गुप्त भाषिये साधकोंनैं तातैं मंत्र नाम सर्थिक है ।

उक्तंच—नहीं प्राप्त भया है गुरूपदिष्ट मंत्र जानै ऐसा पुरुषके समीप मंत्र पढै तौ वह मंत्र शक्तिहीन हो जाय; तातैं मंत्रधारी पुरुषनैं बहुत बार अथवा उच्च कर करि नहीं उच्चारण करिये सदा ॥ १ ॥ .. ..२ ... .३ ... ...४

(इस यंत्रका आकार पृथक् दिया है)

अथ मंत्राणि ।

अब साधारण मंत्र कहैं है,—

ओं ह्रीं णमो अरहंताणं इत्यादि केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि क्रौं ह्रीं स्वाहा ॥ १ ॥
ओं ह्रीं अर्हं नमः ॥ २ ॥
ओं ह्रीं श्री नमः ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं ऋषभाजितसंभवाभिनंदनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्व चंद्रप्रभपुष्पदंतशीतलश्रेयोवासुपूज्यविमलानंतधर्मशांतिकुंथ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमिनेमि-पार्श्ववर्धमानांतेभ्यो ह्रीं नमः ॥ ४ ॥

ओं ह्री ऋषभादिवर्धमानांतेभ्यो नमः ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं चतुःषष्टि ऋद्धिसमृद्धिगणधरेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

ओं ह्री अ सि आ उ सा जिन चैत्यालयागधर्मेभ्यो ह्री नमः ॥ ७ ॥

ओं ह्री श्री क्ली ऐं अर्हं नमः ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं हं क्रौ श्री ह्रीं क्लीं शांति पुष्टिं तुष्टि कुरु कुरु अ सि आ उ सा क्ष्म्रीं च्वीं हं सं तं पं द्रां द्री द्रावय द्रावय श्रीं ह्रीं स्वाहा ॥९॥

ओं ह्रां ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः ॥ १० ॥

ओं ह्रीं अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झौ झौ स्वाहा ॥ ११ ॥

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः श्रीसिद्धचक्राधिपतये अष्टगुणसमृद्धाय फट् स्वाहा ॥१२॥

ओं नमोऽर्हं अ आ इ ई उ ऊ इत्यादि श ष स ह क्लीं ह्रीं क्रौं स्वाहा ॥ १३ ॥ मातृकामंत्रः ।

ओं क्ष्वां क्ष्वीं क्ष्वूं क्ष्वौं क्ष्वः ॥ १४ ॥ शुद्धिमंत्रः ।

ओं ह्रीं ह्रां ह्री ह्रू ह्रौ ह्रः अर्हं नमो अरहंताणं निःसहीए स्वाहा ॥ १५ ॥ जिन मुखावलोकनमंत्रः ।

ओं नमो अरहंताणं ह्रौं स्वाहा ॥ १६ ॥ मूलमंत्रः ।

ओं अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ॥ १७ ॥

ओं अर्हं अर्हत्सिद्धसयोगकेवलिभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥ केवलिमंत्रः ।

ओं ह्रीं अर्हं नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा ॥ १९ ॥ नंद्यावर्तमंत्रः ।

ओं अर्हं य व व ल याय ॥ २० ॥ यववलय मंत्रः

ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय हं सं क्ष्वीं च्वीं हं सः स्वाहा ॥ २१ ॥ अमृतमंत्रः ।

ओं क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौ क्षं क्षः नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा ॥ २२ ॥ रक्षामंत्रः ।

ओं ह्रूं फट् किरिटिं घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्रखंडान् कुरु कुरु परमुद्रां छिंद छिंद परमंत्रान् भिंद भिंद क्षः क्षः हूं फट् स्वाहा ॥ २३ ॥ सर्वरक्षा मंत्रः ।

ओं सर्वजनानंदकारिणि सौभाग्यवति तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा ॥ २४ ॥ शिलामंत्रः ।

ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आगासगामिणं णमो विज्जाहराणं णमो सव्वोसहिपत्ताणं णमो सयंबुद्धाणं णमो केवलि स्वाहा ॥ २५ ॥ विद्यामंत्रः ।

ओं अर्हन्मुखकमलनिवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मम पापं हन हन दह दह पच पच क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं ह्रूं स्वाहा ॥ २६ ॥ पवित्रसरस्वतिमंत्रः ।

ओं उसहाइ जिणं पणमामि सया अमलो विमलो विरजो वरया ।

कप्पतरू सवकामदुहा मम रक्ख सहा पुरुविज्जणि ही ।

ओं अट्ठे वय अट्ठसया अट्ठसहस्साय अट्ठकोडीओ ।

रक्खं तुम्म सरीरं देवासुर पणमिया सिद्धा । स्वाहा ॥ २७ ॥ विघ्न विनाशनमंत्रः ।

ओं धनाधिपे अर्हत्प्रतिसौधे रत्नवृष्टिं मुंच मुंच स्वाहा ॥ २८ ॥ कुवेरमंत्रः ।

ओं ऋषभाय दिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनंतचतुष्टयाय परमसुख प्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुख परमेष्ठिनेऽर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूजिताय अष्टदिव्यनागपूजिताय देवाधिदेवाय वरदाय परमार्थसंनिहितोऽसि स्वाहा ॥ २९ ॥ अंकमंत्रः ।

ओं अर्हद्भ्यो नमः ॥ ३० ॥

ओं नवकेवलिलब्धिभ्यो नमः, क्षीरस्वादुलब्धिभ्यो नमः, मधुरस्वादुलब्धिभ्यो नमः, संभिन्नश्रोतृभ्यो नमः, पादानुसारिभ्यो नमः, कोष्ठबुद्धिभ्यो नमः, बीजबुद्धिभ्यो नमः, सर्वावधिभ्यो नमः, परमावधिभ्यो नमः ॥ ३१ ॥

ओं ह्रीं वल्गु वल्गु सुश्रवणे महाश्रवणे ओं ऋषभादि वर्धमानांतेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा ॥ ३२ ॥ अयं जिनमंत्रः ।

ओं णमो भयवदो वड्ढमाणः स्सरिसहस्स जस्स चक्कं जलं तं गच्छइ आयासं पायालं भूयलं जूए वा विवादे वा रणंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख स्वाहा ॥ ३३ ॥ इति वर्धमान मंत्रः । जन्मकल्याण समये ।

ओं णमोऽर्हते केवलिने परमयोगिने अनंतविशुद्धिपरिणामपरिस्फुरच्छुक्लध्यानाग्निनिदग्धकर्म बीजाय प्राप्तानंतचतुष्टयाय सौम्याय शांताय मंगलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा ॥ ३४ ॥ इति प्रतिमाया भद्रासने स्थापनमंत्रः ।

ओं नमोऽर्हते भगवतेऽर्हते सद्यः सामायिकप्रपन्नाय कंकणमपनयामि स्वाहा ॥ ३५॥ दीक्षास्थापनमंत्रः ।

ओं ह्री श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा सिद्धाधिपतये नमः । ओं नमो अरहंताणं अर्हं स्वाहा ॥ ३६—३७ ॥ तिलकमंत्रौ ।

ओं अट्ठविहकम्ममुक्को तिलोयपुज्जो य संथुवो भयवं ।

अमरण रणाहमहिओ अणाहि णिहणोसि वंदिसओ ॥ स्वाहा ॥ ३८ ॥ इति श्रीमुखोद्घाटनमंत्रः ।

ओं णमो अरहंताणं णाणदंसणचक्खुमयाणं अमियरसायणं विमलतेयाणं संति तुट्ठि पुट्ठि वरद सम्मादिट्ठीणं वं मं अमर वरसीणं स्वाहा ॥ ३९ ॥ इति नेत्रोन्मीलनमंत्रः । अथ सूरिमंत्रः ।

ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं इसकूं आदि देय केवलपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वजामि इहां ताईं पाठके अग्र क्रों ह्रीं स्वाहा येह-पल्लव संयुक्त एकमंत्र है ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अर्हं नमः ये षड्अक्षर मंत्र है ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्री नमः येह पंचाक्षर मंत्र है ॥ ३ ॥

ॐ ह्री ऋषभाजितादि वर्द्धमानांतेभ्यो ह्रीं नमः । येह तीर्थंकरमंत्र है ॥ इत्यादि सूत्रमें नयनोन्मीलन मंत्र पर्यंत अपनो अपनो क्रियाके योग्य मंत्र हैं ॥ अब पूजामंत्र गद्यात्मकसप्त मंत्र है । मंत्रनका अर्थ लिखना आचार्यगण निषेध किया है, तातैं जप मात्र ही प्रशस्त है ।

अथ पूजामंत्राः ।

नीरजसे नमः ॥ १ ॥ दर्पमथनाय नमः ॥ २ ॥ शीलगंधाय नमः ॥ ३ ॥ अक्षताय नमः ॥ ४ ॥ विमलाय नमः ॥ ५ ॥ श्रुतधूपाय नमः ॥६॥ ज्ञानोद्योताय नमः ॥ ७ ॥ परमसिद्धाय नमः ॥ ८ ॥ सतजाताय नमः ॥ ९॥ अर्हज्जाताय नमः ॥१०॥ परमजाताय नमः ॥११॥ अनुपम-जाताय नमः ॥१२॥ स्वप्रधानाय नमः ॥१३॥ अचलाय नमः । १४ । अक्षयाय नमः ॥ १५ ॥ अव्याबाधाय नमः ॥१६॥ अनंतज्ञानाय नमः॥१७॥ अनंतदर्शनाय नमः ॥ १८ ॥ अनंतवीर्याय नमः ॥ १९ ॥ अनंतसुखाय नमः ॥२० ॥ नीरजसे नमः ॥२१॥ निर्मलाय नमः ॥ २२ ॥ अच्छेद्याय नमः ॥ २३ ॥ अभेद्याय नमः ॥ २४ ॥ अजरामराय नमः ॥ २५ ॥ अमराय नमः ॥ २६ ॥अप्रमेयाय नमः ॥ २७ ॥ अगर्भवासाय नमः ॥ २८ ॥

क्षोभ्याय नमः ॥ २९ ॥ अविलीनाय नमः ॥ ३० ॥ परमघनाथाय नमः ॥ ३१ ॥ परमकाष्ठयोगरूपाय नमः ॥ ३२ ॥ लोकाग्रवासिने नमो नमः ॥ ३३ ॥ परमसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥ ३४ ॥ अर्हत्सिद्धेभ्यो नमो नमः ॥३५॥ केवलिसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥३६॥ अंतकृत्सिद्धेभ्यो नमो नमः ॥ ३७ ॥ परसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥ ३८ ॥ अनादिपरमसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥ ३९ ॥ अनाद्यनुपमसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥ ४० ॥

सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्यनिर्वाणपूजार्ह अग्नींद्र स्वाहा सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधिमरणं भवतु।

इति सर्वत्र कार्येषु पीठिकामंत्रः ॥ १ ॥

सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्यामि। अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्यामि। अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्यामि। अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्यामि। अर्हत्सुतान्नर-शरणं प्रपद्यामि। अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्यामि। अनुपजन्मनः शरणं प्रपद्यामि। रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्यामि। सम्यग्दृष्टे ज्ञानदृष्टे ज्ञान-मूर्ते सरस्वति स्वाहा। सेवाफलंषट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु स्वाहा ॥ अयं जातिमंत्रः ॥ २ ॥

सत्यजाताय स्वाहा। अर्हज्जाताय स्वाहा। षट्कर्मणे स्वाहा। ग्रामपतये स्वाहा। अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा। स्नातकाय स्वाहा। श्राव-काय स्वाहा। देवब्राह्मणाय स्वाहा। सुब्रह्मणाय स्वाहा। अनुपमाय स्वाहा। सम्यग्दृष्टे निधिपते वैश्रवाय स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु स्वाहा। अयं निस्तारकमंत्रः ॥ ३ ॥

सत्यजाताय नमः। अर्हज्जाताय नमः। निर्ग्रंथाय नमः। वीतरागाय नमः। महाव्रताय नमः। त्रिगुप्ताय नमः। महायोगाय नमः। विविध-योगाय नमः। विविधर्द्धये नमः। अंगधराय नमः। पूर्वधराय नमः। गणधराय नमः। परमर्षिभ्यो नमो नमः। अनुपमजाताय नमो नमः। सम्यग्दृष्टे भूपते नगरपते कालश्रवणाय स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं अपमृत्युविनाशनं समाधिमरणं भवतु स्वाहा। अयं ऋषिमंत्रः ॥४॥

सत्यजाताय स्वाहा। अर्हज्जाताय स्वाहा। अनुपमेंद्राय स्वाहा। विजयार्धजाताय स्वाहा। नेमिनाथाय स्वाहा। परमजाताय स्वाहा। परमार्हजाताय स्वाहा। अनुपमाय स्वाहा। सम्यग्दृष्टे उग्रतेजदिशां जयनेमिविजय स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं अपमृत्युविनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु स्वाहा। अयं परमराजमंत्रः ॥ ५ ॥ राज्यदीक्षायामुपयोगी।

सत्यजाताय स्वाहा। अर्हज्जाताय स्वाहा। दिव्यजाताय स्वाहा। दिव्यार्चजाताय स्वाहा। नेमिनाथाय स्वाहा। सौधर्माय स्वाहा। कल्पाधिपतये स्वाहा। अनुचराय स्वाहा। परंपरेंद्राय स्वाहा। अहमिंद्राय स्वाहा। परमार्हजाताय स्वाहा। अनुपमाय स्वाहा। सम्यग्दृष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनाम स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं अपमृत्युविनाशनं समाधिमरणं भवतु स्वाहा। अयं सुरेंद्रमंत्रः ॥ ६ ॥ जन्मकल्याणे उपयोगी।

सत्यजाताय नमः। अर्हज्जाताय नमः। परमजाताय नमः। परमार्हजाताय नमः। परमरूपाय नमः। परमतेजसे नमः। परमगुणाय नमः।

परमस्थानाय नमः। परमयोगिने नमः। परमभाग्यायमहर्द्धये नमः। परमप्रसादाय नमः। परमकांक्षिताय नमः। परमविजयाय नमः। परमविज्ञानाय नमः। परमदर्शनाय नमः। परमवीर्याय नमः। परमसुखाय नमः। सर्वज्ञाय नमः। अर्हते नमः। परमेष्ठिने नमो नमः। सम्यग्दृष्टे त्रिलोकविजयधर्ममूर्तें स्वाहा। सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु अपमृत्यु विनाशनं भवतु समाधिमरणं भवतु भवतु स्वाहा। अयं परमेष्ठिमंत्रः ॥७॥

इमे मंत्रा अधिवासनायां सर्वे उपयोगिनो भवंति।

अब श्लोकार्थ लिखिये है।

एवंविधान् मंत्रवराननेकान् गुरूपदेशाद्विधिवद् प्रगृह्य।
नितांतरम्यस्थलवेदिकायां जिनाग्रतः प्राक् परिसाधयंतु ॥ ४२० ॥

यज्ञका कर्ता पुरुष या प्रकार अनेक मंत्रवर जे हैं, तिननैं गुरुका उपदेशतैं विधिपूर्वक ग्रहण करिकै अत्यंत रमणीक स्थल युक्त वेदीमैं जिनेंद्रके अग्र सिद्ध करो ॥ ४२० ॥

सहस्रमष्टोत्तरमत्र मुख्यो जपस्तदाराधकृता दशांशः।
होमो विधेयः पुनरिष्टकाले मंत्रेण कार्यो विधिरर्प्यमानः ॥ ४२१ ॥

अरु इहां एक हजार आठ जप है सो मुख्य है। अरु ताका आराधन करनेहारा पुरुषनें दशांश होम करने योग्य है। फिर इष्ट कालमैं जो विधि मनोभिलषित है सो मंत्र-पूर्वक करै ॥ ४२१ ॥

अथ यज्ञदीक्षाचिन्होद्वहनं।

धृत्वाग्रतो मंगलयंत्रधाम्नि प्रसाधना न्यार्हत यज्ञपीठे।
अनादिसिद्धादभिमंत्र्य पूतान्यंगेषु धार्याणि यथाप्रशादं ॥ ४२२ ॥

अब यज्ञमैं अधिकारी पुरुषनका चिह्न ये है, सो कहिये है—यज्ञका चिह्न प्रथम मंगल-यंत्रका ग्रहमैं अर्हंत संबंधी यज्ञ पीठमैं अग्रभागमैं अलंकार धरि करि अनादि सिद्ध मंत्रतैं मंत्रित करि पवित्र भये तिनकूं अपनी इच्छानुकूल अंग विषैं धारण करना ॥ ४२२ ॥

पात्रेऽर्पितं चंदनमौषधीशं शुभ्रं सुगंधाहृतचंचरीकं ।
स्थाने नवांके तिलकाय चर्च्यं न केवलं देहविकारहेतोः ॥ ४२३ ॥

प्रथम चंदनतैं पात्रमें स्थापित करि चंद्रमा समान श्वेत अरु सुगंधतैं आये हैं भ्रमर जा विषैं ऐसा चंदनकूं नव स्थानमैं—ललाट १, मस्तक १, ग्रीवा १, हृदय १, बाहु २, प्रकोष्ठ १, नाभि १, पृष्ठभाग १—तिलक निमित्त चर्चन करनो; येह चर्चन देहका हेतु नहीं है ॥ ४२३ ॥

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांग शुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । श्री चंदनानुलेपः ।

मंत्रः— ॐ ह्रां आदि चंदनका लेप करै ।

जिनांघ्रिभूमिस्फुरितां स्रजं मे स्वयंवरं यज्ञविधानपत्नी ।
करोतु यत्नादचलत्वहेतो रितीव मालामुररीकरोमि ॥ ४२४ ॥ इति मालाधारणं ।

यज्ञका विधानकी लक्ष्मी है सो जिनपाद भूमिकामैं स्फुरायमान मालानैं 'मुझकूं स्वयंवर करो' यही अचलपणाके निमित्ततैं मालानैं वक्षः स्थलमैं धारण करूं हूं, ऐसैं मंत्र करि माला धारण करै ॥ ४२४ ॥

धौतांतरीयं विधुकांतिसुत्रैः सद्गूंथितं धौतनवीनशुद्धं ।
नग्नत्वलब्धि नं भवेच्च यावत् संधार्यते भूषणमूरुभूम्याः ॥ ४२५ ॥ इत्यधोवस्त्रधारणं ।

फिरि चंद्रमा की कांतियुक्त सूत्रन करि गूंथ्यो ऐसो धोयो अधोवस्त्र (धोवती) सोध्यो नवीजो है ताहि यावत् मेरैं नग्नपणाकी प्राप्ति नहीं होय तावत् जंघा भूमिमें भूषण रूप धारण करूं हूं ॥ ऐसैं धोवती पहरना ॥ ४२५ ॥

संव्यानमंचद्दशया विभांतमखंडधौताभिनवं मृदुत्वं ।
संधार्यते पीतसितांशुवर्णमंशोपरिष्टाद् धृतभूषणांकं ॥ ४२६ ॥ इति दुकूलधारण ।

बहुरि मैं सुंदर आंचल युक्त शोभायमान अरु अखंड धौत अरु नवीन अरु पीतवर्ण तथा श्वेतवर्ण दुपट्टानैं भूषण मानि करि काँधा ऊपरि धारण करूं हूं ॥ ऐसैं दुपट्टा पहरना ॥ ४२६ ॥

शीर्षण्यशुंभन्मुकुटं त्रिलोकी हर्षाप्तराज्यस्य च पट्टबंधं।
दधामि पापोर्मिकुलप्रहंतृ रत्नाढ्यमालाभिरुदंचितांगं ॥ ४२७ ॥ इति मुकुटधारणं।

तीन लोकको हर्षतैं प्राप्त भया राज्यका पट्टबंध समान अर रत्ननिकी माला करि व्याप्त भयौ है अंग जाकौ ऐसा शीर्षमैं सुन्दर मुकुटनैं मैं पाप समूहनैं दूरि करिवेकूं धारण करूं हूं ॥ ऐसैं मुकुट धारना ॥ ४२७ ॥

ग्रैवेयकं मौक्तिकदामधामविराजितं स्वर्णनिबद्धमुक्तं।
दधेऽध्वरार्पणे विसर्पणोच्छुर्महाधनाभोगनिरूपणांकं ॥ ४२८ ॥ इति ग्रैवेयकधारणं,

बहुरि मोतीनकी मालाका समूह करि विराजित सुवर्णमैं बंध्या है मोती जामैं ऐसा ग्रैवेयक जो कंठभूषण ताहि यज्ञमैं अर्पण किया साम-ग्रीके इच्छक मैं धारण करूं हूं ॥ और येह महाधनवानोंका भोगका दिखावनेहारो है ॥ ऐसैं कंठाभरण पहरना ॥ ४२८ ॥

मुक्तावलीगोस्तनचंद्रमाला विभूषणान्युत्तमनाकभाजां।
यथार्हसंसर्गगतानि यज्ञलक्ष्मी समालिंगनकृद् दधेऽहं ॥ ४२९ ॥ इति हारधारणं।

बहुरि यज्ञकी शोभानैं प्राप्त होनेवारो मैं मुक्तावली हार अरु गोस्तनहार अरु चंद्रमालाहार आदि भूषणनैं देवोंका यथायोग्य संसर्ग प्राप्त भये तिनकूं धारूं हूं ॥ ऐसैं हार पहरना ॥ ४२९ ॥

एकत्र भास्वानपरत्र सोमः सेवां विधातुं जिनपस्य भक्त्या।
रूपं परावृत्य च कुंडलस्य मिषादवास्ते इव कुंडले द्वे ॥ ४३० ॥ इति कुंडलधारणं।

बहुरि श्रीजिनेंद्रकी सेवा भक्तिपूर्वक करनेकूं एक तरफ सूर्य अरु द्वितीय तरफ चंद्र है सो दोऊ कुंडलका मिषतें, अपना रूपका परावर्तन करि ही मानूं कुंडल है ते धारण करूं हूं ॥ ऐसैं कुण्डल धारण करना ॥ ४३० ॥

भुजासु केयूरमपास्तदुष्टवीर्यस्य सम्यक् जयकृत् ध्वजांकं।
दधे निधीनां नवकैश्च रत्नैर्विमंडितं सद्ग्रथितं सुवर्णे ॥ ४३१ ॥ इति केयूरधारणं।

बहुरि मैं भुजा विष दूरि कियौ है दुष्ट वरीकौ पराक्रम जान अरु सुन्दर सम्यग्दर्शन को चिह्न ऐसो अरु नवरत्न ही नवनिधि करि सुवर्ण-मैं मंडित अरु गूंथ्यो ऐसा केयूर बाहुबंधनैं धारूं हूं ॥ ऐसैं भुजबंध पहरना ॥ ४३१ ॥

यज्ञार्थमेवं सृजतादिचक्रेश्वरेण चिन्हं विधिभूषणानां ।
यज्ञोपवीतं विततं हि रत्नत्रयस्य मार्गं विदधाम्यतोऽहं ॥ ४३२ ॥ इति यज्ञोपवीतधारणं ।

बहुरि मैं यज्ञादि विधानके अर्थ रचनाकर्त्ता आदि चक्रवर्तीनैं विधिवेत्ता पुरुषनका चिह्नरूप ऐसा अरु वितत अर रत्नत्रयका मार्गरूप ऐसा यज्ञोपवीतनैं धारण करूं हूं । ऐसैं जनेऊ धारना ॥ ४३२ ॥

अन्यैश्च दीक्षां यजनस्य गाढं कुर्वद्भिरिष्टैः कटिसूत्रमुख्यैः ।
संभूषणैर्भूषयतां शरीरं जिनेंद्रपूजा सुखदा घटेत ॥ ४३३ ॥ इति कटिभूषादिधारणं ।

बहुरि और भी जिनयज्ञकी दीक्षानैं गाढी करनेवारे इष्ट कटिमेखला आदि भूषण करि शरीरकूं आभूषित करनेवारेनकं जिनेंद्रकी पूजा सुखदायक होय है ॥ ऐसैं कहि कटिसूत्रकूं धारण करना ॥ ४३३ ॥

अब यज्ञका प्रारंभ कर है:—

विधेर्विधातुर्यजनोत्सवेऽहं गेहादिमूर्च्छामपनोदयामि ।
अनन्यचेताः कृतिमादधामि स्वर्गादिलक्ष्मीमपि हापयामि ॥ ४३४ ॥

तहां संकल्प नियम येह है कि मैं सकल विधिका विधान करनेहारा जिनेंद्रका यज्ञोत्सवमैं गृहवस्तु आदिकी मूर्च्छानैं दूरि करूं हूं । अरु एकाग्रचित्त करि ये कार्य करूंगा । अरु स्वर्गकी संपदा भी इस कालमैं तुच्छ जानि छोडूं हूं ॥ ऐसैं नियम है ॥ ४३४ ॥

इति यजननियमांगीकारः ।

अथ यागमंडल प्रयोगः।

अब यागमंडलका प्रयोग कहिये हैः—

अचिंत्यचिंतामणिकल्पवृक्षरसायनाधीश्वरमादिदेवं ।
बंदामहे सृष्टिविधानमूढप्राणिप्रणेतारमबाध्यवाक्यं ॥ ४३५ ॥

प्रथम नमस्कार है, हम अचिंत्य चिंतामणि-रूप अर कल्पवृक्ष-रूप अर रसायनका स्वामी ऐसा अरु सृष्टिका विधानमैं मूढ प्राणीनकूं यथार्थ उपदेशकर्त्ता अरु अरोक है वचन जाका ऐसा आदि जिनेश्वरनैं वंदै है ॥ ४३५ ॥

स्याद्वादविद्यामृततर्पणेन सुप्तं जगद्बोधयितारमर्च्यं ।
श्रीकुंदकुंदादिमुनिं प्रणम्य श्रीमूलसंघे प्रणयामि यज्ञं ॥ ४३६ ॥

मोह-निद्रा करि सूता जगतनैं स्याद्वाद-विद्याका पान कराय बोधन करनेवारा अरु पूज्य ऐसा कुंदकुंद स्वामीनैं नमस्कार करि श्रीमूलसंघमैं प्रतिष्ठा विधान जो है ताहि रचूं हूं ॥ ४३६ ॥ ऐसैं निष्ठापण करि ।

एवं समासादितवेदिकादिप्रतिष्ठयोपक्रियया दृढार्थः ।
पुष्पांजलिक्षेपममत्वसार्थैं वितीर्य यागोद्धरणेयतेऽहं ॥ ४३७ ॥

वेदिकादिक प्रतिष्ठा-रूप सामिग्री करि दृढ़ प्रयोजन जाकैं ऐसो मैं समस्त पात्रनमैं पुष्पांजलिनैं क्षेपि करि यागमंडलके अर्थि यत्न करूं हूं ॥ ४३७ ॥

अथ यागमंडलोद्धारः।

अब यागमंलडका उद्धार कहै है—

ओं जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु नंद नंद नंद पुनीहि पुनीहि पुनीहि । ओं णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।

ॐ पंचपरमेष्ठी जयवंते हो, जयवंते हो, जयवंते हो; नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो; आनंद हो, आनंद हो, आनंद हो; पवित्र हूं, पवित्र हूं, पवित्र हूं ऐसैं पढ़ि णमोकार मंत्र बोलै। सो यागमंडलका उद्धार कहिये है।

मध्येतेजस्तदंगे वलयितसरणौ पंच पूज्योत्तमादि
द्वादश्यर्चा द्वितीये चतुरधिकसुविंशा जिना भूतकालाः।
अग्रेष्ट्योर्वर्तमाना अनतरणकृतोऽग्रे विदेहस्थपूज्या
आचार्याः पाठकाः स्यु र्मुनिवरसुगुणा वन्हिवृत्ते निवेश्याः॥ ४३८॥

मध्यमैं ॐकार पीछै वलयभागमैं पंच परमेष्ठी अरु मंगलादिक द्वादश पूजा अरु द्वितीय वलयमैं चोईस तीर्थंकर भूत हैं ते अग्रम दोय वलयमैं वर्तमान अरु भावी तीर्थंकर क्रमतैं अरु अग्र वलयमैं विदेहके जिन वीस, पीछै वलयमैं आचार्य, पीछै वलयमैं उपाध्याय, पीछै वलयमैं साधु परमेष्ठी ऐसैं तीन वृत्तमैं अनुक्रमकरि निवेशन करना॥ ४३८॥

तेषामग्रिमवृत्तके गणधरा ऋद्धिप्रशस्ताश्चतु
र्दिक्षु स्युः क्षितिमंडले जिनगृहं चैत्यागमौ सद्वृषाः।
एवं स्युर्निधयो नवापरविधैर्युक्ता इहाभ्युद्धृते
सद्यागार्चनमंडले विलिखिताः पूज्याः स्वमंत्रैः सदा॥ ४३९॥

अरु तिनके अग्र ऋद्धिधारी गणधर अरु चतुर्दिशामैं पृथ्वीमंडलमैं चैत्य चैत्यालय जिनागम जिनधर्म ऐसैं नव वृत्तमैं नवनिधि जो अपर विधि-युक्तमैं उद्धार किया इस यागमंडलमैं लिख्या हुवा अपने अपने मंत्रनि करि सदा पूज्य होय हैं॥ ४३९॥

प्रथमे १७, द्वितीये २४, तृतीये २४, चतुर्थे २४, पंचमे २०, षष्ठे ३६, सप्तमे २५, अष्टमे २८, नवमे ४८, कोणचतुष्के ४ एवं कोष्ठक्रमः।

प्रथम वलयमैं १७ सतरा, दूजामैं २४ चौईस इत्यादि जानना। ये पूजाका कोठा हैं।

द्विशतोत्तरतः पंचाशत्स्थानं सुपूजयति यो धीमान्।

निर्धूतकलुषनिकरो जिनविंबस्थापको भवति ॥ ४४० ॥

ऐसै जो सुबुद्धि प्राणी होय सो दोसौ पचास स्थानानैं पूजै है, सो सर्व पापमल धोय करि जिनविंबकौं स्थापन करनेवारो होय है ॥४४०॥

एतेषां निधिसंज्ञायागेशसर्गपतिमंडलाधीशाः।
कथ्यंते विधिविज्ञैः संकेतितमिदं ग्रंथसंबद्धं ॥ ४४१ ॥

विधिनैं जाननहारे इनकी निधि संज्ञा, यज्ञपति संज्ञा, सर्गपतिं संज्ञा, मंडलाधीश संज्ञा कहै है। येह ग्रंथका संकेत है ॥ ४४१ ॥

अथ स्थापना।

अत्र स्थापना कहै है—

प्रत्यर्थिव्रजनिर्जयान्निजगुणप्राप्तावनंताक्रम-
दृष्टिज्ञानचरित्रवीर्यसुखचित्संज्ञास्वभावाः परं।
आगत्यात्रनिवेशितांकितपदैः संवौषडा द्विष्ठतो
मुद्रारोपणसत्कृतैश्च वषडा गृह्णीध्वमर्चाविधिम् ॥ ४४२ ॥

शत्रूनका समूहकूं अर्थात् वाह्याभ्यंतर वैरीनका समूहका अत्यंत जयतैं निज गुणकी प्राप्तिनैं होता संता अनंत अरु क्रम-रहित दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, सुख, चैतन्यसत्ता-रूप है स्वभाव जिनका ऐसै सर्व जिन-मुनि है ते इहां आय संवौषट् मंत्र निवेशन किया अरु द्विवार ठः ठः मंत्र करि स्थापन किया अरु मुद्रका आरोपण सत्कार करि तथा वषट् पद करि संनिहित क्रिया संता पूजाकी विधिनैं ग्रहण करो। ऐसैं तीन वार पढ़ै ॥ ४४२ ॥

ओं ह्रीं अत्र जिनप्रतिष्ठाविधाने सर्वयागमंडलोक्ता जिनमुनय अत्रावतरत, अवतरत तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ममात्रसंनिहितो भवत भवत वषट् इत्यादि त्रिवारं कुर्यात्।

मंडलमध्ये सुप्रतीकपीठे स्वस्तिकोपरि स्थापयेत्।

अरु मंडल मध्य कर्णिकामैं पीठमैं स्वस्तिक ऊपरि स्थापना करनी।

प्रांशुस्वर्णमणिप्रभाततिभृताभृंगारनालोच्छलद्
गंगासिंधुसरिन्मुखोपचितसत्पाथो भरेण त्रिधा ।
जन्मारातिविभंजनौषधिमितेनोद्धूतगंधालिना
चाये यागनिधीश्वरानघहृते निःश्रेयसः प्राप्तये ॥ ४४३ ॥

ऊंचा जो सुवर्ण मणिकी कांतिनैं धारण करने वारा अरु झारीका नालासैं उछलता गंगा सिंधु आदि नदी मुखमैं संचित सुंदर जलका समूह करि मन-वचन-काय करि जन्मरूप वैरीका नाशकी औषधि समान अरु उठा है गंध करि भ्रमर जामैं ऐसा जल करि मैं मेरा पापका हरणे तांई अर मोक्षसुखकी प्राप्तिके अर्थि योगमैं आहूत पंच परमेष्ठीकूं पूजूं हूं ॥ ऐसैं जलधारा देना ॥ ४४३ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर जिनमुनिभ्यो जलं ।

घुसृणमलयजातैश्चंदनैः शीतगंधै, र्भवजलनिधिमध्ये दुःखदोवाडवाग्निः ।
तदुपशमनिमित्तं बद्धकक्षैर्निमज्जद्--भ्रमरयुवभिरीडत् सांद्रसार्द्रप्रवाहैः ॥ ४४४ ॥

येह संसार-समुद्रमैं दुःखको देनेवारो वड़वाग्नि समान ताप है ताका उपशम निमित्त बद्धपरिकर, अरु बलात्कार डूबते हैं भ्रमर युवान जामैं, अरु श्लाघा योग्य है सघन प्रवाह जिनमैं ऐसैं मृदु चंदनसैं उत्पन्न शीतल गंधन करि पूजूं हूं ॥ ऐसैं चंदन चढ़ावना ॥ ५४४ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर जिनमुनिभ्यश्चंदनं ।

शशांकस्पर्द्धाद्भिः कमलजननैरक्षतपदा-
धिरूढैः श्रामण्यं शुचिसरलताद्यैर्गुणवरैः ।
हसद्भिः साम्राज्याधिपतिचमनार्हैः सुरभिभि-
र्जिनार्चांह्रिप्रांची विपुलतरपुंजैः परियजे ॥ ४४५ ॥

चंद्रमाकूं स्पर्द्धना करै अरु अक्षयपदकूं प्राप्त ऐसे शुचिता सरलतादि गुण करि युक्त मुनिजनकूं हँसनेवारे अरु चक्रवर्ती योग्य भोजन-

मैं प्रिय ऐसे अरु सुगंधित अर सुंदर पुंज जिनके ऐसे तंडुलन करि जिनेंद्र-चरण पूव दिशाकूं पूजू हूं ॥ ऐसैं अक्षत पूजा करनी ॥४४५॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर जिनमुनिभ्योऽक्षतम् ।

दुरंतमोहानलदीप्यदंशु कामेन नष्टीकृतमाशुविश्वं ।

तद्वाणराजीशमनाय पुष्पैर्यजामि कल्पद्रुमसंगतै र्वा ॥ ४४६ ॥

वहुरि मैं दुरंत जो मोहाग्नि ता करि प्रज्वल्यमान येह कामदेवनैं शीघ्र ही विश्व संसार नष्ट किया ताका बाणराशिका शांति अर्थि पुष्पन करि अथवा कल्पवृक्षनके पुष्पन करि पूजू हूं ॥ ऐसैं पुष्प पूजा करनी ॥४४६ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनमुनिभ्यः पुष्पाणि ।

पीयूषपिंडनिवहैर्घृतशर्करान्नयोगोद्भवैर्नयनचित्तविलासदक्षैः ।

चामीकरादिशुचिभाजनसंस्थितै र्वा संपूजयाम्यशनबाधनबाधनाय ॥ ४४७ ॥

वहुरि घृत शकरा अरु अन्न इनका योगसैं उत्पन्न अरु नेत्र अर हृदयकूं प्रिय अरु सुवर्णके पात्रमैं स्थापित पीयूष-पिंड जो नैवेद्य ताकरि क्षुधावाधा-रोगकी शांति अर्थि पूजू हूं ॥ ऐसैं नैवेद्य पूजा करनी ॥ ४४७ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर जिनमुनिभ्यश्चरुं ।

अमितमोहतमोविनिवृत्तये घटितरत्नमणिप्रभवात्मभिः ।

अयमहं खलुदीपकनामकै र्जिनपदाग्रभुवं परिदीपये ॥ ४४८ ॥

वहुरि यो मैं निश्चय करि सुघट रत्ननिकी मणिकी उत्पत्ति-स्वरूप ऐसे दीपकन करि अप्रमाण मोहांधकारकी निवृत्ति हेतु जिनेंद्र पदाग्र पृथ्वीनैं प्रकाशित करूं हूं अर्थात् पूजूं हूं ॥ ऐसैं दीपक पूजा करनी ॥ ४४८ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर जिनमुनिभ्यो दीपं ।

धूपोद्घ्राणैर्यजनविधिषु प्रीणिताशेषदिक्कै-

रुध्यद्वन्हावगुरुमलयापीडकान् संदहद्भिः ॥

अर्चे कर्मक्षपणाकरणे कारणैराप्तवाक्यै–

यज्ञाधीशानिव बहुविधैर्धूपदानप्रशस्तैः ॥ ४४९ ॥

बहुरि यज्ञ विधानमैं प्रसन्न किया है समस्त दिशा जानैं अरु दीप्त अग्निमैं अगुरु चंदन आदिका समूहनैं दहन कर, ऐसी धूप सुगंधि करि कर्म-क्षय करनमैं कारणभूत ऐसे आप्तवचन हैं तिन करि यज्ञके स्वामीननैं पूजूं हूं ॥ ऐसैं धूप-पूजा करनी ॥ ४४९ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनमुनिभ्यो धूपं ।

निःश्रेयसपदलब्ध्यै कृतावतारैः प्रमाणपटुभिरिव ।

स्याद्वादभंगनिकरै र्यजामि सर्वज्ञमनिशममरफलैः ॥ ४५० ॥

बहुरि मोक्षपदकी लब्धि अर्थि किया है अवतार जिननैं ऐसे प्रमाणपटु स्याद्वाद वाक्यन करि ही मैं निरंतर सर्वज्ञनैं देवोपुनीत फलनि करि पूजूं हूं ॥ ऐसैं फल-पूजा करनी ॥ ४५० ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वर जिनमुनिभ्यः फलं ।

पात्रे सौवर्णे कृतमानंदजयषक् पूजार्हतं विस्फुरितानां हृदयेऽत्र ।

तोयाद्यष्टद्रव्यसमेतैर्भृतमर्घं शास्तृणामग्रे विनयेन प्रणिदध्मः ॥ ४५१ ॥

बहुरि हम सुवर्ण-पात्रमैं रचित अरु पूजक पुरुषनका हृदयमैं पूजा योग्य ऐसे जलादि अष्ट द्रव्य करि भरया ऐसा अर्घनैं शासन करने-वारेनके अग्र विनय करि समर्पण करूं हूं ॥ ऐसैं अर्घ देना ॥ ४५१ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोत्सवे सर्वयज्ञेश्वरजिनेभ्योऽर्घ ।

अथ प्रत्येकार्घाणि।

अब प्रत्येक अर्घ कहिये है—

अनंतकालसंपद्भवभ्रमणभीतितो निवार्य संदधन् स्वयं शिवोत्तमार्यसद्मनि।
जिनेशविश्वदर्शिविश्वनाथमुख्यनामभिः स्तुतं जिनं महामि नीरचंदनैः फलैरहं ॥४५२॥

अनंतकालतै प्राप्त भया संसार-भ्रमणका भयतै इस प्राणीकूं निवारण करि स्वयं शिवरूप उत्तम श्रेष्ठ गृहमैं धारण कर अरु 'जिनेश विश्वदर्शी अरु विश्वनाथ आदि नाम करि विख्यात ऐसा जिनेंद्रनैं नीर चंदन करि फल करि मैं पूजूं हूं ॥ ४५२ ॥ ऐसैं अनंत भवरूप समुद्रका भयनैं दूरि करता अरु अनंत गुणन करि पूजित अर्हंतके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं अनंतभवार्णवभयनिवारकानंतगुणस्तुतायार्हतेऽर्घम्।

कर्मकाष्ठहुतभुक् स्वशक्तितः संप्रकाश्यमहनीयभानुभिः।
लोकतत्त्वमचलें निजात्मनि संस्थितं शिवमहीपतिं यजे ॥ ४५३ ॥

बहुरि मैं कर्म-रूप काष्ठ तांईं अग्निरूप स्वशक्तिमैं ज्ञान-रूप किरणन करि लोकतत्त्वनैं प्रकाश करि अचल निज आत्मामैं स्थित ऐसा मोक्षरूप पृथ्वीका स्वामी सिद्ध परमेष्ठीनैं पूजूं हूं ॥४५३॥ ऐसैं अष्ट कर्म विनाशन-कर्ता निज आत्मतत्त्वका प्रकाशक सिद्ध परमेष्ठीके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं अष्टकर्मविनाशकनिजात्मतत्त्वविभासकसिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं।

सार्थवाहमनवद्यविद्यया शिक्षणान्मुनिमहात्मनां वरं।
मोक्षमार्गमलघुप्रकाशकं संयजेगुरुपरंपरेश्वरम् ॥ ४५४ ॥

बहुरि मैं निर्दोष स्याद्वादविद्याकरि मुनि महापुरुषनका शिक्षा करनेतैं उत्कृष्ट मोक्ष-मार्गनैं शीघ्र प्रकाश करनेवारा ऐसा गुरुपरंपराका स्वामी आचार्य परमेष्ठीनैं पूजूं हूं ॥ ४५४ ॥ ऐसैं निर्मल विद्याका प्रकाश आचार्य परमेष्ठीके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं अनवद्यविद्याविद्योतनायाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

द्वादशांगपरिपूर्णसच्छ्रुतं यः परानुपदिशेत पाठतः ।

बोधयत्यभिहितार्थसिद्धये तानुपास्ययजयामि पाठकान् ॥ ४५५ ॥

जो द्वादशांग वाणी करि पूर्ण श्रुतनैं पूरनकूं पढ़ावैं अरु आप पढ़ैं वांछितार्थ सिद्धिके अर्थि, ते पाठक परमेष्ठी जे हैं तिननैं उपासन करि पूजू हूं ॥ ४५५ ॥ ऐसैं द्वादशांग परिपूर्ण श्रुतका धारी उपाध्याय परमेष्ठीकूं अर्घ देना।

ओं ह्रीं द्वादशांगपरिपूर्णश्रुतपाठनोद्यतबुद्धिविभवोपाध्याय परमेष्ठिभ्योऽर्घं।

उग्रमर्घ्यतपसाभिसंस्कृतिं ध्यानभानविनिवेशितात्मकं ।

साधकं शिवरमासुखामृते साधुमीड्यपदलब्धयेऽर्चये ॥ ४५६ ॥

बहुरि मैं उग्र अरु सार्थक तप करि संस्कारप्राप्त भया अरु ध्यान ज्ञानमैं स्थापन किया है आत्मा जानैं ऐसा अरु मोक्षमार्ग लक्ष्मी सुखका अमृतमैं कारणरूप ऐसा परमेष्ठीनैं पूज्यपदको प्राप्तके अर्थि पूजू हूं ॥ ४५६ ॥ ऐसैं घोर तप करि संस्कार पाया ध्यान स्वाध्यायमैं सावधान साधु परमेष्ठीकूं अर्घ देना ।

ओं ह्रीं घोरतपोऽभिसंस्कृतध्यानस्वाध्यायनिरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

अर्हन्नेव त्रिभुवनजनानंदनान्मंडलाग्र्यो

विघ्नध्वंसं निजमतिकृतादस्त्रसंघोपनोदात् ।

संकुर्वंस्तत्प्रकृतिरपि स्पष्टमानंददायि-

न्येवं स्मृत्वा जलचरुफलैरर्चयामि त्रिवारं ॥ ४५७ ॥

बहुरि यहां अर्हंत हैं सो ही तीन जगतका प्राणीनन आनंद देनेतैं परम मंगल हैं अरु अपना ज्ञानशक्तिकृत अस्त्र संघका पतनतैं विघ्नका ध्वंसन करता अरु ताकी मूर्ति भी स्पष्ट आनंदको देनहारी है ऐसा स्मरण करि मैं जल नैवेद्य फलादि करि तीन वार अर्घ उतारूं हूं ॥ ४५७ ॥ ऐसैं अर्हंत परमेष्ठी मंगलका अर्घ देना—

ओं ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिमंगलायार्घम् ।

स्मारं स्मारं गुणगणमणिस्फारसामर्थ्यमुच्चै-
र्यत्प्राप्त्यर्थं प्रयतति जनो मोक्षतत्त्वेऽनवद्ये ।
प्रत्यूहान्तं भवभवगतानां प्रघातप्रकॢप्त्यै
सिद्धानेव श्रुतिमतिबलादर्चये संविचार्य ॥ ४५८ ॥

येह संसारी जन जिनका गुणका समूह रत्ननकी प्रचुर सामर्थ्यनैं स्मरण करि उनकी प्राप्तिके अर्थि उच्चरूप निर्मल मोक्षतत्त्वमैं प्रयत्न करै है, अर संसारगत विघ्ननकी निवृत्ति अर्थि मैं शास्त्र-बलतैं सम्यक् विचारि सिद्ध-मंगलतैं पूजू हूं ॥ ४५८ ॥ ऐसैं सिद्ध-मंगलकूं अर्घ देना—

ओं ह्रीं सिद्धमंगलेभ्योऽर्घम् ।

रागद्वेषोरगपरिशमे मंत्ररूपस्वभावा
मित्रे शत्रौ समकृतहृदानंदमांगल्यरूपाः ।
येषां नामस्मरणमपि सन्मंगलं मुक्तिदायी-
त्यर्चे यज्ञे वसुविधविधिप्रीणनैः प्राणिपूज्यं ॥ ४५९ ॥

बहुरी मैं रागद्वेषरूप सर्पका उपशम करनेमैं सिद्धमंत्र स्वभावी अरु शत्रु अर मित्रमैं समान किया हृदय जिनने आनंद अरु मांगल्य रूप अरु तिनका नामका स्मरण ही सुन्दर मंगलको देनेवारो है, येही जान अष्ट प्रकार सामग्री करि सर्वमात्र प्राणी करि पूज्य साधुमंगलनैं इस यज्ञमैं पूजू हूं ॥ ४५९ ॥ ऐसे साधुमंगलकूं अर्घ देना ।

ओं ह्रीं साधुमंगलायार्घम् ।

मूर्च्छा मूर्च्छा गुरुलघुभिदा द्वैधवर्त्मप्रदिष्टो
जैनो धर्मः सुरशिवगृहद्वारदर्शी नितांतं ।
सेव्यो विघ्नप्रहणनविधावुत्तमार्थैः प्रशस्तः
संपूजेऽहं यजनमननोद्दामसिद्ध्यर्थमद्यम् ॥ ४६० ॥

मूर्छा परिग्रह अरु मूर्छा अपरिग्रहरूप गुरु लघु भेदतैं द्विप्रकार दिखायो जिनसंबंधी मार्ग स्वर्ग मोक्षका गृहका द्वारने दिखानेवारो अतिशय करि सेवन योग्य है। अरु ये ही उत्तम अर्थवारेननैं विघ्नका हनवेकी विधिमैं प्रशस्त कह्या, सो मैं पूज्य तिस धर्मकूं यज्ञका विधानसिद्धके अर्थि पूजू हूं ॥ ४६० ॥ ऐसैं केवली प्रणीत धर्मकूं अर्घ देना।

ओं ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगलायार्घम्।

येषां पादस्मृतिसुखसुधायोगतस्तीर्थनाम
प्रापुः पुण्यं यदवनतिना जन्मसार्थं लभंते।
लोकाधात्र्यां वनगिरिभुवश्चोत्तमत्वं जिनेंद्रा—
नर्चे यज्ञप्रसवावधिषु व्यक्तये मुक्तिलक्ष्म्याः ॥ ४६१ ॥

बहुरि जिनका चरण स्पर्शन सुखरूप अमृतका योगतैं पृथ्वी विषैं वन पर्वतकी पृथ्वी है ते तीर्थ नाम पुण्यरूपो प्राप्त भये अरु लोक जिनका नमस्कार दर्शनादि करि अपना जन्मकूं सार्थक मानै है अरु उत्तमपणानै मानै है, ऐसी मोक्षलक्ष्मीकी प्रगटताके अर्थि इस विधिमैं अर्हंतलोकोत्तमनैं पूजू हूं ॥ ४६१ ॥ ऐसैं अर्हंतलोकोत्तमके अर्थि अर्घ देना—

ओं ह्रीं अर्हल्लोकोत्तमेभ्योऽर्घम्।

दृष्टिज्ञानप्रतिभटतया कर्ममीमांसयाऽन्यान्
श्वभ्रे संपादयति विविधा वेदनाः संकरोति।
तेषां मूलं निविडपरमज्ञानखड्गेनहत्त्वा
निःकर्मत्वं समधिगतवानर्च्यते सिद्धनाथः ॥ ४६२ ॥

बहुरि येह कर्म सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानका वैरी है, तातैं विचारि विचारि तीव्र मंदादि अध्यवसायके भेदतैं अन्य प्राणीननैं नरकमैं पटकै है। अरु तीव्र नानाप्रकार वेदनानैं करै है। अर सिद्ध परमेष्ठी हैं सो सघन ज्ञानरूप खड्ग करि तिनि कर्मनिका मूल रागद्वेषनै हनि करि निःकर्म अवस्थानैं प्राप्त भया, यातैं मैं नैं पूजिये है। ॥ ४६२ ॥ ऐसैं सिद्धलोकोत्तमनैं अर्घ देना ॥

ओं ह्रीं सिद्धलोकोत्तमायार्घम्।

सूर्याचंद्रौ मरुदधिपतिर्भूमिनाथोऽसुरेंद्रो
यस्यांह्यब्जे प्रणतशिरसा लोलुठीति त्रिशुद्धया ।
सोऽयं लोके प्रवरगणनापूजितः किं न वा स्याद्
यस्मादर्चे मुनिपरिवृढं स्वानुभावप्रसत्त्या ॥ ४६३ ॥

यो साधु लोकोत्तम ऐसा है कि सूर्य अरु चंद्र तथा देवेंद्र चक्रवर्ती असुरेंद्र है, ते जाका पादपद्ममैं नम्र मस्तक करि मन-वचन-काय शुद्धि करि लुठै हैं; सो अन्य प्राणीनके पूजित क्यों न होय ? तातैं अपना कल्याणकी प्राप्ति अर्थ मुनि मान्यनैं पूजू हूं ॥ ४६३ ॥ ऐसैं साधुलोकोत्तमकूं अर्थ देना—

ओं ह्रीं साधुलोकोत्तमेभ्योऽर्घम् ।

यत्र प्राणिप्रवरकरुणा यत्र मिथ्यात्वनाशो
यत्रोपांते शिवपदसमान्वेषणां कामनष्टिः ।
यत्र प्रोक्ता दुरितविरतिः सोयमर्घ्यः कथं न
यस्माद् धर्मो निखिलहितकृत् पूज्यतेऽसौमपाऽपि ॥ ४६४ ॥

बहुरि जहां प्राणिनकी उत्तम दया है अरु जहां मिथ्यात्वका नाश है अरु अंतमैं मोक्षमार्ग को देखो अरु कायका नाश है, अरु जहां पापसैं विरति पूर्ण कही है सो धर्म समस्तनिकौं हितकर्ता है, सो मैं करि भी पूजित है ॥ ४६४ ॥ ऐसैं लोकोत्तम धर्मकूं अर्घ देना—

ओं ह्रीं केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमायार्घम् ।

जीवाजीवद्विविधशरणान्वेषणे स्थैर्यभंगं
ज्ञात्वा त्यक्त्वाऽन्यतरशरणं नश्वरं मद्विधानां ।
इंद्रादीनामितिपरिचयादात्मरत्नोपलब्धि—
सिद्धैः प्राप्तुं निचितमनसा पूज्यतेऽर्हन् शरण्यः ॥ ४६५ ॥

बहुरि जीव अरु अजीव-रूप द्विप्रकार शरणका अन्वेषणमैं सर्वत्र अस्थिरता जानि अब मैं सारिखा इंद्रादिकका विनाशीक अन्य शरणनैं छोडि करि अरु याही परिचयतैं आत्मरत्नकी प्राप्ति है, ऐसे इष्टकी प्राप्ति होयवेका इच्छावान् पुरुषनैं अरहंतशरण है सो दृढ़ मनसा करि पूजिये है ॥ ४६५ ॥ ऐसैं अर्हंतशरणकूं अर्घ देना—

ओ ह्रीं अर्हच्छरणेभ्योऽर्घम् ।

यावद्देहे स्थितिरुपचयः कर्मणामास्रवेण
तावत्सौख्यं कुत उपलभेऽतस्ततस्त्रोटनेच्छुः ।
एतत्कृत्यं न भवति विना सिद्धभक्तिं यतो मे
पूर्णार्घौघप्रयजनविधावाश्रितोऽहं शरण्यम् ॥ ४६६ ॥

बहुरि यावत् इस देहमैं स्थिति है अरु आस्रव द्वार करि कर्मनको आस्रव है, तावत् पर्यंत मैं सुखभावकूं कैसैं प्राप्त होवूं ? अरु मैं इस कर्म-संतानकूं तोड़नेकौं इच्छक हूं, परंतु यो कार्य सिद्धकी भक्ति विना नहीं होय, ता कारण पूर्ण अर्घका पूजन-विधिमैं जो असल शरण है ताहि आश्रित भयो हूं ॥ ४६६ ॥ ऐसैं सिद्धशरणकूं अर्घ देना—

ओं ह्रीं सिद्धशरणायार्घम् ।

रागद्वेषव्यपगमनतो निःस्पृहा धीरवीराः
संसाराब्धौ विषमगहने मज्जतां निर्निमित्तं ।
दत्त्वा धर्मोद्धरणतरणिं पारयंतो मुनीशा-
स्तानर्घेण स्थिरगुणधिया प्रांचयामि त्रिगुप्त्या ॥ ४६७ ॥

बहुरि रागद्वेषका नहीं होवातैं धीर वीर अरु निस्पृह ऐसे हैं, ते विषम गंभीर संसार-समुद्रमैं डूबतेनकूं धर्म-रूप उद्धार जिहाजनैं देय करि पार करैं हैं, तिन मुनीशनकूं स्थिर गुणबुद्धितैं तीन गुप्ति करि पूजूं हूं ॥ ४६७ ॥ ऐसे साधुसरणकूं अर्घ देना—

ओं ह्रीं साधुशरणेभ्योऽर्घम् ।

मित्रं सम्यक् परभवयथाचक्रमे सार्थदायि
नान्यो धर्माद्दुरितदहन प्लोषणोऽबुप्रवाहः ।
जानंतं मां समदृशिधियां संनिधानाच्छरण्य
त्रायस्व त्वं त्वयि धृतिगतिं पूजनार्घेण युक्तं ॥ ४६८ ॥

ये धर्म परभवका गमनमैं भला मित्र है अरु साथ देनेवारा है, अरु यातैं अन्य कोई भी पापरूप दावानलका बुझावानै जलका प्रवाह नहीं है ऐसा जान, मोनैं सम्यग्दर्शनज्ञानवानोंका समीप वाससैं है शरणागत वत्सल तू, तिहारी भक्तिमें धारण किई, गतियुक्त अरु पजाका अर्घ संयुक्त मोकूं रक्षा कर ॥ ४६८ ॥ ऐसैं धर्मशरणनैं अर्घ देना—

ओं ह्रीं धर्मशरणायार्घम् ।

सर्वां ते तान् तत्त्वचंद्रप्रमाणान् जापध्यानस्तोत्रमंत्रै रुदर्च्य ।
द्रव्यक्षेत्रस्फूर्तिसज्जावकाशं नत्वार्घेण प्रांशुना संस्मरामि ॥ ४६९ ॥

ये सर्व सप्तदश अर्हंतमंगलादि जप ध्यान स्तोत्र मंत्रन करि पूजि द्रव्य-क्षेत्रकी प्रकटताका अवकाश नमस्कार करि विस्तीर्ण अर्घ करि स्मरण करूं हूं, अर्थात् पूजू हूं ॥ ४६९ ॥ ऐसैं प्रथम वलयदेवनिकूं पूर्णार्घ देना—

ओं ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिप्रभृतिधर्मशरणांतप्रथमवलयस्थितिसप्तदशजिनाधीशयज्ञदेवताभ्योऽर्घम् ।

अथ द्वितीय वलये चतुर्विंशतिभूतजिनपूजा ।

प्रत्येकार्घाः । तथा हि—अब द्वितीय वलयमें स्थापित भूत जिनका प्रत्येक अर्घ सो ऐसैं है कि—

निर्वाणदेवं श्रितभव्यलोक निर्वाणदातारमनंतसौख्यं ।
संपूजयेऽहं मखसिद्धिहेतो रधीश्वरं प्राथमिकं जिनेंद्रं ॥ ४७० ॥

मैं यज्ञकी सिद्धिके हेतु आश्रित जो भव्य लोक तिनकूं निर्वाणका दाता अरु अनंत सुखका धाम ईश्वर ऐसा प्रथम निर्वाण जिनद्र जो ताहि सम्यक् पूजू हूं ॥ ४७० ॥

ओं ह्रीं निर्वाणजिनायार्घम्।

श्रीसागरं वीतममत्वरागद्वेषं कृताशेषजनप्रसादं।

समर्चये नीरचरुप्रदीपै रुद्दीपिताशेषपदार्थमालं ॥ ४७१ ॥

बहुरि गयो है ममत्त्व रागद्वेष जिनकैं अरु कियो है समस्त जनके अर्थि प्रसन्नता जानैं ऐसा, अरु प्रकट किया है समस्त पदार्थ जानैं ऐसा श्रीमान् सागर नामक श्रीजिनेंद्रनैं जल चंदन चरु प्रदीपनि करि पूजू हूं ॥ ४७१ ॥

ओं ह्रीं सागरजिनायार्घम्।

श्रीमन्महासाधुजिनं प्रमाणनयप्रमाणीकृतजीवतत्त्वं।

स्याद्वादभंगप्रणिधानहेतुं समर्चये यज्ञविधानसिद्ध्यै ॥ ४७२ ॥

बहुरि प्रमाण नय करि निश्चित किया है जीवतत्त्व जानैं अरु स्याद्वादभंगका प्रणयनका कारण ऐसा श्रीमान् महासाधु नामक जिनेंद्रनैं यज्ञविधानकी सिद्धिके अर्थि पूजू हूं ॥ ४७२ ॥

ओं ह्रीं महासाधुजिनायार्घम्।

यस्यातिसाज्ज्ञानविशालदीपे प्रभासमानं जगदल्पसारं।

विलोक्यते सर्षपवत्कराग्रे समर्चयेऽहं विमलप्रभाख्यं ॥ ४७३ ॥

बहुरि या विमलप्रभ तीर्थंकरका समीचीन ज्ञानमय विशाल दीपकमैं येह जगत् कराग्रमैं सरस्यूंकी नांइं प्रभासन करतां अल्पसार दीखिये है ता विमलप्रभ जिनेंद्रनैं मैं पूजू हूं ॥ ४७३ ॥

ओं ह्रीं विमलप्रभायार्घम्।

समाश्रितानां मनसो विशुद्ध्यै कृतावतारं मुनिगीतकीर्तिम्।

प्रणम्य यज्ञेऽहमुदंचयामि शुद्धाभदेवं चरुभिः प्रदीपैः ॥ ४७४ ॥

आश्रित भव्यनका मनकी विशुद्धिके अर्थि किया है अवतरण जानैं, मुनिन करि गायी है कीर्ति जाकी ऐसा शुद्धाभदेवनैं चरु अर दीपक इन करि यज्ञमैं नमस्कार-पूर्वक पूजू हूं ॥ ४७४ ॥

ओं ह्री शुद्धाभदेवायार्घम् ।

लक्ष्मीद्वयं वाह्यगतांतरंगभेदात्पदाग्रे विलुलोठ यस्य ।
यस्मात्सदा श्रीधरकीर्तिमाप्तमर्चयेद्याश्रितभव्यसार्थम् ॥ ४७५ ॥

जाका चरणाग्रमें वाह्य अरु अंतरंग भेदतैं दोउ तरफकी लक्ष्मी लोटै है याहीतैं सदा ही श्रीधर नाम प्राप्त होत भयो, ता श्रीधर देवनें आश्रय किया है भव्य समूह जानैं, तानैं पूजू हूं ॥ ४७५ ॥

ओं ह्री श्रीधराय अर्घम् ।

श्रियं ददातीह सुभक्तिभाजां वृंदाय यस्मादिह नाम जातं ।
श्रीदत्तदेवं भवभीतिमुक्त्यै यजामि नित्याद्भुतधामलक्ष्म्यै ॥ ४७६ ॥

इस संसारमें सुंदर भक्तितैं भजनेवारेका समूहके अर्थि श्री जो आत्मा-लक्ष्मीकूं देवै है, ता कारण श्रीदत्त ऐसा नाम भया ताकूं मैं संसारका भय निवृत्यर्थ अरु नित्य अद्भुत गृह मोक्षकी लक्ष्मीके निमित्त पूजू हूं ॥ ४७६ ॥

ओं ह्रीं श्रीदत्तजिनायार्घम् ।

सिद्धाप्रभांगस्य विसर्पिणी तन्मध्येजनुः सप्तकदर्शनेन ।
सम्यग्विशुद्धिर्मनसो यतस्त्वां सिद्धाभ ! यज्ञेऽर्चयितुं समीहे ॥ ४७७ ॥

जाका अंगकी फैलावती प्रभा प्रसिद्ध है, तामैं प्राणीका सातभव देखिवानैं मनकी सम्यक् विशुद्धि होय है, ता कारण हे सिद्धाभदेव ! इस यज्ञमैं तूंनैं पूजवेकूं वांछू हूं ॥ ४७७ ॥

ओं ह्रीं सिद्धाभजिनायार्घम् ।

प्रभामतिः शक्तिरनेकधा सद्ध्यानलक्ष्म्या यत उत्तमार्थैः ।

संगीयते त्वं ह्यमलां विभर्षि यतोऽर्चये त्वाममलप्रभाख्यं ॥ ४७८ ॥

अरु प्रभा बुद्धि शक्ति ये अनेक नाम सद्ध्यान लक्ष्मीका है, यातैं उत्तमार्थ पुरुषनितैं तू गान करिये है अरु निर्मल प्रभान धारै है, यातैं अमलप्रभ नामक तुमकूं पूजू हूं ॥ ४७८ ॥

ओं ह्रीं अमलप्रभजिनायार्घम् ।

अनेकसंसारगतं भ्रमेभ्य उद्धारकर्तेति बुधैरवादि ।
यतो मम भ्रांतिमपाकुरु त्वमुद्धारदेव प्रयजे भवंतं ॥ ४७९ ॥

पंडित जननैं ऐसा कहा है कि तुम अनेक संसारका भ्रमतैं उद्धार करनेवारा है, यातैं तू मेरी भ्रांत दशा जो है ताहि दूरि करि। हे उद्धार जिन ! तोहि पूजू हूं ॥ ४७९ ॥

ओं ह्रीं उद्धारजिनाय अर्घम् ।

दुष्टाष्टकर्मेंधनदाहकर्ता यतोऽग्निनामाभ्युदितं यथार्थम् ।
ततो ममासाततृणाव्रजेऽपि तिष्ठार्चये त्वां किमु पौनरुक्ते ॥ ४८० ॥

हे जिनेंद्र ! तुम दुष्ट अष्टकर्म-रूप काष्ठका दाह करनेवारे हो, यातैं सार्थक अग्नि नाम प्राप्त भया; तातैं मेरा असाता-रूप तृण समूहमैं भी तिष्ठ, अर्थात् अग्निरूप होय तिष्ठ। इस कारण तूनैं पूजू हूं, पुनरुक्त वचनन करि कहा ? ॥ ४८० ॥

ओं ह्रीं अग्निदेवजिनाय अर्घम् ।

प्राणेंद्रियद्वैधसुसंयमस्य दातारमुच्चैः कथयामि सार्व ।
मद्दत्तमर्घं जिन संगृहाण सुसंयमं स्वीयगुणं प्रदेहि ॥ ४८१ ॥

वहुरि हे सार्व ! प्राण-संयम अरु इंद्रिय-संयम ई प्रकार द्विविध संयमकूं भले प्रकार देवो, यातैं उच्चस्वर करि मैं तुम प्रति कहूं हूं, तातैं मेरा दिया अर्थकूं ग्रहण करि अरु अपना गुण संयमकूं देहि ॥ ४८१ ॥

ओं ह्रीं संयमजिनायार्घम् ।

स्वयं शिवः शाश्वतसौख्यदायि स्वायंप्रभुः स्वात्मगुणप्रपन्नः ।
तस्मात्तदर्थप्रतिपन्नकामस्त्वामर्चये प्रांजलिना नतोऽस्मि ॥ ४८२ ॥

अरु आप स्वयं शिव-रूप निरंतर सुखका देनेवारा हो, आत्मीक गुणका प्रगटनवान् आप प्रभु हो, तातैं ता अर्थको प्राप्तिका वांछक मैं अंजुली जोड़ि नमस्कार करूं हूं अर तोनैं पूजूं हूं ॥ ४८२ ॥

ओं ह्रीं शिवजिनाय अर्घम् ।

सत्कुंदमल्लीजलजादिपुष्पै रभ्यर्च्यमानः श्रियमादधाति ।
नाम्नाऽप्यसौ तादृश एव यस्मात् पुष्पांजलिं त्वां प्रतिपूजयामि ॥ ४८३ ॥

अरु कुंदमालती कमल आदि पुष्पनि करि पूजित भया संता लक्ष्मीनैं देवै है अरु नाम करि भी वैसा ही, यातैं हे देव पुष्पांजलि नामक ! तुमनैं पूजू हूं ॥ ४८३ ॥

ओं ह्रीं पुष्पांजलिजिनायार्घम् ।

उत्साहयन् ज्ञानधनेश्वराणां शाम्याम्बुधिं संयमचंद्रकीर्तेः ।
उत्साहनाथो यजनोत्सवेऽस्मिन् संपूजितो मे स्वगुणं ददातु ॥ ४८४ ॥

अरु ज्ञानरूप धनके स्वामी जे हैं तिनके संयमरूप चंद्रमाकी कांतितैं समभाव-रूप समुद्रकूं उत्साह बधातो उत्साह नाम जिन ! यजन-उत्सवमैं पूजित भयो अपना गुण देवो ॥ ४८४ ॥

ओं ह्रीं उत्साहजिनाय अर्घम् ।

नमोऽस्तु नित्यं परमेश्वराय कृपा यदीयाक्षणसंनिधानात् ।
करोति चिंतामणिरीप्सितार्थमिवांचये तं परमेश्वराख्यं ॥ ४८५ ॥

अरु नित्य तुम परमेश्वरके अर्थि नमस्कार होउ जाकी कृपा क्षणमात्र संनिधानतैं चिंतामणि वांछितनैं करै ता समान करै है ऐसा परमेश्वर नाम जिनेंद्रनै पूजू हूं ॥ ४८५ ॥

ओं ह्रीं परमेश्वरजिनायार्घम् ।

यज्ज्ञानरत्नाकरमध्यवर्ती जगत्त्रयं विंदुसमं विभाति ।
तं ज्ञानसाम्राज्यपतिं जिनेंद्रं ज्ञानेश्वरं संप्रति पूजयामि ॥ ४८६ ॥

अर जाका ज्ञानरूप समुद्रमैं तीन जगत् विंदु समान शोभित होय है ऐसा ज्ञानरूप साम्राज्यकी लक्ष्मीकापति ज्ञानेश्वर नायक जिनें- वर्तमानमैं पूजू हूं ॥ ४८६ ॥

ओं ह्रीं ज्ञानेश्वरजिनाय अर्घम् ।

तपोवृहद्भानुसमूढतापकृतात्मनैर्मल्यमनिर्मलानाम् ।
अस्मादृशां तद्गुणमाददानं संपूजयामो विमलेश्वरं तं ॥ ४८७ ॥

तपरूपी अग्निका वधा हुवा ताप करि कियो है आत्मानैं निर्मल जाने अर मो सारिखे अनिर्मलता धारण करनेवारेनकूं नैर्मल्य गुणनैं देनेवारो, ऐसो विमलेश्वर नामक जिनेंद्र जो हैं ताहि हम पूजैं हैं ॥ ४८७ ॥

ओं ह्रीं विमलेश्वरजिनाय अर्घम् ।

यशः प्रसारे सति यस्य विश्वं सुधामयं चंद्रकलावदातं ।
अनेकरूपं विकृतैकरूपं जातं समर्चेहि यशोधरेशं ॥ ४८८ ॥

अरु जाका यशका फैलावमैं समस्त विश्व अमृतमय अरु चंद्रमाकी कला समान निर्मल अरु अनेकरूप भी सुकृतरूप होतो भयो, ता यशोधर देवनैं पूजूं हूं ॥ ४८८ ॥

ओं ह्रीं यशोधरजिनेशाय अर्घम् ।

क्रोधस्मराशातविघातनाय संजाततीव्रक्रुधिवात्मनाम ।
प्राप्तं तु कृष्णेति नु शुद्धियोगात् तं कृष्णमर्चे शुचिताप्रपन्नं ॥ ४८९ ॥

क्रोध अरु कामरूपी वरीका विघातके अर्थि उत्पन्न हुवो है क्रोध जाकै तातैं कृष्ण ऐसा नाम हुवा अरु शुद्धिके योगतैं शुचिता प्राप्त ऐसा कृष्णमति जिनकूं पूजू हूं ॥ ४८६ ॥

ओं ह्रीं कृष्णमतये जिनाय अर्घम्।

ज्ञानं मतिर्भाव उपाश्रयादिरेकार्थएवप्रणिधानयोगात् ।
ज्ञानेमतिर्यस्य समासजाते यथार्थनामानमहं यजामि ॥ ४९० ॥

ज्ञान अरु मति अरु भाव अरु उपाश्रय आदि प्रणिधानके योगतैं एकार्थक है यातैं ज्ञान विषैं है मति जाकी सो समासके योगतैं ज्ञान-मति नामक जिनेंद्रनैं पूजू हूं ॥ ४९० ॥

ओं ह्रीं ज्ञानमतये जिनाय अर्घम्।

समस्यमानान्यपदार्थजातं धुरंधरं धर्मरथांगनेमिः ।
जिनेश्वरं शुद्धमतिं यजेत प्राप्नोति शुद्धां मतिमेव ना सः ॥ ४९१ ॥

एक किया है समस्त अन्य पदार्थसमूह जानैं अरु धर्मचक्रका नेमिका धुरंधर ऐसा शुद्धिमति नामक जिनेंद्रनै जो पुरुष पूजै है, सो शुद्धिमति ही पावै है ॥ ४९१ ॥

ओं ह्रीं शुद्धमतये जिनायार्घम्।

संसारलक्ष्म्या अतिनश्वरायै जन्मर्क्षमुद्रामिव कुत्सयन्वा ।
भद्रा शिवश्रीरिति योगयुक्त्या श्रीभद्रमीशं रभसार्चयामि ॥ ४९२ ॥

अति विनाशीक संसारलक्ष्मीकी जन्मनक्षत्र मुद्रानैं निंदन करतो अरु मोक्षलक्ष्मीकी प्रशंसा करतो ऐसा योगकी युक्तितैं सार्थक श्रीभद्र तिननैं वेग करि पूजू हूं ॥ ४९२ ॥

ओं ह्रीं श्रीभद्रजिनाय अर्घम्।

अनंतवीर्यादिगुणप्रसन्नमात्मप्रभावानुभवैकगम्यं ।
अनंतवीर्यं जिनपं स्तवीमि यज्ञार्थभागैरुपलाल्यमानं ॥ ४९३ ॥

अनंतवीर्य आदि गुणसंयुक्त अरु आत्माका प्रभावरूप अनुभवहीके अद्वितीय गम्य अरु यज्ञनिमित्तकृत भागतैं सेवा-रूप भयो अनंत-वीर्य जिननैं स्तुति करूं हूं ॥ ४९३ ॥

ओं ह्रीं अनंतवीर्यजिनाय अर्घम् ।

पूर्वं विसर्पिण्यथ कालमध्ये संजातकल्याणपरंपराणाम् ।
संस्मृत्य सार्थं प्रगुणं जिनानां यज्ञेसमाहूय यजे समस्तान् ॥ ४९४ ॥

ऐसैं पूर्व विसर्पिणी काल मध्ये हुवा है कल्याण परंपरा जिनके ऐसे जिनेंद्रनका गुण-युक्त समूहनैं स्मरण करि अरु इस यज्ञमैं तिन समस्तननैं बुलाय पूजूं हूं ॥ ४९४ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठामहोत्सवे याज्ञमंडलेश्वरद्वितीयवलयोन्मुद्रितनिर्वाणाद्यनंतवीर्यान्तेभ्यो भूतजिनेभ्योऽर्घम् ॥

इस प्रतिष्ठा-उत्सवमैं यागमंडलका द्वितीय वलयमैं स्थापित भूतजिनेन्द्रकूं अर्घ देना ॥

अथ तृतीयवलयस्थापितवर्तमानजिनपूजा ।

अब तीसरा वलयमैं स्थापित वर्तमान जिनपूजा कहिये हैं:—

मनुनाभिमहीधरजातमभुवं मरुदेव्युदरावतरंतमहं ।
प्रणिपत्य शिरोभ्युदयाय यजे कृतमुख्यजिनं वृषभं वृषभं ॥ ४९५ ॥

बहुरि नाभि कुलकर पृथ्वीपतिका पुत्र अर मरुदेवी राणीका उदरमैं अवतार लियौ, अर यज्ञविधानमैं मुख्य, अर धर्म करि शोभायमान ऐसा वृषभनाथस्वामीन मस्तक नमाय पूजूं हूं ॥ ४९५ ॥

ओं ह्रीं ऋषभजिनायार्घम् ।

जितशत्रुगृहं परिभूषयितुं व्यवहारदिशा तनुभूप्रभवं ।

नयनिश्चयतः स्वयमेवभुवमजितं जिनमर्चतु यज्ञधर ॥ ४९६ ॥

जितशत्रु नामका राजाका गृहनें भूषित करिवेकूं व्यवहारनय करि पुत्र अर निश्चयनयतें स्वयं आप ही उत्पन्न भयो, ऐसा अजितनाथ-स्वामीनैं यज्ञको कर्ता पूजो ॥ ४९६ ॥

ओं ह्रीं अजितजिनाय अर्घम् ।

दृढराजसुवंशनभोमिहिरं त्रिजगत्रयभूषणमभ्युदयं ।
जिनसंभवमूर्ध्वगतिप्रदमर्चनया प्रणमामि पुरस्कृतया ॥ ४९७ ॥

दृढरथ राजाका वंशरूप आकाशमैं सूर्य समान अरु तीन जगतका भूषण अरु उदय-रूप अरु उर्ध्वगतिका दायक, ऐसा संभवनाथ जिननैं आगैं किई ऐसी पूजा करि प्रणाम करूं हूं ॥ ४९७ ॥

ओं ह्रीं संभवजिनाय अर्घम् ।

कपिकेतनमीश्वरमर्थयतो मृतिजन्मजरापदनोदयतः ।
भविकस्य महोत्सवसिद्धिमियादत एव यजे ह्यभिनंदनकं ॥ ४९८ ॥

कपिका है चिह्न जाकैं ऐसा ईश्वरनैं प्रार्थनावारा अरु मृत्यु-जन्म-जरातैं दूरि होवाहारा भव्यके महान उत्सवकी सिद्धि होय है यातैं अभिनंदनस्वामीनैं मैं पूजूं हूं ॥ ४९८ ॥

ओं ह्रीं अभिनंदनजिनाय अर्घं ।

सुमतिं श्रितमर्त्यमतिप्रकरार्पणतोऽर्थकराख्यमवाप्तशिवं ।
महयामि पितामहमेतदधिजगतीत्रयमूर्जितभक्तिनुतः ॥ ४९९ ॥

आश्रित प्राणीकूं बुद्धि प्रकर्षका देवातैं अर्थको करनेवारो अवाप्त हुवो है कल्याण जाकैं ऐसा सुमतिनाथ इस जगत्त्रयका प्रति पितामह-रूपनैं भक्तिभावतैं पूजू हूं ॥ ४९९ ॥

ओं ह्रीं सुमतिनाथजिनेंद्राय अर्घम् ।

धरणेशभवं भवभावमितं जलजप्रभमीश्वरमानमताम् ।
सुरसंपदियर्त्ति न केति यजे चरुदीपफलैः सुरवासभवैः ॥ ५०० ॥

धरणेश नाम राजाका पुत्र अरु संसार-भावनै प्राप्त अर रक्तकमल चिह्नका धारक ऐसा पद्मप्रभ जिनने पूजन करता पुरुषनकैं देवनकी संपदा कहा प्राप्त नहीं होय ? यातैं स्वर्गके चरु दीपक फलादि करि पूजूं हूं ॥ ५०० ॥

ओं ह्रीं पद्मप्रभजिनेंद्रायार्घम् ।

शुभपार्श्वजिनेश्वरपादभुवां रजसां श्रयतः कमलाततयः ।
कति नाम भवंति न यज्ञभुवि नयितुं महयामि महध्वनिभिः ॥ ५०१ ॥

इहां सुपार्श्व नाथ जिनका चरणसैं उत्पन्न रजनको आश्रय करनेवारेनकै कौनसी लक्ष्मीकी संतान नहीं होय है ? तातैं इस यज्ञ पृथ्वीमैं उत्सव शब्द करि प्राप्त होवेकूं पूजू हूं ॥ ५०१ ॥

ओं ह्रीं सुपार्श्वनाथजिनेंद्रायार्घम् ।

मनसा परिचिंत्य विधुः स्वरसात् मम कांतिहृतिर्जिनदेहघृणेः ।
इति पादभुवं श्रितवानिव तं जिनचंद्रपदांबुजमाश्रयत ॥ ५०२ ॥

चंद्र है सो निश्चयतैं अपना मन करि चिंतन करि कि म्हारा कांतिको हरण जिनेंद्रका देहकी किरणतैं है, याहीतैं ही चरण पीठमैं आश्रित होतो भयो ऐसा चंद्रप्रभजिनका चरणारविंदकूं आश्रय करो ॥ ५०२ ॥

ओं ह्रीं चंद्रप्रभजिनाय अर्घम् ।

सुमदंतजिनं नवमं सुविधीतिपराहमखंडमनंगहरं ।
शुचिदेहततिप्रसरं प्रणुतात् सलिलादिगणैर्यजतां विधिना ॥ ५०३ ॥

अखंड जैसैं होय तैसैं अनंग कामका हरणेवारा अरु सुविधि ये है दूसरा नाम जाका ऐसा पुष्पदंत नवमा जिनेंद्रनैं, सुंदर देहकी कांतिको प्रसार-वारानैं नमस्कार होहु। अर जलादि द्रव्यन करि विधिसंयुक्त यजन करो ॥ ५०३ ॥

ओं ह्रीं पुष्पदंतजिनाय अर्घम्।

.... ।

.... ॥ ५०४ ॥

अरु दशमा शीतलनाथ जिननैं पूजन करता प्राणीके धनधान्यकी समृद्धि है सो विस्तीर्णांतर होय है अरु हस्तगत होय लोटती फिरै है, यह मैंनैं विचार करि यज्ञमैं वेदमंत्रोच्चारण-पूर्वक पूजिये है ॥ ५०४ ॥

ओं ह्रीं शीतलजिनाय अर्घम्।

श्रेयोजिनस्य चरणौ परिधार्य चित्ते संसारपंचतयदुर्भ्रमणव्यपायः।
श्रेयोऽर्थिनां भवति तत्कृतये मयाऽपि संपूज्यते यजनसद्विधिषु प्रशस्य ॥ ५०५ ॥

श्रेयांसनाथका चरणनैं चित्तमैं विचारि करि कल्याणके अर्थीनकैं पंच प्रकार परावर्तनको दुर्भ्रमणको नाश होय है, ता कार्यके अर्थि मैं भी यज्ञविधिमैं प्रशंसा करि पूजूं हूं ॥ ५०५ ॥

ओं ह्रीं श्रेयोजिनाय अर्घम्।

इक्ष्वाकुवंशतिलको वसुपूज्यराजा यज्जन्मजातकविधौ हरिणार्चितोऽभूत्।
तद्वासुपूज्यजिनपार्चनया पुनीतः स्यामद्य तत्प्रतिकृतिं चरुभिर्यजामि ॥ ५०६ ॥

जाका जन्म होता ही इक्ष्वाकुवंशको तिलक वसुपूज्य नाम राजा इंद्र करि पूजित होत भयो अरु मैं वासुपूज्य जिनकी पूजा करि पवित्र होत हूं, अब याकी प्रतिमानैं चरु आदिसे पूजूं हूं ॥ ५०६ ॥

ओं ह्रीं वासुपूज्यजिनायार्घम्।

कांपिल्यनाथकृतवर्मगृहावतारं श्यामाजयाहजननीसुखदं नमामि ।
कोलध्वजं विमलमीश्वरमध्वरेऽस्मिन्नर्चे द्विरुक्तमलहापनकर्मसिद्ध्यै ॥ ५०७ ॥

कंपिलानगरीका नाथ कृतवर्मा नामक राजाकैं कियो है अवतार जानैं अरु श्यामा नाम माता तानैं सुखनैं देवावारो, कोल कहिये शूकर चिह्न-युक्त ऐसा विमल जिनेंद्रनैं या यज्ञमैं द्विप्रकार करि द्रव्यमल अरु भावमल कर्म ताका दूरि करवावारानैं कार्यकी सिद्धि अर्थि पूज हूं ॥ ५०७ ॥

ओं ह्रीं विमलनाथजिनयार्घम् ।

साकेतनायकनृपस्य च सिंहसेननाम्नस्तनूजममरार्चितपादपद्मं ।
संपूजयामि विविधार्हणया ह्यनंतनाथं चतुर्दशजिनं सलिलाक्षतौघैः ॥ ५०८ ॥

अयोध्या नगरीका नायक सिंहसेन नाम राजाका पुत्र अरु देवन करि पूजित चरण कमल जाका, ऐसा अनंतनाथ चतुर्दशम जिनेंद्रनैं जल चंदनादि नाना विध पूजन करि सम्यक् पूजूं हूं ॥ ५०८ ॥

ओं ह्रीं अनंतजिनायार्घम् ।

धर्मं द्विधोपदिशता सदसींद्रधार्ये किं किं न नाम जनताहितमन्त्रदर्शि ।
श्रीधर्मनाथ ! भवतेति सदर्थनाम तंत्राप्तयेऽर्वजविधिं पुरतः करोमि ॥ ५०९ ॥

दोय प्रकार श्रावक अर मुनिधर्मनैं समवशरण सभामैं उपदेश करता जिननैं कहा कहा प्राणीनका निश्चय करि नहीं दिखायो ? सो हे धर्मनाथ जिनेंद्र ! तुम सार्थकनाम हो अरु याही अर्थकी प्राप्तिके अर्थि तेरे अग्र पूजा विधिनैं करूं हूं ॥ ५०९ ॥

ओं ह्रीं धर्मनाथजिनायार्घम् ।

श्रीहस्तिनागपुरपालकविश्वसेनः स्वांके निवेश्य तनयामृतपुष्टितुष्टः
ऐराऽपि सा सुकुरुवंशनिधानभूमिर्यस्माद् बभूव जिनशांतिमिहाश्रयामि ॥ ५१० ॥

श्रीमान् हस्तिनागपुरको स्वामी विश्वसेन राजा अपना गोदमैं स्थापन करि पुत्रका अमृत पुष्टि करि तुष्ट हुवो अरु ऐसा नाम राखी भी कुरुवंशका निधानकी भूमि जातैं होती भई, ता शांतिनाथनैं मैं इहां आश्रित करूं हूं ॥ ५१० ॥

ओं ह्रीं शांतिजिनाय अघर्म्।

श्रीकुंथुनाथजिनजन्मनिषट्निकायजीवाः सुखं निरुपमं बुभुजुर्विशंकं।
किं नाम तत्स्मृतिनिराकुलमानसोऽहं भुंक्ष्वे न सत्त्वरमतोऽर्चनमारभेय ॥ ५११ ॥

श्रीमान् कुंथुनाथ जिनेंद्रका जन्ममैं छहकायके सर्वजीव सर्व ही सुखनैं निःशंक प्राप्त हुये तो ताका स्मरण करि निराकुलचित्तवारो मैं हूं सो क्यूं नहीं सुखभोगूंगो यातैं शीघ्र ही पूजन आरंभ करूं हूं ॥ ५११ ॥

ओं ह्रीं कुंथुनाथजिनायार्घम्।

सद्दर्शनप्लुतसुदर्शनभूपपुत्रं त्रैलोक्यजीववररक्षणहेतुमित्रम्।
श्रीमित्रसेनजननीखनिरत्नमर्चे श्रीपुष्पचिह्नमरनाथजिनेंद्रमर्थ्यम् ॥ ५१२ ॥

क्षायिक सम्यक्त्व करि पवित्र सुदर्शन राजाका पुत्र अरु तीनलोकका जीवांकी रक्षाका कारणभूत मित्र अरु मित्रसेना माता रूप खानि को रत्नभूत अरु पुष्पको है चिह्न जाकै अरु प्रार्थनीक अरनाथ जिनेंद्रने पूजूं हूं ॥ ५१२ ॥

ओं ह्रीं अरनाथजिनेंद्राय अर्घम्।

कुंभोद्भवं धरणिदुःखहरं प्रजावत्यानंदकारकमतंद्रमुनींद्रसेव्यं।
श्रीमल्लिनाथविभुमध्वरविघ्नशांत्यै संपूजये जलसुचंदनपुष्पदीपैः ॥ ५१३ ॥

कुंभराजासे उत्पन्न धरणिनाम माता तथा पृथ्वीका दुख हरवावारो तथा प्रजावतीकूं आनंदकरता अरु निरालस्य मुनींद्रकरि सेवनीक ऐसा मल्लिनाथ जिनने इस यज्ञका विघ्नकी शांति अर्थ जल चंदन पुष्प दीपनिकरि पूजूं हूं ॥ ५१३ ॥

ओं ह्रीं मल्लिजिनायार्घम्।

राजत्सुराजहरिवंशनभोविभास्वान् वप्रांबिकाप्रियसुतो मुनिसुव्रताख्यः ।
संपूज्यते शिवपथप्रतिपत्यहेतुर्यज्ञे मया विविधवस्तुभिरर्हणोऽस्मिन् ॥ ५१४ ॥

सुंदर है राजा जामें ऐसा हरिवंश रूप आकाशमें सूर्य समान अरु वप्रानाम माताका प्यारा पुत्र ऐसा मुनिसुव्रत जिनेंद्रने मोक्षमार्गकी प्राप्तिका कारण जानि मैने इस यज्ञमें नाना वस्तुनि करि संपूजिये है ॥ ५१४ ॥

ओं ह्रीं मुनिसुव्रतजिनाय अर्घम् ।

सन्मैथिलेशविजयाह्वगृहेऽवतीर्णं कल्याणपंचकसमर्चितपादपद्मं ।
धर्मांबुवाहपरिपोषितभव्यशस्यं नित्यं नमिं जिनवरं महसार्चयामि ॥ ५१५ ॥

मिथिला नगरीका विजय नाम राजाका गृहमें अवतार पायो अरु पंचकल्याणकरि पूजित है चरण जाका अरु धर्मरूपी मेघ करि पुष्ट किया है भव्यरूप धान्य जाने ऐसा नमिनाथ स्वामीने नित्य उत्साह करि पूजू हूं ॥ ५१५ ॥

ओं ह्रीं नमिनाथजिनेंद्रायार्घम् ।

द्वारावतीपतिसमुद्रजयेशमान्यं श्रीयादवेशबलकेशवपूजितांह्रिम् ।
शंखांकमंबुधरमेचकदेहमर्चे सद्ब्रह्मचारिगणनेमिजिनं जलाद्यैः ॥ ५१६ ॥

द्वारावती नगरीका पति समुद्रविजय राजा करि मान्या श्रीमान् यादववंशका स्वामी बल अरु नारायण करि पूजित है चरण जाका अरु शंख है चिन्ह जाकै अरु मेघ समान श्याम है देह जाका अरु महान् ब्रह्मचर्यधारीनमें प्रधान ऐसा नेमि जिनेंद्रन जलादि द्रव्यकरि पूजू हूं ॥ ५१६ ॥

ओं ह्रीं नेमिनाथजिनायार्घम् ।

काशीपुरीशनृपभूषणविश्वसेननेत्रप्रियं कमठशाठ्यविखंडनेनं ।
पद्माहिराजविबुधव्रजपूजनांकं वंदेऽर्चयामि शिरसा नतमौलिनीतः ॥ ५१७ ॥

काशीदेशमें वाराणसी नाम नगरीको स्वामी राजानिमें भूषण ऐसा विश्वसेन राजाको नेत्रप्रिय पुत्र अरु कमठ नाम वैरीको शठपणो कि मूढ़ पणो ताका खंडन करनेवारो अरु पद्मावती अर धरणेंद्र आदि देवनि करि पूजनका चिह्न प्राप्त ऐसा पार्श्व नाथ जिनेंद्रनै शिर करि वंदू हूं पूजू हूं ॥ ५१७ ॥

ओं ह्रीं पार्श्वजिनायार्घम् ।

सिद्धार्थभूपतिगणेन पुरस्क्रियायामानंदतांडवविधौ स्वजनुः शशंसे ।
श्रीश्रेणिकेन सदसि ध्रुवभूपदाप्त्यै यज्ञेऽर्चयामि वरवीरजिनेंद्रमस्मिन् ॥ ५१८ ॥

सिद्धार्थ नामा राजा प्रमुखनै अपनी सत्क्रियामै आनंद तांडव विषै अपना जन्म प्रशंसित किया अरु राजा श्रेणिकने समवसरण सभामें निश्चल पदकी प्राप्ति अर्थि, वीर जिनेंद्रनै इस यज्ञमें पूजू हूं ॥ ५१८ ॥

ओं ह्रीं वर्धमानजिनेंद्रायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

अत्राहूतसुपर्वपर्वनिकरे विंबप्रतिष्ठोत्सवे
संपूज्याश्चतुरुत्तरा जिनवरा विंशप्रमाः संप्रति ।
संजाग्रत्समयादयैकसुकृतानुद्धार्य मोक्षं गता-
स्तेऽत्रागत्य समस्तमध्वरकृतं गृह्णंतु पूजाविधिं ॥ ५१६ ॥

इहां आह्वान किये देवनिका निकाय विषै ऐसा विंबप्रतिष्ठाका उत्सवमें संपूजित चोवीस वर्तमान तीर्थंकर प्रगट है समय जिनका ऐसा दयाभाववारे सुकृत पुरुषनिकूं उद्धारि मोक्षप्राप्त भये ते सर्व इहां यज्ञकृत समस्त पूजाकी विधिनै ग्रहण करो ॥ ५१६ ॥

ओं ह्रीं यागमंडलमें मुख्य तीसरा वलय स्थापित चतुर्विंशति वर्तमान जिनके अर्थि पूजाका अर्घ देना ।

ओं ह्रीं अस्मिन् यागमंडले मखमुख्यार्चिततृतीयवलयोन्मुद्रितवर्तमानचतुर्विंशतिजिनेभ्यः पूर्णार्घम् ॥

अथ चतुर्थवलयस्थापितभविष्यज्जिनपूजा ।

अब चौथा वलयस्थापित भविष्यज्जिनपूजा कहिये है—

पद्मा चलेत्यंकनलुप्तिकामा जिनस्य पादावचलौ विचार्य ।
यत्पादपद्मे वसतिं चकार सोऽयं महापद्मजिनोऽर्च्यतेऽर्घैः ॥ ५२० ॥

बहुरि या लक्ष्मी चंचल है इस दोषकूं लुप्तकरनेकी वांछावारी जिनेंद्रका चरणाने अचल विचारि जिनका चरणारविंदामें निवास करती भई सो ये महापद्म जिनेंद्र मैं करि अर्घनकरि पूजिये है ॥ ५२० ॥

ओं ह्रीं महापद्मजिनायार्घम् ।

देवाश्चतुर्भेदनिकायभिन्नास्तेषां पदौ मूर्धनि संदधानः ।
तेनैव जातं सुरदेवनाम तमर्चये यज्ञविधौ जलाद्यैः ॥ ५२१ ॥

बहुरि देव च्यार निकाय करि भेद कूं प्राप्त भये हैं तिनके मस्तकमैं अपना चरणारविंदाने धारण करतो अर याही हेतुतैं सुरदेव ऐसा नाम हुआ ताकूं मैं यज्ञविधिमें जलादिकरि पूजूं हूं ॥ ५२१ ॥

ओं ह्रीं सुरप्रभजिनायार्घम् ।

सेवार्थमुत्प्रेक्ष्य न भूतिदाता कारुण्यबुद्ध्यैव ददाति लक्ष्मीम् ।
यतो जिनः सुप्रभुरायसार्थं नामार्चयेऽहं विधिनाध्वरीयैः ॥ ५२२ ॥

अरु जो प्राणीनिकी सेवामात्र प्रयोजन देखि करि संपदाको दाता नहीं है किंतु करुणाबुद्धि करि ही लक्ष्मीने देवै है । याही हेतु सुप्रभु ऐसा सार्थक नाम प्राप्त भया ताकूं यज्ञसंबंधी द्रव्यनिकरि मैं पूजूं हूं ॥ ५२२ ॥

ओं ह्रीं सुप्रभुजिनायार्घम् ।

न केनचित्पट्टविधायि मोक्षसाम्राज्यलक्ष्म्याः स्वयमेव लब्धं ।
स्वयंप्रभत्वं स्वयमेव जातं यस्यार्च्यते पादसरोजयुग्मं ॥ ५२३ ॥

अरु किसीने ही याके मोक्षसाम्राज्य लक्ष्मीको पट्ट नही बांध्यो, किंतु आपही लब्ध भयो है, याहो हेतु स्वयंप्रभपणो स्वतः ही जाकै भयो ताका चरणकमलको युग्म पूजिये है ॥ ५२३ ॥

ओं ह्रीं स्वयंप्रभदेवायार्घम् ।

सर्वं मनःकायवचःप्रहारे कर्मागसां शस्त्रमभूद् यतो यः ।
सर्वायुधाख्यामगमन्मयाद्य संपूज्यतेऽसौ क्रतुभागभाज्यैः ॥ ५२४ ॥

अरु जाका मनवचनकाय जो है ते कर्मरूप पापनका घातमें सर्वशस्त्र होतो भयो सो सर्वायुध नामने प्राप्त भयो जो यो सर्वायुध जिनेंद्र इस यज्ञमें यज्ञका भागनिकरि मैंने पूजिये है ॥ ५२४ ॥

ओं ह्रीं सर्वायुधदेवायार्घम् ।

कर्मद्विषां मूलमपास्य लब्धो जयोऽन्यमर्त्यैरपि योऽनवाप्यः ।
ततो जयाख्यामुपलभ्यमानो मयार्हणाभिः परिपूज्यतेऽसौ ॥ ५२५ ॥

अरु जो अन्यप्राणीनिकरि नहीं प्राप्त भयो ऐसो कर्मरूप वैरीनको मूलने दूर करि जयकूं प्राप्त भयो अरु तातें ही जयनामने प्राप्यमान हूवो सो पूज्य सामिग्री करि मैं पूजिये है ॥ ५२५ ॥

ओं ह्रीं जयदेवायार्घम् ।

आत्मप्रभावोदयनान्वितांतं लब्धोदयत्वादुदयप्रभाख्यां ।
समाप यस्मादपि सार्थकत्वात् कृतार्चनं तस्य कृती भवामि ॥ ५२६ ॥

अरु आत्माका प्रभावका उदयत निरंतर लब्धोदयपणातैं उदयप्रभ नाम पायो याहीतैं सार्थकपणातैं ताको पूजनकरि मैं पुण्यभागी हो हूं ॥ ५२६ ॥

ओं ह्रीं उदयप्रभजिनायार्घम्।

प्रभा मनीषा प्रकृतिर्मतिर्ज्ञाप्रभृत्युदीर्णैकफलेति मत्वा।
जाता प्रभादेव इति प्रशस्तिस्ततोऽर्चनातोहमपि प्रयामि ॥ ५२७ ॥

इहां प्रभा मनीषा प्रकृति मति अरु ज्ञा आदि शब्द एक उत्कृष्ट फल अर्थमें हैं। ऐसा मानि प्रभादेव ऐसी प्रशस्त ख्याति हुई जातैं मैं भी पूजन विधिकरि प्राप्त हूं ॥ ५२७ ॥

ओं ह्रीं प्रभादेवजिनायार्घम्।

उदंकदेव त्वयि भक्तिभोग्या घटी घटी सा न तदुच्यते हा।
त्वामेव लब्ध्वा जननं प्रयातं वरं यतस्त्वामहं महामि ॥ ५२८ ॥

हे उदंकदेव ! तिहारेविषैं भक्तिकरि भोगवे योग्य घटी है कहिये घडी है सो घटी नहीं अर्थात् निरर्थक नहीं, हा बडा खेद है कि कहिये है अरु तोने प्राप्त होय जो जन्म पायो सो वर है यातैं मैं तोकूं पूजित करूं हूं ॥ ५२८ ॥

ओं ह्रीं उदंकदेवजिनाय अर्घम्।

सुरासुरस्वांतगतभ्रमैकविध्वंसने प्रश्नकृतोपपत्त्या।
कीर्तिं ययौ प्रोष्ठिलमुख्यनामस्तवैर्निरुक्तोऽहमुदंचयामि ॥ ५२९ ॥

अरु प्रश्नकी उपपत्ति कहिये प्राप्ति करि सुरविद्याधरनिका मनमें प्राप्त भया भ्रमका विध्वंसमें कीर्तिने प्राप्त होत भयो अरु दूसरो प्रोष्ठिल नाम पायो आदि नामकी स्तुति करि निरुक्त कियो मैं पूजूं हूं ॥ ५२९ ॥

ओं ह्रीं प्रश्नकीर्तिजिनायार्घम्।

पापाश्रवाणां दलनाद् यशोभिर्व्यक्तेर्जयात् कीर्तिसमागमेन।

निरुक्तलक्ष्म्यै जयकीर्तिदेवं स्तवस्त्रजा नित्यमुपाचरामि ॥ ५३० ॥

पापाश्रवनका दलनतैं, यशका प्रगट होनातैं, जयतैं कीर्तिका समागमन करि निरुक्ति और लक्षण करि जयदेवकीर्ति नाम प्राप्त भया ता जिनेंद्रने नित्य स्तुतिमालाकरि सेवा करूं हूं ॥ ५३० ॥

ओं ह्री जयकीर्तिदेवायार्घम् ।

कैवल्यभानातिशये समग्रा बुद्धिप्रवृत्तिर्यत उत्तमार्था ।
तत्पूर्णबुद्धेश्चरणौ पवित्रावर्घ्येन यायज्मि भवप्रणष्ट्यै ॥ ५३१ ॥

जिस समय केवलज्ञान हुआ उस अतिशयमें समग्र बुद्धिकी प्रवृत्ति उत्तम प्रयोजनवारी होय है तातैं पूर्णबुद्धि नामक जिनेंद्रका पवित्र चरणनिकूं अर्घपाद्य करि संसारका नाश होने कूं पूजू हूं ॥ ५३१ ॥

ओं ह्री पूर्णबुद्धिजिनायार्घम् ।

क्रोधादयश्चात्मसपत्नभावं स्वधर्मनाशान्न जहत्युदीर्णा ।
तेषां हातिर्येन कृता स्वशक्तेस्तं निःकषायं प्रयजामि नित्यं ॥ ५३२ ॥

येह क्रोधादिकषाय आत्मीक धर्मका नाशतैं वैरीपणानैं उत्कट नहीं छोडे है अरु याने अपनी शक्तितैं तिन कषायनिका हनन किया सो निःकषाय नामक जिनने मैं पूजू हूं ॥ ५३२ ॥

ओं ह्रीं निःकषायजिनायार्घम् ।

मलव्यपायान्मननात्मलाभाद् यथार्थशब्दं विमलप्रभेति ।
लब्धं कृतौ स्वीयविशुद्धिकामाः संपूजयामस्तमनर्घ्यजातं ॥ ५३३ ॥

कर्मरूप मलका नाशतैं अरु मननकरि आत्मविशुद्धिका लाभतैं यथार्थ विमलप्रभ नाम लब्ध हुवा ताकूं इस यज्ञमें अपनी विशुद्धताके वांछक हम हैं ते अनर्घ्य जन्म ऐसा विमलप्रभने पूजैं हैं ॥ ५३३ ॥

ओं ह्रीं विमलप्रभदेवायार्घम् ।

भास्वद्गुणग्रामविभासनेन पौरस्त्यसंप्राप्तविभावितानं ।
संस्मृत्य कामं बहुलप्रभं तं समर्चये तद्गुणलुब्धिलुब्धः ॥ ५३४ ॥

देदीप्यमान गुणका प्रकाश करि अग्र प्राप्त भई प्रभाकी संतान जाकै ऐसा बहुलप्रभ नाम जिनेंद्रने अतिशय करि ताका गुणकी प्राप्तिमें लुब्ध हूवो मैं पूजू हूं ॥ ५३४ ॥

ओं ह्रीं बहुलप्रभदेवायार्घम् ।

नीराभ्ररत्नानि सुनिर्मलानि प्रवाद एषोऽनृतवादिनां वै ।
येन द्विधा कर्ममलो निरस्तः स निर्मलः पातु सदर्चितो माम् ॥ ५३५ ॥

जल आकाश रत्न ये निर्मल हैं, यो झूठो असत्य बोलने वारेनको प्रवाद है। अरु जानैं दोय प्रकार कर्ममल दूर किया सो निर्मल है। सो निर्मल जिन पूजन प्राप्त हुवो थको मेरी रक्षा करो ॥ ५३५ ॥

ओं ह्रीं निर्मलजिनायार्घम् ।

मनोवचःकायनियंत्रणेन चित्राऽस्ति गुप्तिर्यदवाप्तिपूर्तेः ।
तं चित्रगुप्ताह्वयमर्चयामि गुप्तिप्रशंसाप्तिरियं मम स्यात् ॥ ५३६ ॥

मन वचन काय इनका वश करिवा करि जाके गुप्ति पूर्ण होवातें चित्रगुप्ति नाम पाया ताहि मैं पूजू हूं। यातैं गुप्तिकी प्रशंसा प्राप्ति मेरे भी होउ ॥ ५३६ ॥

ओं ह्रीं चित्रगुप्तिजिनायार्घम् ।

अपारसंसारगतौ समाधिर्लब्धो न यस्माद् विहितः स येन ।
समाधिगुप्तिर्जिनमर्चयित्वा लभे समाधिं त्विति पूजयामि ॥ ५३७ ॥

या अपार संसारकी गतिमें समाधिमरण नही पाया अरु जानै सो समाधि पाया ता समाधिगुप्त जिनेंद्रने पूजिकरि मैं भी सपाधि पाऊं यानैं मैं पूजू हूं ॥ ५३७ ॥

ओं ह्रीं समाधिगुप्तिजिनायार्घम् ।

स्वयं विनाऽन्यस्य सुयोगमात्मस्वशक्तिमुद्भाव्य निजस्वरूपे ।
व्यक्तो बभूवेति जिनः स्वयंभूर्दध्यात् शिवं पूजनयानयार्च्यः ॥ ५३८ ॥

अरु जो अन्यका योग विना आपही अपनी शक्तिने प्रगट करि आपका स्वरूपमें प्रगट होतो भयो सो स्वयंभू जिन इस पूजाकरि पूजित भयो संतो मोक्षने देवो ॥ ५३८ ॥

ओं ह्रीं स्वयंभूजिनायार्घम् ।

कंदर्पनाम स्मरसद्भटस्य मुधैव नामेति तदर्दनोद्घः ।
प्रशस्तकंदर्प इयाय शक्तिं यतोऽर्चयेऽहं तदयोगबुद्ध्यै ॥ ५३९ ॥

कामरूप सुभटका कंदर्प नाम वृथा ही है क्यूंकि येह जिन ताका पीडनमें समर्थ प्रशस्त कंदर्प होय आत्मशक्तिने प्राप्त होतो भयो ताकूं मैं कंदर्पको अयोग हो ऐसी बुद्धि अर्थि पूजू हूं ॥ ५३९ ॥

ओं ह्रीं कंदर्पजिनायार्घम् ।

अनेकनामानि गुणैरनंतैर्जिनस्य बोध्यानि विचारवद्भिः ।
जयं तथा न्यासमथैकविंशमनागतं संप्रति पूजयामि ॥ ५४० ॥

जिनद्रका अनंत गुणनिकरि अनेक नाम ज्ञानी पुरुपने जानवे योग्य है, तातैं जयनाथ तथा न्यास नामक इकवीसमां अनागत जिनेंद्रने अवार पूजू हूं ॥ ५४० ॥

ओं ह्रीं जयनाथजिनायार्घम् ।

अभ्यर्हितात्मप्रगुणस्वभावं मलापहं श्रीविमलेशमीशं ।
पात्रे निधायार्घ्यमफल्गुशीलोद्धरप्रशक्त्यै जिनमर्चयामि ॥ ५४१ ॥

पूज्य आत्मगुणका स्वभावरूप अरु मलका दूरि करनेवारा अरु पूज्य ऐसा विमलेश जिनेंद्रनैं महान शीलका उद्धारकी शक्ति निमित्त अर्घने पात्रमैं स्थापि मैं पूजू हूं ॥ ५४१ ॥

ओं ह्रीं विमलजिनायार्घम् ।

अनेकभाषा जगती प्रसिद्धा परंतु दिव्यो ध्वनिरर्हतो वै ।
एवं निरूप्यात्मनि तत्त्वबुद्धिमभ्यर्चयामो जिनदिव्यवादं ॥ ५४२ ॥

इस जगतमें प्रसिद्ध अनेक भाषा हैं परंतु दिव्यभाषा अर्हतकी ही है। ऐसैं निरूपण करि आत्मामैं तत्त्वबुद्धि ऐसा दिव्यवाद जिनेंद्रनैं हम पूजे हैं ॥ ५४२ ॥

ओं ह्रीं दिव्यवादजिनायार्घम् ।

शक्तेरपारश्रित एव गीतस्तथापि तद्व्यक्तिमियर्ति लब्ध्या ।
अनंतवीर्यत्वमगाः सुयोगात्त्वामर्चये त्वत्पदघृष्टमूर्ध्ना ॥ ५४३ ॥

चैतन्यकी शक्ति पार रहित ही गाई हैं तथापि लब्धिकरि ता शक्तिकी व्यक्तिने प्राप्ति होय है। याकारण तू सुन्दर योगतैं अनंत शक्ति नै प्राप्त भयो यातैं तेरा चरणमें धर्यो मस्तक जाने ऐसो मैं पूजू हूं ॥ ५४३ ॥

ओं ह्रीं अनंतवीर्यजिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

काले भाविनि ये सुतीर्थधरणात् पूर्वं प्ररूप्यागमे
विख्याता निजकर्मसंततिमपाकृत्य स्फुरच्छक्तयः ।
तानत्र प्रतिकृत्यपावृतमखे संपूजिता भक्तितः

प्राप्ताशेषगुणास्तदीप्सितपदावाप्त्यै तु संतु श्रिये ॥ ५५४ ॥

ये भावी समयमैं तीर्थंकर गोत्रका धरिवातैं पूर्व आगममैं विख्यात है, अरु निजकर्मका संतानने दूरकरि प्रगट भई है शक्ति जिनकी ऐसै ते इहां बिंबका शुचियज्ञमें भक्तिकरि पूजित भया अरु प्राप्त भया है समग्र गुण जिनकै ऐसा जिनेंद्र अपना पद हमकूं देवा वस्तैं मोक्ष लक्ष्मीकी प्राप्ति अर्थ होऊ ॥ ५५४ ॥

ओं ह्रीं बिंबप्रतिष्ठोद्यापने मुख्यपूजार्हचतुर्थवलयोन्मुद्रितानागतचतुर्विंशतिमहापद्माद्यनंतवीर्यांतेभ्यो जिनेभ्यः पूर्णार्घम् ।

ओं ह्रीं बिंबप्रतिष्ठा उत्सवमें मुख्य पूजा योग्य अरु चतुर्थ बलयमें स्थापित अनागत चौवीस जिनेंद्रकूं अर्घ देना ॥

अथ पंचमवलयस्थापितविदेहजिनपूजा ।

अब पंचम वलयकी पूजा कहै है—

सीमंधरं मोक्षमहीनगर्याः श्रीहंसचित्तोदयभानुमंतं ।
यत्पुंडरीकाख्यपुरस्वजात्या पूतीकृतं तं महसार्चयामि ॥ ५५५ ॥

मोक्षपृथ्वीरूप नगरीका सीमाने धरणेवारो श्रीमन् हंसनाम राजाका चित्तरूप उदयाचल तामैं सूर्यसमान अरु जो अप्रान अरु जो अपना जन्मतैं पुंडरीक पुरनैं पवित्र करनेवारो ऐसा श्रीमंधर जिनेंद्रने पूजूं हूं ॥ ५५५ ॥

ओं ह्रीं सीमंधरजिनायार्घम् ।

युग्मंधरं धर्मनयप्रमाणवस्तुव्यवस्थादिषु युग्मवृत्तेः ।
संधारणात् श्रीरुहभूपजातं प्रणम्य पुष्पांजलिनार्चयामि ॥ ५५६ ॥

धर्म अरु नय अरु प्रमाण आदि वस्तुकी व्यवस्थादिमें युग्मताकी प्रवृत्ति है, अर्थात् धर्म मुनि श्रावक भेदतैं, नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदतैं, प्रमाण प्रत्यक्ष परोक्ष भेदतैं, वस्तु व्यवस्था स्वपर निमित्त भेदतैं, दोय दोय रूप वृत्तिका संधारणतैं युग्मंधर हुआ अरु श्रीरुह नाम राजातैं उत्पन्न हुवा ताकूं नमस्कार करि पुष्पांजलि करि पूजूं हूं ॥ ५५६ ॥

ओं ह्रीं युग्मंधरजिनायार्घम्।

सुग्रीवराजोद्भवमेणचिन्हं सुसीमपुर्यां विजयाप्रसूतं।
बाहुं त्रिलोकोद्धरणाय बाहुं मखे पवित्रेऽर्चितमर्घयामि ॥ ५४७ ॥

अरु सुग्रीव नाम राजातैं उत्पन्न अरु हरिणका चिह्नयुक्त अरु सुसीमा नगरीमें विजयानाम रानीका पुत्र अरु तीन लोकका उद्धार करनेमें बाहु समान ऐसा बाहु नामक तीर्थंकरने इस पवित्र यज्ञमैं अर्चितकूं अर्घ देवू हूं ॥ ५४७ ॥

ओं ह्रीं बाहुजिनायार्घं।

निःशल्यवंशाभ्रगभास्तिमंतं सुनंदया लालितमुग्रकीर्तिं।
अबंध्यदेशाधिपतिं सुबाहुं तोयादिभिः पूजितुमुत्सहेऽहं ॥ ५४८ ॥

अरु निःशल्य वंशरूप आकाशमें सूर्य समान, सुनंदामाता करि लडायो अरु प्रचंड कीर्तिधारी अरु अबंध्य नाम देशका स्वामी, ऐसा सुबाहु नाम तीर्थंकरकूं जलादि द्रव्यनिकरि पूजिवेकूं उत्साह करूं हूं ॥ ५४८ ॥

ओं ह्रीं सुबाहुजिनायार्घम्।

श्रीदेवसेनात्मजमर्यमांकं विदेहवर्षेप्यलकापुरिस्थं।
संजातकं पुण्यजनुर्धरत्वात् सार्थाख्यमर्चेऽत्र मखे जलाद्यैः ॥ ५४९ ॥

श्रीमान् देवसेनराजाका पुत्र अर सूर्यका चिह्नवारा विदेह क्षेत्रमें भी अलका पुरीको स्वामी अर पुण्य जन्मका धारणपनातैं सार्थक नामका धारक ऐसा संजातक स्वामीनैं जलादिक करि पूजू हूं ॥ ५४९ ॥

ओं ह्रीं संजातकजिनायार्घम्।

स्वयंकृतात्मप्रभवत्वहेतोः स्वयंप्रभुं सद्गृहदयस्वभूतं।
सन्मंगलापूःस्थमनुष्णकांतिचिन्हं यजामोऽत्र महोत्सवेषु ॥ ५५० ॥

अपना ही किया आत्मप्रभाव हेतुतैं स्वयंप्रभु कहिये स्वतंत्र प्रभु अर सत्पुरुषनका हृदयमें प्रगट अरु मंगला नगरीका पति अरु चंद्रमा है चिह्न जाके ऐसा स्वयंप्रभ तीर्थंकरने हम इहां महोत्सवमें पूजै है ॥ ५५० ॥

ओं ह्रीं स्वयंप्रभजिनायार्घम् ।

श्रीवीरसेनाप्रसवं सुसीमाधीशं सुराणामृषभाननं तं ।
ईशं सुसौभाग्यभुवं महेशमर्चे विशालैश्चरुभिर्नवीनैः ॥ ५५१ ॥

श्रीमान् वीरसेना नामक मातातैं उत्पन्न अर सुसीमा नगरीका स्वामी अर देवनिमें ईश्वर अर सौभाग्यकी खानि ऐसा ऋषभानन नामक महेशने मैं नवीन अर विशाल नैवेद्यनिकरि अचूं हूं ॥ ५५१ ॥

ओं ह्रीं ऋषभाननदेवायार्घम् ।

यस्यास्ति वीर्यस्य न पारमभ्रे तारागणस्येव नितांतरम्यं ।
अनंतवीर्यप्रभुमर्चयित्वा कृतीभवाम्यत्र मखे पवित्रे ॥ ५५२ ॥

अर जाका वीर्यको जैसे आकाशमें तारागणको पार नहीं है अर अतिशयकरि रमणीक ऐसा अनन्तवीर्य स्वामीने पूजिकरि इस पवित्र यज्ञमें कृतकृत्य होहूं ॥ ५५२ ॥

ओं ह्रीं अनंतवीर्यजिनायार्घम् ।

वृषांकमुच्चैश्चरणे विभाति यस्यापरस्ताद् वृषभूतिहेतुः ।
सूरिप्रभुं तं विधिना महामि वार्मुख्यतत्त्वैः शिवतत्त्वलब्ध्यै ॥ ५५३ ॥

जाका चरणमें बैलका चिन्ह उच्च प्रकार शोभित है, अग्रकालको धर्मकी विभूतिको कारण ऐसा सूरिप्रभ जिनेंद्रनैं जलादि द्रव्यनि करि मोक्ष तत्त्वकी प्राप्त्यर्थ पूजूं हूं ॥ ५५३ ॥

ओं ह्रीं सूरिप्रभजिनायार्घम् ।

वीर्येशभूमीरुहपुष्पमिंद्रसल्लांछनं पुंडरपूस्तिरीटं ।
विशालमीशं विजयाप्रसूतमर्चामि तद्ध्यानपरायणोऽहं ॥ ५५४ ॥

वीर्य नाम राजाका पुत्र अरु इंद्रको है चिह्न जाकै अरु पुंडरीकिणी नगरीका मुकुट अरु विशाल ईश अर विजयामाताका पुत्र ऐसा विशालप्रभ तीर्थंकरनै ताका ध्यानमै तत्पर हुआ मैं पूजू हूं ॥ ५५४ ॥

ओं ह्रीं विशालप्रभजिनायार्घम् ।

सरस्वतीपद्मरथांगजातं शंखांकमुच्चैः श्रियमीशितारं ।
संमान्य तं वज्रधरं जिनेंद्रं जलाक्षतैरर्चितमुत्करोमि ॥ ५५५ ॥

बहुरि सरस्वती नाम राणी अरु पद्मरथ नामक राजाका पुत्र अरु शंखका है चिन्ह जाकै अरु उच्च लक्ष्मीका स्वामी ऐसा वज्रधर जिनेंद्रने सन्मानकरि जल अक्षतनिकरि पूजित करू हूं ॥ ५५५ ॥

ओं ह्रीं वज्रधरजिनायार्घम् ।

वाल्मीकवंशांबुधिशीतरश्मिं दयावतीमातृकमंक्यगावं ।
सत्पुंडरीकिरायवनं जिनेंद्रं चंद्राननं पूजयताज्जलाद्यैः ॥ ५५६ ॥

वाल्मीकवंशरूपी समुद्रका वर्धनहेतु चंद्रमासमान अरु दयावती माताका पुत्र अरु गोका है अंक जाके अरु पुंडरीकिनी नगराका पालक, ऐसा चंद्रानन जिनेंद्रनें जलादिकरि पूजो ॥ ५५६ ॥

ओं ह्रीं चंद्राननजिनायार्घम् ।

श्रीरेणुकामातृकमब्जचिह्नं देवेशमुत्पुलमुदारभावं ।
श्रीचंद्रबाहुं जिनमर्चयामि कृतुप्रयोगे विधिना प्रणम्य ॥ ५५७ ॥

श्रीमती रेणुका है माता जाकी अरु कमलको है चिह्न जाके अरु उदारभाव युक्त सुंदर पुत्रवान् चंद्रबाहु देवेश जिनेंद्रनैं नमस्कारकरि विधिवत् यज्ञका प्रयोगमें पूजू हूं ॥ ५५७ ॥

ओं ह्रीं चंद्रबाहुजिनायार्घम् ।

भुजंगमं स्वीयभुजेन मोक्षपंथावरोहाद्धृतनामकीर्तिम् ।
महाबलक्ष्मापतिपुत्रमर्चे चंद्रांकयुक्तं महिमाविशालं ॥ ५५८ ॥

अपना भुज पराक्रमकरि मोक्षमार्गका अवरोहणतैं धारण कियो सार्थक नाम जानै, अरु महाबल राजाको पुत्र, अरु चंद्रमाको है अंक जाके महिमावान भुजंगमनाथ तीर्थंकरनैं पूजू हूं ॥ ५५८ ॥

ओं ह्रीं भुजंगमजिनायार्घम् ।

ज्वालाप्रसूर्येन सुशांतिमाप्ता कृतार्थतां वा गलसेनभूपः ।
सोऽयं सुसीमापतिरीश्वरो मे बोधिं ददातु त्रिजगद्विलासां ॥ ५५९ ॥

ज्वाला नाम माता याकरि शांतिनै प्राप्त भई संती कृतार्थताने प्राप्त हुई अथवा गलसेन राजा कृतार्थ हुवो सो यो सुसीमा नगरीको स्वामी ईश्वर नामक तीर्थंकर तीन जगतमें विस्तीर्ण असी ज्ञान लक्ष्मीकूं देवो ॥ ५५९ ॥

ओं ह्रीं ईश्वरजिनायार्घम् ।

नेमिप्रभं धर्मरथांगवाहे नेमिस्वरूपं तपनांकमीडे ।
वाश्चंदनैः शालिसुमप्रदीपैः धूपैः फलैश्चारुचरुप्रतानैः ॥ ५६० ॥

अरु धर्मरूप रथका चलावामें नेमिस्वरूप अरु सूर्यका चिह्नवान् असा नेमिप्रभ तीर्थंकरनैं जल चंदन तंदुल पुष्प दीप धूप फलनिकरि अरु सुंदर नैवेद्यकरि पूजू हूं ॥ ५६० ॥

ओं ह्रीं नेमिप्रभजिनायार्घम् ।

श्रीवीरसेनाप्रभवं प्रदुष्टकर्मारिसेनाकरिणे मृगेंद्रः।
यः पुंडरीशं जिनवीरसेनं सद्भूमिपालात्मजमर्चयामि ॥ ५६१ ॥

श्रीमती वीरसेनातैं उत्पन्न अरु दुष्ट कर्मरूप वैरीकी सेनारूप हाथीवास्तै मृगेंद्र-समान अरु पुंडरीक नगरीको स्वामी अरु समीचीन भूमिपाल राजाको पुत्र ऐसा वीरसेन जिनेंद्रनैं पूजू हूं ॥ ५६१ ॥

ओं ह्रीं वीरसेनजिनायार्घम्।

यो देवराजक्षितिपालवंशदिवामणिः पूर्विजयेश्वरोऽभूत्।
उमाप्रसूनो व्यवहारयुक्त्या श्रीमन्महाभद्र उदर्च्यतेऽसौ ॥ ५६२ ॥

जो देवराज राजाका वंशमें सूर्य समान अरु विजया नगरको स्वामी अरु उमा नाम माताते उत्पन्न व्यवहार नयकरि ऐसा यो श्रीमान् महाभद्र मैं करि पूजिये है ॥ ५६२ ॥

ओं ह्रीं महाभद्रजिनायार्घम्।

गंगाखनिस्फारमणिं सुसीमापुरीश्वरं वै स्तवभूतिपुत्रं।
स्वस्तिप्रदं देवयशोजिनेंद्रमर्चामि सत्स्वस्तिकलांछनीयं ॥ ५६३ ॥

गंगानाम मातारूप खानिको स्फुरायमान रत्नरूप अरु सुसीमा नगरीको ईश्वर अरु स्तवभूति राजाको पुत्र अरु कल्याण देनेवारो अरु समीचीन साथियाको चिह्नवारो ऐसा देवयशा नामक जिनेंद्रने मैं पूजू हूं ॥ ५६३ ॥

ओं ह्रीं देवयशोजिनायार्घम्।

कनकभूपतितोकमकोपकं कृततपश्चरणार्दितमोहकं।
अजितवीर्यजिनं सरसीरुहविशदचिन्हमहं परिपूजये ॥ ५६४ ॥

कनक राजाका पुत्र अरु नहीं है कोप जाकै अरु तपश्चरण करि पीडित किया है मोह जानै अरु कमलका है निर्मल चिह्न जाकै ऐसा अजितवीर्य जिनेंद्रने मैं पूजू हूं ॥ ५६४ ॥

ओं ह्रीं अजितवीर्यजिनायार्घम् ।

एवं पंचमकोष्ठपूजितजिनाः सर्वे विदेहोद्भवा
नित्यं ये स्थितिमादधुः प्रतिपतत्तन्नाममंत्रोत्तमाः ।
कस्मिंश्चित्समयेऽभ्रषट्विधुमितं पूर्णं जिनानां मतं
ते कुर्वंतु शिवात्मलाभमनिशं पूर्णार्घसंमानिताः ॥ ५६५ ॥

ऐसैं पंचम वलयमें पूजित जिन है ते सर्व ही विदेह क्षेत्रमें उत्पन्न है अर प्राप्त हुआ नाम सोही उत्तम मंत्ररूप अर कोई समयके विषै अभ्र कहिये शून्य, षट् कहिये छ अर विधु कहिये एक ऐसे १६० एक सो साठि होय हैं अर नित्यकालकी अपेक्षा बीस ही स्थिति धारण करै हैं ऐसे ते शिवस्वरूपनैं निरंतर पूर्णार्घकरि मान्या हुवा करो ॥ ५६५ ॥

ओं ह्रीं बिंबप्रतिष्ठाध्वरोद्यापने मुख्यपूजार्हपंचमवलयोन्मुद्रितविदेहक्षेत्रे सुषष्टिसहितैकशतजिनेशसंयुक्तनित्यविहरमाण-
विंशतिजिनेभ्यः पूर्णार्घं ॥

ओं ह्रीं बिंबप्रतिष्ठाका उत्सवमें पंचम वलयमें स्थापित विदेह क्षेत्रमें अवतार लेनेवाले जिनेंद्रनिको स्मरणकरि पूर्णार्घ देना ॥

अथ षष्ठवलयस्थापिताचार्यगुणपूजा ।

अब षष्ठ वलयमें स्थापित आचार्य परमेष्ठीका छह त्रिंशत् गुण अपेक्षा अर्घ छत्तीस है सो ही कहिये है—

मोहात्ययादाप्तदृशोः स पंचविंशातिचारत्यजनादवाप्तां ।
सम्यक्त्वशुद्धिं प्रतिरक्षतोऽर्चे आचार्यवर्यान् निजभावशुद्धान् ॥ ५६६ ॥

बहुरि मोहका नाशतैं प्राप्त भया सम्यग्दर्शनके पचीस अतीचारका त्यागतैं प्राप्त भई सम्यक्त्वकी शुद्धि ताहि रक्षा करनेवारे अर निज-भावकरि शुद्ध असे आचार्य परमेष्ठीनि मैं पूजू हूं ॥ ५६६ ॥

ओं ह्रीं दर्शनाचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

विपर्ययादिप्रहृतेः पदार्थज्ञानं समासाद्य परात्मनिष्ठं ।

दृढ़प्रतीतिं दधतो मुनींद्रानर्चे स्पृहाध्वंसनपूर्णहर्षान् ॥ ५६७ ॥

संशय विपर्यय अनध्यवसायका नाशतैं आत्म अर परपदार्थमें स्थित ऐसा पदार्थज्ञाननैं प्राप्त होय आप्तागम पदार्थनिकी दृढ़ प्रतीतिने धारते अर वांछाका अभावकरि पूर्णमुक्त ऐसा आचार्य मुनींद्रने मैं पूजू हूं ॥ ५६७ ॥

ओं ह्रीं ज्ञानाचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

आत्मस्वभावे स्थितिमादधानांश्चारित्रचारुव्रतधौर्यधर्तॄन् ।

द्विधा चरित्राद्चलत्वमाप्तानार्यान् यजे सद्गुणरत्नभूषान् ॥ ५६८ ॥

अर आत्मीक स्वभावमें तिष्ठनवारे अर चारित्रकरि सुंदर महाव्रतके धारी अर दोय प्रकार चारित्रतें अचल अर सुंदर गुणके भूषण ऐसे आचार्यनै मैं पूजू हूं ॥ ५६८ ॥

ओं ह्रीं चारित्राचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

बाह्यांतरद्वैधतपोऽभियुक्तान् सुदर्शनाद्रिं-हसतोऽचलत्वात् ।

गाढावरोहात्मसुखस्वभावान् यजामि भक्त्या मुनिसंघपूज्यान् ॥ ५६९ ॥

अर बाह्य अर अभ्यंतर द्विप्रकार तपका योगमैं सुमेरु पर्वतनै अचलपणामैं हराते अर अवगाढ सम्यक्त्वरूप सुखस्वभावका धारी ऐसे मुनिसमूहमें पूज्य आचार्य परमेष्ठीकूं मैं पूजू हूं ॥ ५६९ ॥

ओं ह्रीं तपआचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

स्वात्मानुभावोद्भटवीर्यशक्तिदृढाभियोगावनतः प्रशक्तान् ।

परीषहापीडनदुष्टदोषागतौ स्ववीर्यप्रवणान् यजेऽहं ॥ ५७० ॥

अपना आत्माका प्रभाव करि उद्भट जो वीर्य शक्ति ताका योगका रक्षणमैं सावधान अर परिषहनिके आपीडन अर दुष्ट कहिये खोटे प्राणी नर तिर्य च देव इनिका आगमनमें अपना पराक्रममें प्रवीण असे आचार्यनिनै मैं पूजू हूं ॥ ५७० ॥

ओं ह्रीं वीर्याचारसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घ।

चतुर्विधाहारविमोचनेन द्वित्र्यादिघस्त्रेषु तृषाक्षुधादेः।
अम्लानभावं दधतस्तपस्थानर्चामि यज्ञे प्रवरावतारान् ॥ ५७१ ॥

खाद्य स्वाद्य लेह्य पेय च्यार प्रकार आहारका छोडना करि दोय तीन च्यार पक्ष मास आदि दिनमैं तृषा क्षुधादिकतैं नहीं मलीनताकूं धारते अर तपमैं तिष्ठते अर उत्कृष्ट जन्मयुक्त असे आचार्यनिनै मैं पूजू हूं ॥ ५७१ ॥

ओं ह्रीं अनशनतपोयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं।

त्रिभागभोज्ये क्षितिवेदवह्निग्रासाशने तुष्टिमतो मुनींद्रान्।
ध्यानावधानाद्यभिवृद्धिपुष्टान् निद्रालसौ जतुमितान् यजामि ॥ ५७२ ॥

अर तीनभागमात्र भोजनमें भी एक च्यारि तीन आदि ग्रासमात्र भोजनमें अपना संतोष धारते अर ध्यानकी सावधानी आदिकी वृद्धिकरि पुष्ट अर निद्रा अर आलस्यकूं जीतनेकूं समर्थ असे मुनींद्र आचार्य तिननैं मैं पूजू हूं ॥ ५७२ ॥

ओं ह्रीं अवमोदर्यतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम्।

शृंगाग्रलग्नं वसनं नवीनं रक्तं निरीक्ष्यैव भुजिं करिष्ये।
इत्यादिवृत्तौ निरतानलक्ष्यभावान् मुनींद्रानहमर्चयामि ॥ ५७३ ॥

गौका शृंगामें लगा लाल वस्त्रनैं देखूं तब भोजन करूं इत्यादि अटपटी वृत्तिमें प्रवीण अर अलक्षित है अभिप्राय जिनका असा मुनींद्रनैं मैं पूजू हूं ॥ ५७३ ॥

ओं ह्रीं वृत्तिपरिसंख्यातपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम्।

मिष्टाज्यदुग्धादिरसापवृत्तेः परस्य लक्ष्येऽप्यवभासनेन ।
त्यागे मुदं चेष्टितमत्ययोगाद् धर्तॄन् गणेशाधिपतीन् यजामि ॥ ५७४ ॥

मिष्ट लवण दुग्ध घृत आदि रसका निंत्य पलटावकरि वर्तनेतैं अरु परका लक्ष्यमें भी नहीं भासवनेतैं त्यागभागमें आनंद जो है ताहि चेष्टा करि भी नहीं जतावनेतैं धारण करते असा आचार्यनिनैं पूजू हूं ॥ ५७४ ॥

ओं ह्रीं रसपरित्यागतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

दरीषु भूध्रोपरिषु श्मशाने दुर्गे स्थले शून्यगृहावलीषु ।
शय्यासने योग्यदृढासनेन संधार्यमाणान् परिपूजयामि ॥ ५७५ ॥

अर पर्वतनिके दराडनिमें तथा पर्वतका मस्तकनिमें तथा श्मशानमैं तथा अन्य विकटस्थलमैं तथा शून्य गृहपंक्तिमें योग्य गाढा आसन करि शय्या आसन जो है तिननें धारण करते आचार्य परमेष्ठीनिनै मैं पूजू हूं ॥ ५७५ ॥

ओं ह्रीं विविक्तशय्यासनतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घं ।

ग्रीष्मे महीध्रे सरितां तटेषु शरत्सु वर्षासु चतुष्पथेषु ।
योगं दधानान् तनुकष्टदाने प्रीतान् मुनींद्रान् चरुभिः प्रणामि ॥ ५७६ ॥

ग्रीष्मऋतुमें पर्वतनिका उपरिम भागमें अर शरत् कालमें नदीनका तटमें अरु वर्षामें चौहटामैं योगनैं धारण करता असे शरीरका कष्टका देनेमें प्रसन्न मुनींद्र आचार्यनिनै नैवेद्यनि करि तर्पण करू हूं ॥ ५७६ ॥

ओं ह्रीं कायक्लेशतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

संभाव्य दोषाननुतयं गुरुभ्य आलोचनापूर्वमहर्निशं ये ।
तच्छुद्धिमात्रे निपुणा यतीशा संतर्पदानेन मुदंचितारः ॥ ५७७ ॥

दोष लाग्या होय ताके समान ही यथावत् आलोचना पूर्व गुरुनतैं संभावना करिक रात्रि दिन जे वा दोषाकी शुद्धि करै हैं वे यतीश आचार्य अर्घका देवा करि मेरे अर्थि प्रसन्न होहु ॥ ५७७ ॥

ओं ह्रीं प्रायश्चित्ततपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

सद्दर्शनज्ञानचरित्ररूपप्रभेदतश्चात्मगुणेषु पंच–
पूज्येष्वशल्यं विनयं दधानाः मां पांतु यज्ञेऽर्चनया पटिष्ठाः ॥ ५७८ ॥

दर्शन ज्ञान चारित्र प्ररूपित भेदतैं आत्म गुणानिविषै पंचपरमेष्ठीनिमैं निःकपट विनय धारते अर प्रवीण आचार्य हैं ते इस यज्ञमें पूजन-क्रिया करि मोनैं रक्षा करो ॥ ५७८ ॥

ओं ह्रीं विनयतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

दिक्संख्यसंघे खलु वातपित्तकफादिरोगक्रमजार्तिसंधौ ।
दयार्द्रचित्तान्मुनिवैयगितज्ञांस्तद्दुःखहंतृनहमाश्रयामि ॥ ५७९ ॥

दश प्रकार संघमें आचार्य उपाध्याय तपस्वी शक्ष्य ग्लानादि मुनीनमैं वात पित्त कफ आदि रोग तथा खेदसे उत्पन्न पीडाका संबंधने होता संता दया करि भीनै है चित्त जिनका अरु मुनीका मनोनिवासी दुःखने जाननेवारे अर तिनका यथोपचार दुःखने दूरि करवेवारे आचार्य परमेष्ठीने मैं आश्रय करू हूं ॥ ५७९ ॥

ओं ह्रीं वैयावृत्त्यतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घ ।

श्रुतस्य बोधं स्वपरार्थयोर्वा स्वाध्याययोगादवभासमानान् ।
आम्नायपृच्छादिषु दत्तचित्तान् संपूजयामोऽर्घविधानमुख्यैः ॥ ५८० ॥

शास्त्रका अर्थकूं आप वा परके अर्थि स्वाध्यायका योगतैं प्रकाशमान करते अर आम्नाय प्रश्न आदिमें दियो है चित्त जिनने, अैसे आचार्यनिनै हम अर्घ आदि विधान करि पूजै हैं ॥ ५८० ॥

ओं ह्रीं स्वाध्यायतपोभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

विनश्वरे देहकृते ममत्वत्यागेन कायोत्सृजतोपि पद्मा-
सनादियोगानवधार्य चात्मसंपत्सु संस्थानहमंचयामि ॥ ५८१ ॥

देहकृत विनश्वर भावमें ममताका त्यागतैं कायाका छोडवावारे भी पद्मासन आदि योगनैं अवधारित करि आत्मस्वरूप संपदामैं तिष्ठनेवारे आचार्यनिनैं मैं पूजू हूं ॥ ५८१ ॥

ओं ह्रीं व्युत्सर्गतपोऽभियुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घं।

येषां मनोऽहर्निशमार्त्तरौद्रभूमेरनंगीकरणाद्धि धर्म्ये।
शुक्लोपकंठे परिवर्त्तमानं तानाश्रये विंबविधानयज्ञे ॥ ५८२ ॥

अर जिनको मन रात्रिदिन आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यानरूप भूमिकाका नहीं अंगीकार करनेतैं धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यानका दोन्यू पादमैं वत है तिन आचार्यनिनैं विंबप्रतिष्ठाका यज्ञमैं आश्रय करू हूं ॥ ५८२ ॥

ओं ह्रीं ध्यानावलंबननिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम्।

येषां भ्रुवः क्षेपणमात्रतोऽपि शक्रस्य शक्रत्वविघातनं स्यात्।
एवंविधा अप्युदितक्रुधार्तौ क्षमां भजंते ननु तान् महामि ॥ ५८३ ॥

बहुरि जिनका भंवराका पटकवा मात्रतें ही इंद्रका इंद्रपणा विगड़ जाय ऐसे शक्तिसंपन्न भी प्राप्त भई क्रोधरूप आर्ति में क्षमाधारै हैं तिनने मैं पूजू हूं ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमापरमधर्मधारकाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घं।

न जातिलाभैश्यविदंगरूपमदाः कदाचिज्जननं प्रयांति।
येषां मृदिम्ना गुरुणार्द्रचित्तास्ते दद्युरीशाः स्तवनाच्छिवं मे ॥ ५८४ ॥

अर जिनके जातिलाभ ऐश्वर्य विद्या शरीर रूप आदिका मद कदाचित भी उत्पन्न नहीं होय है अर बहुत मृदुभावले आवे हैं चित्त जिनके ते ईश समर्थ आचार्य हैं ते स्तवनतैं कल्याण मेरे अर्थि देवो ॥ ५८४ ॥

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मधुरंधराचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घं।

सर्वत्र निश्छद्मदशासु वल्लीप्रतानमारोहति चित्तभूमौ।
तपोयमोद्भूतफलैरवंध्या शाम्यांबुसिक्ता तु नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ ५८५ ॥

सर्वत्र अवस्थामैं धर्मरूपी वेल निःकपट दशामैं चित्तरूप भूमिमैं विस्तारने प्राप्त होय है अरु तप संयमतैं उत्पन्न स्वर्गमोक्षफलनिकरि अवंध्य कहिये सफल अरु शमभावरूपी जलकरि सींची गई तिन आचार्यनिके अर्थि नमस्कार होहु ॥ ५८५ ॥

ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मपरिपुष्टाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

भाषासमित्या भयलोभमोहमूलंकषत्वादनुभूतया च।
हितं मितं भाषयतां मुनीनां पादारविंदद्वयमर्चयामि ॥ ५८६ ॥

अरु भय लोभ मोहका मूल विघाततैं अनुभव प्राप्त भई भाषासमिति करि हित मित भाषण करनेवारे मुनीनका चरणारविंदका द्वयनैं मैं पूजूं हूं ॥ ५८६ ॥

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मप्रतिष्ठिताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

न लोभरक्षोऽभ्युदयो न तृष्णागृद्धी पिशाच्यौ सविधं सदेतः।
तस्मात् शुचित्वात्मविभा चकास्ति येषां तु पादस्थलमर्चयेऽहं ॥ ५८७ ॥

अरु जिनके लोभरूपी राक्षसको उदय नहीं है, अरु सदा तृष्णा अर गृद्धिरूपी पिशाची समीप नहीं प्राप्त होय है तातैं शुचित्वपणाकी आत्मकांति शोभित होय है तिनका पादस्थलनैं मैं पूजूं हूं ॥ ५८७ ॥

ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मधारकाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम्।

मनोवचःकायभिदानुमोदादिभंगतश्चेंद्रियजंतुरक्षा।
वर्वर्ति सत्संयमबुद्धिधीरास्तेषां सपर्याविधिमाचरामि ॥ ५८८ ॥

अर जिनके मन वचन कायाका भेदतें तथा अनुमोदनादि भंगतें इंद्रियरक्षा अरु प्राणिरक्षा व्रत है अरु समीचीन संयम बुद्धिनें धीर हैं तिनकी पूजाकी विधिनें मैं आचरूं हूं ॥ ५८८ ॥

ओं ह्रीं उत्तमद्विविधसंयमपात्राचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घ्यम्।

तपोविभूषा हृदयं बिभर्ति येषां महाघोरतपोगुणाढ्याः।
ईंद्रादिधैर्यच्यवनं स्वतस्त्यं तया युता एव शिवैषिणः स्युः ॥ ५८९ ॥

अरु जिनके तपरूपी भूषण है सो हृदयनै पुष्टकरै है अर जे महान घोर तप गुणामें अग्रगण्य हैं, अर जिनके तपविभूषणकरि इंद्रादिके धैर्य च्युति स्वतै ही होय ताकरि युक्त आचार्य ही मोक्ष मार्गके अभिलाषी होय हैं ॥ ५८९ ॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोऽतिशयधर्मसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घ्यम्।

समस्तजंतुष्वभयं परार्थसंपत्करी ज्ञानसुदत्तिरिष्टा।
धर्मौषधीशा अपि ते मुनीशास्त्यागेश्वरा द्रांतु मनोमलानि ॥ ५९० ॥

अरु समस्त प्राणीमात्रमें अभयदान है, अरु ज्ञानदान भी परका अर्थि संपत्ति करनेवारा होय है, अरु धर्मरूप औषधका स्वामी ऐसे आचार्य हैं ते त्यागभावनाके स्वामी मेरा मनका मलकूं दूरिकरो ॥ ५९० ॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मप्रवीणाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घ्यम्।

आत्मस्वभावादपरे पदार्था न मेऽथवाऽहं न परस्य बुद्धिः।
येषामिति प्राणयति प्रमाणं तेषां पदार्चां करवाणि नित्यं ॥ ५९१ ॥

अर आत्मगुणतैं अन्य पदार्थ हैं ते मेरे नाहीं अथवा मैं उनका नाहीं, ऐसी बुद्धि जिनकी ममाणनै प्रतीति करै है तिनका चरणारविंद-की पूजा मैं करू हूं ॥ ५९१ ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

रंभोर्वशी यन्मनसोविकारं कर्तुं न शक्ताऽत्मगुणानुभावान् ।
शीलेशतामादधुरुत्तमार्थी यजामि तानार्यवरान् मुनींद्रान् ॥ ५९२ ॥

अर रंभा तथा उर्वशी देवनिकी नृत्यकारिणी जिनका मनका विकारकूं करनेकूं आत्मगुणका प्रभावतें समर्थ नाहीं है ते शीलका स्वामीपणाने धारण करे है तिन उत्तमार्थ आचार्य मुनींद्रने मैं पूजू हूं ॥ ५९२ ॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यमहानुभावधर्ममहनीयाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

संरोधनान्मानसभंगवृत्तेः विकल्पसंकल्पपरिक्षयाच्च ।
शुद्धोपयोगं भजतां मुनीनां गुप्तिं प्रशंस्याल यजामहे तान् ॥ ५९३ ॥

मनसंबंधी विभंगवृत्तिका संरोधनकरि संकल्प विकल्पका क्षयतैं शुद्धोपयोगने भजनेवारे मुनीनिकी मनोगुप्तिकी प्रशंसा करि तिनि आचार्यनिने मैं पूजू हूं ॥ ५९३ ॥

ओं ह्रीं मनोगुप्तिसंपन्नाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

धर्मोपदेशात्तदृते कथाया अभाषणात् संभ्रमतादिदोषैः ।
वियोजनाद् ध्यानसुधैकपानाद् गुप्तिं वचोगामटितान् यजामि ॥ ५९४ ॥

धर्मोपदेश विना अन्य कथामात्रका अभाषणतें तथा भ्रमादिता आदि दोषनिकरि वियुक्त होनेतैं ध्यानरूपी अमृतपानका होवातें वचन गुप्तिने प्राप्त भये तिनैं मैं पूजू हूं ॥ ५९४ ॥

ओं ह्रीं वचनगुप्तिधारकाचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घं

वन्याः समिद्धीरचितां दृषत्सूत्कीर्णामिवांगप्रतिमां निरीक्ष्य ।
कंडूतिनांगानि लिहंति येषां धाराग्रमर्घेण यजामि सम्यक् ॥ ५६५ ॥

वनमें भये पशु हरिणादिक जे हैं ते काष्ठकरि रचित तथा पाषाणमैं उकीरी ही है ऐसी जिनकी पद्मासनादि प्रतिमानै देखि खुजावने सहित अंगनिकूं चाटै हैं, तिन आचार्यनिकी अग्रभूमिनै मैं अर्घ करि पूजूं हूं ॥ ५६५ ॥

ओं ह्रीं कायगुप्तिसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

सामायिकं जाहति नोपदिष्टं त्रिकालजातं ननु सर्वकाले ।
रागक्रुधोर्मूलनिवारणेन यजामि चावश्यककर्मधातॄन् ॥ ५६६ ॥

जो गुरु परंपरा उपदिष्ट सामायिक पाठनै त्रिकाल सर्वकालमैं नहीं छोडे है। अरु रागद्वेषको मूलका निवारण पूर्वक आवश्यक कर्मनै धारण करते आचार्यनिनै मैं पूजूं हूं ॥ ५६६ ॥

ओं ह्रीं सामायिकावश्यककर्मधारिभ्य आचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

सिद्धश्रुतिं देवगुरुश्रुतानां स्मृतिं विधायापि परोक्षजातं ।
सद्वंदनं नित्यमपार्थहानं कुर्वंति तेषां चरणौ यजामि ॥ ५६७ ॥

अरु सिद्धनिको स्मरण तथा देव गुरु शास्त्रनिको स्मरण करिके परोक्ष वंदना नित्य करै है गुणसंयुक्त तिनका चरणनिनै मैं पूजूं हूं ॥ ५६७ ॥

ओं ह्रीं वंदनावश्यकनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

तेषां गुणानां स्तवनं मुनींद्रा वचोभिरुद्धूतमनोमलांकैः ।
कुर्वंति चावश्यकमेव यस्मात् पुष्पांजलिं तत्पुरतः क्षिपामि ॥ ५६८ ॥

मुनीन्द्र हैं ते तिन सिद्धदेवादिकनिका गुणांकी स्तुति निर्मल वचननिकरि करै है, ता आवश्यकनै धारै है तिनके अग्र पुष्पांजलिनै मैं क्षेपं हूं ॥ ५९८ ॥

ओं ह्रीं स्तवनावश्यकसंयुक्ताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

मलोत्सृजादौ क्वचनाप्तदोषं प्रतिक्रमेणापनुदंति वृद्धं ।

साधुं समुद्दिश्य निशादिवीयदोषान् जहत्यर्च्चनया धिनोमि ॥ ५९९ ॥

मलोत्सर्गादिकमैं कोई समय प्राप्त भया दोषनै प्रतिक्रमण करि दूरि करै हैं, अर वृद्ध साधुनै उद्देश करि रात्रि दिन संबंधी दोषनै त्यागै हैं तिनकूं पूजन विधि करि प्रसन्न करूं हूं ॥ ५९९ ॥

ओं ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

स्वो नाम चात्माऽध्ययते यदर्थः स्वाध्याययुक्तो निजभानुवुद्धः ।

श्रुतस्य चिंताऽपि तदर्थवुद्धिस्तामाश्रये स्वाभिमतार्थसिद्ध्यै ॥ ६०० ॥

स्व नाम आत्माका है सो ध्याइये जामें सो स्वाध्याय है ऐसा निजज्ञान बुद्ध सर्वज्ञनै निरुक्त किया है, अर शास्त्रका चितवन भी ताके अर्थि है यातैं स्वाध्यायवुद्धिवारनिनै अपना हितकी सिद्धिके अर्थि आश्रय करूं हूं ॥ ६०० ॥

ओं ह्रीं स्वाध्यायावश्यककर्मनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

भुजप्रलंबादिविधिज्ञतायाः पौरस्त्यमाप्याधिगमं वहंतः ।

व्युत्सर्गमात्रा वशिनः कृतार्था अस्मिन् मखे यांतु विधिज्ञपूजां ॥ ६०१ ॥

भुजप्रलंबन आदि विधिका जाननका अग्रेसरतानै प्राप्त होय ज्ञाननै धारते अरु कायोत्सर्गपात्रके वशीभूत अरु कृतार्थ ऐसे आचार्य इस यज्ञमैं विधिज्ञ पूजानै प्राप्त होउ ॥ ६०१ ॥

ओं ह्रीं व्युत्सर्गावश्यकनिरताचार्यपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

गुणोद्देशादेषा प्रणिधिवशतोऽनंतगुणिनां

कृता ह्याचार्याणामपचितिरियं भावबहुला ।

समस्तान् संस्मृत्य श्रमणमुकुटानर्घमलघु

प्रपूर्त्तं संदृब्धं मम मखविधिं पूरयतु वै ॥ ६०२ ॥

सर्व गुणनिका उद्देशतैं अरु अध्यवसायके वशतैं या अनंत गुणयुक्त आचार्यनिकी किई पूजा है सो बहुभाव संयुक्त हुई संती समस्त मुनिनिमैं मुकुट समान आचार्यनिकूं स्मरण करि यो परिपूर्ण अर्घ रच्यो संतो मेरा यज्ञकी विधिनै पूर्ण करो ॥ ६०२ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् प्रतिष्ठोद्यापने दृजार्हमुख्यषष्ठवलयोन्मुद्रित आचार्यपरमेष्ठिभ्यस्तद्गुणेभ्यश्च पूर्णार्घम् ।

ओं ह्रीं ऐसैं प्रतिष्ठाके उत्सवमैं छटूठा वलयमैं स्थापित आचार्य परमेष्ठीकूं अर उनके गुणकूं अर्घ देना ।

अथ सप्तमवलयस्थापितोपाध्यायगुणपूजाप्रारंभः ।

कोष्ठाः पंचविंशतिः २५ । तथाहि—

अब सप्तम वलयमैं स्थापित उपाध्याय परमेष्ठी तिनका श्रुताश्रित अर्घ २५ पचीस हैं सो ऐसे—

आचारांगं प्रथमं सागारमुनीशचरणभेदकथं ।

अष्टादशसहस्रपदं यजामि सर्वोपकारसिद्ध्यर्थं ॥ ६०३ ॥

प्रथम श्रावकनिका आचरणका भेदनै कहनेवारो अरु अट्ठारह हजार पदयुक्त आचारांगनै सर्व उपकारकी सिद्धि अर्थ मैं पूजू हूं ॥६०३॥

ओं ह्रीं अष्टादशसहस्रपदकाचारांगाय अर्घम् ।

सूत्रकृतांगं द्वितयं षट्त्रिंशत्सहस्रपदकृतमहितं ।

स्वपरसमयविधानं पाठकपठितं यजामि पूजार्हं ॥ ६०४ ॥

छत्तीस हजार पदसंयुक्त अरु स्वसमय परसमयका भेदवारा उपाध्यायनि करि पठित अरु पूजाके योग्य ऐसा दूसरा सूत्रकृत नाम अंग जो है ताहि मैं पूजू हूं ॥ ६०४ ॥

ओं ह्रीं षट्त्रिंशत्सहस्रपदसंयुक्तसूत्रकृतांगायार्घम् ।

स्थानांगं द्विकचत्वारिंशत्पदकं षडर्थदशसरणेः ।

एकादिसुभेदयुजः कथकं परिपूजये वसुभिः ॥ ६०५ ॥

वियालीस हजार पदयुक्त छ पदार्थनिका एकादि भेद संयुक्त दशमार्गका कहनेवारा स्थानांगनें अष्ट द्रव्यनिकरि पूजू हूं ॥ ६०५ ॥

ओं ह्रीं द्विचत्वारिंशत्पदसंयुक्तस्थानांगायार्घम् ।

समवायांगं लक्षैकं चतुरितषष्टीसहस्रपदविशदं ।

द्रव्यादिचतुष्टयेन तु साम्योक्तिर्यत्र पूजये विधिना ॥ ६०६ ॥

एक लाख चौसठ हजार पद करि विशद अरु जामैं द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकरि साम्यता वताई ऐसा समवायांगनै मैं पूजू हूं ॥ ६०६ ॥

ओं ह्रीं एकलक्षषष्टिसहस्रपदन्यासाय समवायांगायार्घम् ।

व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगं द्विलक्षसहिताष्टविंशतिसहस्रपदं ।

गणधरकृतषष्टिसहस्रप्रश्नोक्तिर्यत्र पूज्यते महसा ॥ ६०७ ॥

अरु दोय लाख अट्ठाईस हजार पदयुक्त अरु गणधरका किया साठि हजार प्रश्नकी है कथा जामैं ऐसा व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम अंग वड़ा उत्सवकरि पूजू हूं ॥ ६०७ ॥

ओं ह्रीं द्विलक्षाष्टविंशतिसहस्रपदरंजिताय व्याख्याप्रज्ञप्तयेऽर्घं ।

ज्ञातृधर्मकथांगं शरलक्षसषट्कपंचाशत् ।

पदमहितं वृषचर्चाप्रश्नोत्तरपूजितं महये ॥ ६०८ ॥

अरु पांच लक्ष छप्पन हजार पदसहित धर्मचर्चा प्रश्नोत्तर युक्त ज्ञातृधर्मकथा नाम अंगनें पूजू हूं ॥ ६०८ ॥

ओं ह्रीं पंचलक्षषट्पंचाशत्सहस्रपदसंगताय ज्ञातृधर्मकथांगायार्घं।

उपासकपाठकशिवलक्षसप्ततिसहस्रपदभंगं। (?)
व्रतशीलाधानादिक्रियाप्रवीणं यजामि सलिलाद्यैः ॥ ६०९ ॥

अर ग्यारह लाख सतत्तर हजार पदयुक्त अरु व्रत शील आधानादि क्रियाका है प्रवीणपणा जामें ऐसा उपासकाध्ययनांगनें मैं जलादि द्रव्यनिकरि पूजू हूं ॥ ६०९ ॥

ओं ह्रीं एकादशलक्षसप्ततिसहस्रपदशोभितोपासकाध्ययनायार्घं।

अंतकृदंगं दश दश साधुजनोपसर्गकथकमधितीर्थम्।
तेषां निःश्रेयसलंभनमपि गणधरपठितं यजामि मुदा ॥ ६१० ॥

अर दश दश मुनिनिकौं एक एक तीर्थंकर समयमैं घोर उपसर्ग होय तिनकूं निर्वाणका लंभन कहिये प्राप्ति होती है ऐसा गणधरपठित अंतकृद्दशांग नामकूं प्रमोदकरि पूजू हूं ॥ ६१० ॥

ओं ह्रीं अंतकृद्दशांगायार्घम्।

उपपादानुत्तरकं द्विचत्वारिंशल्लक्षसहस्रपदं। (?)
विजयादिषु नियमेन मुनिगतिकथकं यजामि महनीयं ॥ ६११ ॥

अरु दोय लाख केई हजार (?) पदसंयुक्त अरु दशमुनिही घोरोपसर्ग सहि विजयादि विमाननिमैं उपजैं हैं तिनकूं कहनेमैं तत्पर ऐसा पूज्य उपपादांगनैं मैं पूजू हूं ॥ ६११ ॥

ओं ह्रीं अनुत्तरोपपादिकांगायार्घम्।

प्रश्नव्याकरणांगं त्रिणवतिलक्षाधिषोडशसहस्रपदं ।
नष्टोद्दिष्टं सुखलाभगतिभाविकथं पूजये चरुफलाद्यैः ॥ ६१२ ॥

तिराणवै लाख सोलह हजार पदसंयुक्त अरु नष्ट उद्दिष्टादि सुख दुःखादिका है प्रश्न जामैं ऐसा प्रश्नव्याकरण अंगनं नैवेद्य फलादिक करि पूजू हूं ॥ ६१२ ॥

ओं ह्रीं प्रश्नव्याकरणांगायार्घम् ।

अंगं विपाकसूत्रं कोट्येकचतुरशीतिसहस्रपदं ।
कर्मोदयसत्त्वानानोदीर्णादिकथं यजनभागतोऽर्चामि (?) ॥ ६१३ ॥

एक कोटि चौरासी हजार पदयुक्त अरु कर्मनिका उदय उदीर्णादिककी कथासहित विपाकसूत्र नाम अंगनं यज्ञ भागकरि मैं पूजू हूं ॥ ६१३ ॥

ओं ह्रीं विपाकसूत्रांगायार्घम् ।

उत्पादपूर्वकोटीपदपद्धतिजीवसुखषट्कं ।
निजनिजस्वभावघटितं कथयत्प्रांचामि भक्तिभरः ॥ ६१४ ॥

अरु कोटिपदकी पद्धति मुख्य जीवादिषट् निज निज स्वभावघटित उत्पादपूर्व अंगनैं भक्तियुक्त मैं पूजू हूं ॥ ६१४ ॥

ओं ह्रीं उत्पादपूर्वा गायार्घम् ।

अग्रायणीयपूर्वषराणवतिकोटिपदं तु यत्र तत्त्वकथा ।
सुनयदुर्णयतत्त्वप्रामाण्यप्ररूपकं प्रयजे ॥ ६१५ ॥

अरु छिनवै कोटि पदसंयुक्त अरु जहां सुनय दुर्नय अरु प्रमाण आदिकी कथा है सो अग्रायणीयपूर्व अंगनै मैं पूजू हूं ॥ ६१५ ॥

ओं ह्रीं अग्रायणीयपूर्वा गायार्घम् ।

वीर्यानुवादमधिसततिलक्षपादं द्रव्यस्वतत्त्वगुणपर्ययवादमर्थ्यं ।
तत्तत्स्वभावगतिवीर्यविधानदक्षं संपूजये निजगुणप्रतिपत्तिहेतोः ॥ ६१६ ॥

अरु सत्तर लाख पदसंयुक्त अरु द्रव्यका गुण पर्यायका कथनवारो अरु सार्थक अरु ताका स्वभाव गतिवीर्यका विधानमैं प्रवीण ऐसा वीर्यानुवादपूर्वनै निज गुणकी प्राप्तिके अर्थि मैं पूजू हूं ॥ ६१६ ॥

ओं ह्रीं वीर्यानुवादांगायार्घं ।

नास्त्यस्तिवादमधिषष्टिसुलक्षपादं सप्तोद्भंगरचनाप्रतिपत्तिमूलं ।
स्याद्वादनीतिभिरुदस्तविरोधमात्रं संपूजये जिनमतप्रसवैकहेतुम् ॥ ६१७ ॥

अरु साठ लक्ष पदयुक्त अरु सात प्रकार श्लाघ्य भंगनिको रचनाकी प्राप्तिका मूलभूत अरु स्याद्वाद नयनिकरि दूर किया है विरोधमात्र जामैं अरु जिनमतका प्रकारका अद्वितीय कारण ऐसा अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वनै मैं संपूजित करु हूं ॥ ६१७ ॥

ओं ह्रीं अस्तिनास्तिप्रवादांगायार्घं ।

ज्ञानप्रवादमभिकोटिपदं तु हीनमेकेन वाणमितभानविवर्णनांकं ।
कुज्ञानरूपतिमिरौघहरं समर्चे यत्पाठकैः क्षणमिते समये विचार्यम् ॥ ६१८ ॥

एक घाटि कोटि पदवारा अरु पांच प्रकार ज्ञानका निरूपणका चिह्न अरु कुज्ञानरूपी तिमिर समूहनै हरनेवारा जो उपाध्याय स्वामी है तिनिनै क्षणमात्र कालमैं विचारनेके योग्य ऐसा ज्ञानप्रवादनै मैं पूजू हूं ॥ ६१८ ॥

ओं ह्रीं ज्ञानप्रवादांगायार्घं ।

सत्यप्रवादमधिकं रसपादजातैः कोटीपदं निखिलसत्यविचारदक्षं ।
श्रोतृप्रवक्तृगुणभेदकथापि यत्र तं पूर्वमुख्यमभिवादय उक्तमंत्रैः ॥ ६१९ ॥

अरु छ लक्षपद जात युक्त अरु समस्त सत्यका भेदका विचारमैं निपुण अरु जहां श्रोता वक्ताका गुणनिको कथा है ऐसा सत्य प्रवाद अंगनै आर्ष मंत्रनिकरि अभिवादन करू हूं कि स्तुति करू हूं ॥ ६१९ ॥

ओं ह्रीं सत्यप्रवादायार्घम्।

आत्मप्रवादरसविंशतिकोटिपादान् जीवस्य कर्तृगुणभोक्तृगुणादिवादान्।
शुद्धेतरप्रणयतत्कथनं तु येषु वंदामहे तदभिलाप्यगुणप्रवृत्त्यै ॥ ६२० ॥

आत्मप्रवादके छव्वीस कोटिपद जे है तिननै अरु ते जीवका कर्तृगुण भोक्तृगुण आदिका कथन करनेवारे हैं अरु जिनमें शुद्धनय और व्यवहारनयाश्रित कथन है तिनकूं हम तामैं कहे गुणनिकी प्रवृत्त्यर्थ पूजे है ॥ ६२० ॥

ओं ह्रीं आत्मप्रवादायार्घम्।

कर्मप्रवादसमये विधुसंख्यकोटीसंख्यानशीतिलयुतान् वसुकर्मणां च।
सत्त्वापकर्षणनिधत्तिमुखानुवादे पद्यान् स्थितानमितपूजनया धिनोमि ॥ ६२१ ॥

एक कोटि अस्सीलाख पदम युक्त अरु अष्ट प्रकार कर्मनिके सत्त्व अपकर्षण निधत्ति आदि कथनमें स्थित कर्मप्रवाद श्रुतनै संपूर्ण पूजन करि प्रसन्न करू हूं ॥ ६२१ ॥

ओं ह्रीं कर्मप्रवादायार्घम्।

प्रत्याहृतेश्चतुरशीतिसुलक्षपद्यान् निक्षेपसंस्थितिविधानकथप्रसिद्धान्।
न्यासप्रमाणनयलक्षणसंयुजोऽर्चे यागार्चने श्रुतधरस्तवनोपयुक्तान् ॥ ६२२ ॥

प्रत्याहार पूर्वका चौरासी लाख पदनिने निक्षेपका संस्थान विधान आदि कथामैं प्रसिद्धनिनै अरु न्यास प्रमाण और नयनिका लक्षणकूं योजनवारे अरु श्रुतके पारगामीनिका स्तवनमें उपयुक्त जो है तिनने इस यागमंडलमें मैं पूजू हूं ॥ ६२२ ॥

ओं ह्रीं प्रत्याहारपूर्वायार्घं।

विद्यानुवादभुवि चंद्रसुकोटिकाष्टालक्षाः पदा यदधिमंत्रविधिप्रकारः ।
संरोहिणीप्रभृतिदीर्घविदां प्रसंगस्तं पूजये गुरुमुखांबुजकोशजातं ॥ ६२३ ॥

अरु विद्यानुवाद रूप भूमीमैं एक कोटि दशलक्ष पद हैं अरु जामैं सर्वमंत्रनिका प्रकार है अरु रोहिणी आदि महाविद्यानका सिद्धि होनेका प्रसंग है ऐसा गुरुमुखकमलकर्णिकासे है उत्पत्ति जाकी ताकूं मैं पूजूं हूं ॥ ६२३ ॥

ओं ह्रीं विद्यानुवादपूर्वायार्घम् ।

कल्याणवादमननश्रुतमंगमुख्यं षड्विंशतिप्रमितकोटिपदं समर्चे ।
यत्रास्ति तीर्थकरकामबलत्रिखंडिजन्मोत्सवाप्तिविधिरुत्तमभावना च ॥ ६२४ ॥

अरु कल्याणवादका मननरूप श्रुत है सो अंगनिमैं मुख्य है अरु छब्बीस कोटिपदयुक्त अरु जहां तीर्थंकर कामदेव बलदेव नारायणनिका जन्म उत्सव आदि उपजनेका वृत्त तप विधान अरु भावना-वर्णन है ताकूं मैं पूजूं हूं ॥ ६२४ ॥

ओं ह्रीं कल्याणवादपूर्वायार्घम् ।

प्राणप्रवादमभिवादयतां नराणां त्रिश्वप्रमाणमितकोटिपदाभियुक्तं ।
काऽर्तिर्भवेन्निरयघोरभवस्य चायुर्वेदादिसुस्वरभृतं परिपूजयामि ॥ ६२५ ॥

आयुर्वेद ज्यों वैद्यक तथा स्वरनिका वाम दक्षिण वाहनमैं शुभाशुभका कथनयुक्त अरु चोदह कोटिपद वारो ऐसो प्राणवाद अगन पूजन करते मनुष्यनिके नरकादि घोर दुःखनिकी कहा पीडा होय ? यातैं मैं पूजूं हूं ॥ ६२५ ॥

ओं ह्रीं प्राणप्रवादपूर्वायार्घम् ।

क्रियाविशालं नवकोटिपदैर्युक्तं सुसंगीतकलाविशिष्टं ।
छंदोगणाद्याननुभावयंतमध्यापकानत्र विधौ यजामि ॥ ६२६ ॥

अरु नव कोटि पदनिकरि युक्त अरु संगीत कलाकरि विशिष्ट अरु छंदगण आदिने प्रकाश करतो क्रियाविशाल अंगनै तथा अध्यापक परमेष्ठीनिनै मैं पूजू हूं ॥ ६२६ ॥

ओं ह्रीं क्रियाविशालपूर्वायार्घम् ।

त्रैलोक्यविंदौ शिवतत्त्वचिंता सार्द्धा सुकोटी द्विदशप्रमाणाः ।
पदास्त्रिलोकीस्थितिसद्विधानमत्रार्चये भ्रांतिविनाशनाय ॥ ६२७ ॥

अरु साढ़ा दोय कोटि अरु दश कोटि प्रमाणपदमें मोक्षतत्त्वको चिंतन है अरु तीन लोककी स्थिति विधान है ऐसा त्रैलोक्यविंदु नाम पूर्वनै भ्रांतिका नाश अर्थि मैं पूजू हूं ॥ ६२७ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यविंदुपूर्वायार्घम् ।

इत्थं श्रीश्रुतदेवतां जिनवरांभोध्युद्गतामृद्धिभृ-
न्मुख्यैर्ग्रंथनिबंधनाक्षरकृतामालोकयंतीं त्रयं ।
लोकानां तदवाप्तिपाठनधियोपाध्यायशुद्धात्मनः
कृत्वाराधनसद्विधिं धृतमहार्घेणार्चये भक्तितः ॥ ६२८ ॥

ऐसें मैं जिनवर समुद्रतैं उत्पन्न अरु ऋद्धिके धारीनिकरि ग्रंथरूप कियो अरु तीन लोकनै देखनेवारो ऐसी श्रुत देवतानै तथा ताकी अवाप्तिमें पठनवारे उपाध्याय शुद्धात्मा जे हैं तिननै आराधनविधिपूर्वक भक्तिकरि अर्घतैं पूजू हूं ॥ ६२८ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् बिंबप्रतिष्ठोत्सवसद्विधाने मुख्यपूजार्हसप्तमवलयोन्मुद्रितद्वादशांगश्रुतदेवताभ्यस्तदाराधकोपाध्यायपरमेष्ठिभ्यश्च पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ओं ह्रीं इस बिंबप्रतिष्ठामैं मुख्य पूजाके योग्य सप्तमवलयमें स्थापित आचार्यपरमेष्ठी तथा द्वादशांग श्रुतदेवताके अर्थि अर्घ देना ।

अथाष्टमवलयस्थापितसाधुपरमेष्ठिगुणपूजाप्रारंभः ।

अत्र कोष्ठाः अष्टाविंशतिः २८ । तथाहि—

अब अष्टमवलयमें साधुपरमेष्ठीका अट्ठाईस कोष्ठ पूजा कहिये है। सो ऐसे हैं—

जीवाजीवद्विरधिकरणव्यासदोषव्युदासात्

सूक्ष्मस्थूलव्यवहृतिहतेः सर्वथात्यागभावात् ।

मूर्धन्यासं सकलविरतिं संदधानान्मुनींद्रा—

नाहिंसाख्यव्रतपरिवृतान् पूजये भावशुद्ध्या ॥ ६२९ ॥

जीव अजीव दोय प्रकार अधिकरणमें व्याप्त भये दोषनिका नाशतैं अरु स्थूल सूक्ष्मरूप व्यवहार हिंसाका सर्वथा प्रकार त्यागभावतैं सकल शिरोमणि ऐसी सकल हिंसाकी विरतिनें धारते अरु याहीतैं अहिंसापरिणमन वृत्तिवारे मुनींद्रनिनैं मैं भावशुद्धिसे पूजू हूं ॥ ६२९ ॥

ओं ह्रीं अहिंसामहाव्रतधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

मिथ्याभाषासकलविगमात् प्राप्तवाक्शुद्ध्युपेतान्

स्याद्वादेशान् विविधसनयैर्धर्ममार्गप्रकाशम् ।

संकुर्वाणानतिचरणधीदूरगानात्मसंवित्—

सम्राजस्तांश्चरुफलगणैः पूजयाम्यध्वरेऽस्मिन् ॥ ६३० ॥

अरु मिथ्यावचनका समस्तपणा विगमतैं अर्थात् त्यागतैं प्राप्त जो वचनकी शुद्धि ताकरि संयुक्त अरु स्याद्वादविद्याका स्वामी अरु नाना-

प्रकारको सुनयनिकरि धर्ममार्गका प्रकाशने करतें अरु अतीचारकी बुद्धितें दूरवतते अरु आत्मविद्याके चक्रवर्ती ऐसे साधुपरमेष्ठीनै या यज्ञमैं पूजू हूं ॥ ६३० ॥

ओं ह्री अनृतपरित्यागमहाव्रतधारकायार्घम् ।

आकर्तव्ये (ध्वनि?) शिवपदगृहे रंतुकामाः पृथक्त्वं
देहात्मीयं करगतमिवाध्यक्षमादर्शयंतः ।
प्राणग्राहं तृणमपि परैरप्रदत्तं त्यजंत-
स्तापंतां मां चरणवरिवस्याप्रशक्तं मुनींद्राः ६३१ ॥

कृतकृत्यरूप मोक्षमार्गगृहमें क्रीडा वांछक अर देह अर आत्मानै जुदा करणेवाले प्रत्यक्ष हस्ततलगत वस्तु समान देखनेवाले अर प्राणनिग्रहण होता भी अन्यकरि नहीं दिया तृणमात्रने भी त्यागते मुनींद्र सेवासं शक्त मोने रक्षा करो ॥ ६३१ ॥

ओं ह्रीं अचौर्यमहाव्रतधारकायार्घम् ।

तिर्यग्मर्त्यामरगतिगता याः स्त्रियः काष्ठचित्रा-
लेप्याश्मान्याश्चिदचिदुदधिस्थास्तवस्तास्त्रियोगं ।
स्वप्ने जाग्रद्दिशि कतिचिदप्यर्तिमुद्राः स्मरंतो (?)
ये वै शीलं परिदृढमगुस्तान्यजेऽहं त्रिशुद्ध्या ॥ ६३२ ॥

चेतनमे तिर्यंचिणी मनुष्यणी देवांगना गतिमें प्राप्त स्त्री तथा काष्ठ चित्राम लेप पाषाणकी स्त्री अचेतन ऐसे चेतन अचेतन समुद्रमैं तिष्ठनेवारी जो है तिनने मन वचन कायतैं स्वप्नमें तथा जाग्रतदशामैं कोई दशामें नहीं स्मरण करते गाढा शीलव्रतने प्राप्त मुनींद्रनने मैं त्रिशुद्धिकरि पूजू हूं ॥ ६३२ ॥

ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यव्रतधारकायार्घम् ।

रागद्वेषाद्यभिकृतपरावृत्तदोषांतरंगा
ये वाह्या अप्युदितदशधा ते ह्यकिंचन्यभावात् ।
नापि स्थैर्यं दधुरुरुगुणाग्राहिणि स्वांतमध्ये
ग्रंथा येषां चरणधरणिं पूजयाम्यादरेण ॥ ६३३ ॥

रागद्वेष आदि करि पैदा किये स्वतंत्र दोष जिनि ऐसे अंतरंग परिग्रह अरु दशप्रकार वाह्य परिग्रहतें जिनकैं अकिचनभावतैं स्थिरपणो नहीं धारै अर प्रचुर गुणवाला अंतरंग हृदयमैं न प्राप्त भए तिनका चरण भूमिने मैं आदरतें पूजू हू ॥ ६३३ ॥

ओं ह्रीं आकिंचन्यभावधारकायार्घम् ।

ईर्यापंथास्तिमितचकितस्तब्धदृष्टिप्रयोगा–
भावाच्छुद्धो युगमितधरालोकनेनापि येषां ।
वर्षाकालावनियवसंभूजंतुजातिं विहाय
तीर्थश्रेयोगुरुनतिवशाद् गच्छतोऽर्चे यतींद्रान् ॥ ६३४ ॥

अरु जिनकैं ईर्या मार्ग है सो स्थगित अर चकित अर मग्न दृष्टि प्रयोगका अभावतैं अर युगमात्र अवलोकनतैं भी शुद्ध है, अरु वर्षा ऋतुमैं हुवे यव अंकुर हरितकाय प्राणी जातिकूं छोडि तीर्थकल्याण तथा गुरुनिका नमस्कारके वशतैं गमन करै तिनि मुनींद्रनिकूं पूजू हू ॥ ६३४ ॥

ओं ह्रीं ईर्यासमितिधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

लोभक्रोधाद्यरिगणजयाद् भीतिमोहापमर्दा–
न्निःशल्याद्यान् जिनवचिसुधाकंठपानप्रपुष्टान् ।

याथातथ्यं श्रुतनिगमयोर्जानतः प्रश्नकर्तु-

र्वाभिप्रायं वचनसमितीर्धारकान् पूजयामि ॥ ६३५ ॥

लोभ क्रोध आदि वैरीनिका समूहके जयतैं अर भयमोहका नाशतैं निःशल्ययुक्त अरु जिनवचन रूप अमृतका कंठमें पान ताकरि पुष्ट अरु शास्त्र सिद्धांतके यथार्थ स्वरूपने जानते तथा प्रश्नकर्ताका अभिप्रायकूं भी जानते ऐसे वचनसमितिने प्राप्त मुनींद्रनिने मैं पूजू हूं ॥ ६३५ ॥

ओं ह्रीं भाषासमितिधारकसाधुपरमेष्ठिनेऽर्घम् ।

षट्चत्वारिंशदतिचरणाम्रेडितत्यागयोगात्

दोष्णां चातुर्दशमलभुवां हापनात् कायहानिं ।

अप्यासीनाममृतधिषणाभ्यासतोऽग्रे कृतार्थी (?)

मन्वानास्तेऽशनविरतयः पांतु पादाश्रितं मां ॥ ६३६ ॥

छियालीस अतीचारका वारंवार त्याग करनेतैं अरु चौदह मलतैं उत्पन्न दोषनिका त्यागतें कायका नाशकूं अमृत बुद्धिवत् कृतार्थ मानते अशन जो च्यार प्रकार भोजन ताके त्यागमें मुनींद्र है ते चरणारविंदनै आश्रित कियों मैं जो है ताहि रक्षा करो ॥ ६३६ ॥

ओं ह्रीं एषणासमितिधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

वस्तुग्राहं त्व परिणामादाननिक्षेपयोगा (?)-

भावः पूर्वं दृढपरिचयाद्विद्यते शुद्ध एव ।

पिच्छाकुंडीग्रहणमपि ये रक्षणाचारहेतोः

कुर्वंतोऽप्यत्र निहितदृशस्तान्यजे सत्समित्यै ॥ ६३७ ॥

वस्तुका ग्रहण मात्र नहीं परिणामपना करि दान कहिये आदान और निक्षेप इनका योगको अभाव पहिली ही गाढा परिचयतें जिनकै

शुद्ध ही विद्यमान है, अर कमंडलु पीछिकाको ग्रहण भी जीवरक्षा अर मुनिधर्मका चारित्र शुद्धितैं करैं है तथापि तहां नेत्र इंद्रिय करि शोधै है ऐसे मुनींद्रनिनै मैं समितिकी प्राप्त्यार्थ पूजू हूं ॥६३७॥

ओं ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

व्युत्सर्गाख्यां समितिमघृणां नासिकानेत्रपायू-
पस्थस्थानान् मलहृतिविधौ सूत्रमार्गानुकूलं ।
रक्षंतोऽन्यानपि सदयतां पोषयंतोप्युदग्रां
धन्या दांतेंद्रियपरिकरा आददंत्वर्चनां मे ॥ ६३८ ॥

अरु जे नासिका नेत्र गुदा लिंग आदि स्थानतैं मलका निष्कासनविधिमें सूत्रमार्गके अनुकूल अन्य प्राणी मात्रनैं रक्षा करते अर नहीं है घृणा जामें ऐसो उत्कृट व्युत्सर्ग नामक समितिनैं अरु सदयपणाने पोषते धन्य गुरु जे हैं ते मेरी कियो पूजानै ग्रहण करो ॥ ६३८ ॥

ओं ह्रीं व्युत्सर्गसमितिपालकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ ।

उष्णः शीतो मृदुलकठिनौ स्निग्धरूक्षौ गुरुर्वा
स्तोकः स्पर्शोष्टतय उदितस्पर्शनात् सप्रमादं ।
रागद्वेषावपि न दधतश्चेतनाचेतनेषु
किंच स्त्रीणां वपुषि विषये तान्यजेऽहं मुनींद्रान् ॥ ६३९ ॥

· स्पर्श उष्ण शीत कोमल कठिन सचिक्कण रूक्ष वा भारो हलको इनि भेदनितैं आठ प्रकारको है तातैं स्पर्शनेंद्रियका प्रमादनैं तथा चेतन अचेतन विषयमैं रागद्वेषनिनै नहीं धारण करते अर स्त्री ·विषय शरीरमैं तो कदाचित् रागद्वेष नहीं करते मुनींद्रने मैं पूजू हूं ॥ ६३९ ॥

ओं ह्रीं स्पर्शेंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं ।

मिष्टस्तिक्तो लवणकटकामम्ल एवं रसज्ञा-
ग्राही प्रोक्तो रसनविषयस्तत्र रागक्रुधोर्वा ।
त्यागात्सर्वप्रकृतिनियतेः पुद्‌गलस्य स्वभावं
संजानंतो मुनिपरिवृढाः पांतु मामर्चितास्ते ॥ ६४० ॥

अरु मीठो तीखो लवण कडुवो खट्टो रसना इंद्रियको विषय है तहां रागद्वेषका त्यागतैं अरु सर्ववस्तुकी प्रकृतिका नियमवाला पुद्‌गलका स्वभावनै जानता मुनींद्र है ते मेरी रक्षा करो ॥ ६४० ॥

ओं ह्रीं रसनेंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं ।

वातद्वेषस्तुहिनविकृतेरुष्णताद्वेष ऊष्म्य-
व्यासांगस्य प्रकृतिनियमात् सुप्रसिद्धोऽप्रतर्क्यः ।
साम्यस्वामी ह्यशुभसुभगद्वैधगंधौ विजानन्
वस्तुग्राहं भजति समतां तं यतींद्रं यजेऽहं ॥ ६४१ ॥

अरु शीत प्रकृतिवालाके वातसे द्वेष है, अरु उष्ण प्रकृतिवालाकै उष्णतासे द्वेष है, यो नियम सर्वत्र नाहीं तर्कन में आवै ऐसौ प्रसिद्ध ही है अरु साम्यस्वभावका स्वामी अशुभ गध अरु शुभ गंध दोऊ कूं वस्तुमात्रमैं जानै है तातैं समतानै ग्रहण कर है अरु ऐसे वे मुनींद्रने मैं पूजू हूं ॥ ६४१ ॥

ओं ह्रीं घ्राणेंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं ।

यद्यद्दृश्यं नयनविषये तेषु तेष्वात्मना वै
जन्माग्राहि त्रिजगदभितश्चक्रमावर्तपातात् ।

कृष्णे पीते हरिदरुणयोरर्जुने पौद्गलेदणो-

र्व्यापारोऽसन्निति परिणतः पूज्यतेऽसौ मयात्र ॥ ६४२ ॥

अरु जो नेत्र इंद्रियकरि देखनेमैं आवै तिनि विषयनिमैं आत्मा तीन जगतका परावर्तनरूप चंक्रमणतैं जन्म ग्रहण किया तातैं काला पीला हऱ्या लाल सफेद पुदुगलमें नेत्रनिको विकार करना असत् है ऐसा परिणामननै प्राप्त हूवो मुनींद्र मैं करि पूजिये है ॥ ६४२ ॥

ओं ह्रीं चक्षुरिंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

एकः स्तोत्रं रचयितु मुदा गद्यपद्यानवद्यै-

र्वाक्यैरन्यः श्वपच जननी तेऽद्य भार्या ममेति ।

श्रुत्वा शब्दं श्रवसि जडतामेत्य तोषं न कोपं

धत्ते शक्तोऽप्यमरमहितस्तस्य पूजां विदध्मः ॥ ६४३ ॥

एक प्राणी तो हर्ष करि अनवद्य गद्यनिके वाक्यनिकरि स्तोत्र रचै है, अरु अन्य दुष्ट कहै है कि-रे चांडाल! तेरी माता मेरी स्त्री है ऐसा शब्दनैं सुणि करि कर्णमें जडपडानै प्राप्त होय तोप वा रोपकूं समर्थ होय भी नहीं धारण करै सो देवनिकरि पूज्य है, ताकी हम पूजा करै है ॥ ६४३ ॥

ओं ह्रीं श्रोत्रेंद्रियविकारविरतसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

साम्यं यस्य स्फुरति हृदये निर्व्यलीकं कदाचि

दायातेऽपि ध्रुवमशुभसमयाबद्धपाकावतारे (?)

घोरापीडासदसि वपुषि स्पृड्मृतिं संदधानो

बाहुभ्यामंबुधिमिव तरत्येष साधुर्मयार्च्यः ॥ ६४४ ॥

जाका हृदयमैं निःकपट साम्यभाव स्फुरायमान है, अरु निश्चय अशुभ समयाबद्ध कर्मनिका उदयका आगमनतैं आवता भी कदाचित्

घोर पीड़ाका गृहरूप शरीरमैं वांछा तथा मरणनै संधारण करतो जैसे भुजनिकरि समुद्रने तिरै तैसे तिरै सो यो साधु मोकरि पूजिये है ॥ ६४४ ॥

ओं ह्रीं सामायिकावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

स्मारं स्मारं प्रकृतिमहिमानं तु पंचेश्वराणां
प्रत्यक्ष वा मननविषयं बंदमानस्त्रिकाल ।
कर्मव्यूहक्षपणसमं चर्करीत्यात्मवंतं
शुद्धस्फारं गमयति शिवं तं महांतं यजामि ॥ ६४५ ॥

अर पंच परमेष्ठीनिका निजमहिमाने स्मरणकरि अरु प्रत्यक्षवत् आपका मनन विषय त्रिकाल वंदतो अरु अतुल कर्मका समूहका नाशनै वारंवार करै है अरु आत्मानै शुद्ध विशद करि शिवमार्गमैं प्रवेश करावै है सो महान् साधुनै पूजू हूं ॥ ६४५ ॥

ओं ह्रीं वंदनावश्यगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

चेतोरक्षःप्रसरणनिराकर्मणो तीर्थनाथ–
पादाब्जेषु प्रतिगुणगणे दत्तचित्तो मुनींद्रः ।
तेषां स्तोत्रं पठति परमानंदमात्मानुभावं
किं वा शुद्धं सृजति स मया पूज्यते तद्गुणाप्त्यै ॥ ६४६ ॥

जो मुनींद्र चित्तरूप राक्षसका फैलाव निराकरणके अर्थि तीर्थंकरादिका चरणकमलमैं तथा तिनका गुणमैं दिया है चित्त जानै ऐसा होय है अरु तिनका स्तोत्रनै पढ़ै है, यद्वा आत्माका अनुभवनै परमानंद शुद्धरूप रचै है सो साधुका गुणकी प्राप्ति अर्थि मैं करि पूजिये है ॥ ६४६ ॥

ओं ह्रीं स्तवनावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

दोषाभावेऽप्यथ निशिदिवाहारनीहारकृत्ये
ज्ञाताज्ञातप्रमदवशतो जंतुरभ्यर्दितः स्यात् ।
नित्यं तस्य प्रतिभयलवं व्युत्सृजानः स्वयं यो
दोषव्रातैर्नहि जुडति तं धीरवीरं यजामि ॥ ६४७ ॥

कदाचित् दोपका अभावनै होता संता भी रात्रि वा दिनमैं आहार नीहार कार्य मैं ज्ञात अज्ञातभावतैं प्रमादका वशतैं प्राणी पीडित हुवा होय ताकूं नित्य भय लवमात्र आप ही यादि करि आलोचना करै सो साधु दोषनिका समूह करि नहीं जुड़ै अर्थात् युक्त नहीं होय तिस धीर वीर साधुने मैं पूजूं हूं ॥ ६४७ ॥

ओं ह्रीं प्रतिक्रमणावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

नित्यं चेतःकपिरचलतां नैति तद्बंधनार्थं
स्वाध्यायाख्यैः प्रगुणनिगडैर्बंधमानीय भद्रे ।
मार्गे युंज्याच्छ्रुतपरिणतात्मीयमोदावधानो
वृत्तिं शुद्धां श्रयति स महानर्घ्यतेऽनर्घ्यबुद्धिः ॥ ६४८ ॥

नित्य यह चित्तरूपी मर्कट अचलतानै नहीं प्राप्त होय है ताका वश करनेके अर्थि स्वाध्याय नाम सांकलनि करि बंधनने प्राप्त करि सुंदर मार्गमैं युक्त करै है अरु श्रुतरूप परिणम्या आत्माका आनंदमैं सावधान हुवो संतो शुद्ध वृत्तिनै आश्रय करै है सो अनर्घ्यबुद्धि साधु मैं करि पूजिये है ॥ ६४८ ॥

ओं ह्रीं स्वाध्यायावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ ।

आमे भांडे कुथितकुणपे यादृशी नश्यहेय–
बुद्धिः काये सततनियता वीतरागेश्वराणां ।

व्यक्तीकर्तुं शिखरिविपिनांतस्तनोर्निर्ममत्वे
कायोत्सर्गं रचयति मुनिः सोऽत्रपूजां प्रयातु ॥ ६४९ ॥

वीत भया है राग जिनके ऐसे ईश्वरनिकैं कचे भांडमैं अरु सिज्या मृतकमें जैसी नश्य हेयबुद्धि होय है तैसी कायमैं नश्य हेयबुद्धि है। ताकूं प्रकट करनेकूं पर्वत वन मध्ये निर्ममत्व दशामैं कायोत्सर्ग रचै है सो मुनि इहां मैं करि पूजित हो ॥ ६४९ ॥

ओं ह्रीं व्युत्सर्गावश्यकगुणधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं।

पूर्वं हर्म्ये मणिगणाचितानेकपर्यंकशायी
सोऽयं घोरस्वनमृगपतित्रस्तनागेंद्रकारे ।
भूध्रग्रावोपरितनभुवि स्वप्नवत्किंचिदात्त-
निद्रो यस्य स्मरणमपि संहंति पापं स मेऽर्च्यः ॥ ६५० ॥

अरु जो पूर्व राज्यावस्थामैं मणिरत्न करि खचित अनेक पल्यंकमैं शयन करै था सोही यो अवार घोर वीर शब्दवारा मृगेंद्रनिकरि कंपित हैं हाथी जामैं ऐसा अंधकारमैं पर्वतनिका पाषाण ऊपरि पृथ्वीमैं किंचित् स्वप्नाके समान ग्रहण कियी है निद्रा जानै ऐसे हुवो संतो तिष्ठै है ताको स्मरण भी पापनै संहार करै है सो साधु मेरे पूज्य है ॥ ६५० ॥

ओं ह्रीं भूशयननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम्।

ग्रीष्मे रेणूत्करविकरणव्यग्रवातप्रसर्पद्-
धूलिपुंजे मलिनवपुषि त्यक्तसंस्कारवांछः ।
अस्नानत्वं विजनसरसीसंनिधानेऽपि येषां
तेषां पादांबुजयुगमहं पारिजातैरुदर्चे ॥ ६५१ ॥

अरु ग्रीष्मऋतुमें धूलिका समूहकरि विखरचा कजोडा करि व्यग्र पवन करि फैलता है धूलिको पुंज जाके ऐसा मलिन शरीरमें त्यागी है संस्कार स्नान आदिकी वांछा जानै अरु निर्जनस्थान जगता सरोवरका निकटपणानै होता भी अस्नानपणो है तिनका चरणारविंद युगलनै देवोपनीत पुष्पनि करि मैं पूजूहूं ॥६५१॥

ओं ह्रीं अस्नाननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

वाल्कं फालं वसनमुपसंव्यानकोपीनखंड–
कादाचित्केऽप्युपधिसमये नैव वांछंस्तपस्वी ।
दैगंबर्यं परमकुशलं जातरूपप्रबुद्धं
संधार्यैवं नयति परमानंदधात्रीं तमर्चे ॥ ६५२ ॥

अर वृक्षांका वल्कल संबंधी तथा फल संबंधी धोवती दुपट्टो कोपीन खंड आदि वस्त्रनै कदाचित् भी दुःख समयमैं भी नही वांछै तपस्वी परम दिगंवर जातरूप मुद्रानै धारि परमानंदरूपी भूमिने प्राप्त होय है वे साधुने पूजूहूं ॥ ६५२ ॥

ओं ह्रीं सर्वथावस्त्रपरित्यागनियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

क्षौरं शस्त्रोज्जनिपराधीनतापात्रमेव (?)
जूडा मूर्धन्यतुलकृमिदा भूतशीर्षाकृतिस्था ।
दोषायैवेति विहितकचोत्पाटनो मुष्टिमात्रात्
साक्षान्मोक्षाध्वनिधृतिपदः पूज्यते श्रौतकर्मा ॥ ६५३ ॥

क्षौर कराना है सो शस्त्रका मौजूदगी होना रूप पराधीनताका पात्र ही है, अरु जूडा कहिये जटा मस्तक परि राखी हुई अनेक जूँवा आदिकी देनेवारी है तथा भूतके मस्तककी आकृति देनेवारी है। सो हू दोषके वास्तै ही है। ई वास्ते मुष्टीमात्रकरि कियो है कचनको उत्पाटन जानै अरु साक्षात् मोक्षका मार्गमें धारण कियो है पद जाने ऐसो श्रुतसंवंधी कर्मधारी साधु है सो मैं करि पूजिये है ॥ ६५३ ॥

ओं ह्रीं कृतकेशलोचनियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

एकद्वित्रिप्रभृतिदिवसप्रोषधादिप्रकर्तु-
रास्यम्लानिर्भवति नितरां दंतशुद्धिं विनाऽत्र ।
दौर्गंध्यांधुं वपुषमकृतस्थैर्यमापन्निदानं
जानन् योगं मलिनयति नो तं समर्चे मुनींद्रम् ॥ ६५४ ॥

एक दोय तीन आदि दिवसमैं प्रोपधोपवास करनेवालाके निरंतर मुखकी मलिनता दंतशुद्धि विना होय है। अरु दोगंध्यको कूप अरु नही है स्थिरता जामैं अरु आपदाको स्थान असा शरीरने जानतो योग जो अपना ध्यान ताने नहीं मलिन करै है ता मुनींद्रनै पूजू हूं ॥ ६५४ ॥

ओं ह्रीं दंतधावनवर्जननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घम् ।

यांचादैन्योदरविघट्टनादींगितादीनि येषां
निर्मूलंतो मनसि चमनालाभलाभांतराये । (?)
तुल्या दृष्टिस्तदपि सकृदेकाह्निभुक्तिप्रमाणं
तेषां धर्म्यावगमसुगमत्वाय पादौ यजामि ॥ ६५५ ॥

अरु जिनकै याचना अर दीनता अर उदरका लिपिसना आदि चेष्टित निर्मूल है अरु मनमैं भोजनका अलाभ तथा अंतरायमैं तुल्य दृष्टि है सो भी एक दिनमें एक वार भोजनको प्रमाण धर्मध्यानका सुगमपणाकी प्राप्ति अर्थि है तिन साधूनिका चरणाने मैं पूजू हूं ॥ ६५५ ॥

ओं ह्रीं एकभक्तनियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घ ।

यावद्देहं स्थितिधृतिधराशक्तिमंगीकरोति

यावज्जंघावलमचलतां नोज्जिहीते मुनित्वे ।
यावत्स्थाप्ये तदपगमने भोजनत्याग एवं
संन्यासस्य ग्रहणमिति यद्द् यस्य नीतिस्तमर्चे ॥ ६५६ ॥

यावत् काल यह देह है सो स्थिति अर धैर्यता और गमन शक्तिनै अंगीकार करै है अरु यावत्काल जंघाको बल अचलतानै नही छोडै है अरु यावत्काल ही मुनिपणामें तिष्ठू हूं अरु ता पूर्वोक्त प्रकारका साग होय तो भोजनको ही साग है अरु संन्यासको ग्रहण है ऐसैं याकी नीति कहिये नय है ता मुनिकू मैं पूजू हूं ॥ ६५६ ॥

ओं ह्रीं आस्थितभोजननियमधारकसाधुपरमेष्ठिभ्योऽर्घं ।

अष्टाविंशतिसद्गुणग्रथितसद्रत्नत्रयाभूषणं
शीलेशित्वतनुत्रराक्षितवपुः कामेषुभिर्नाहतं ।
आर्हंत्यादिपदस्य बीजमनघं येषां परं पावनं
साधूनां समुदायमुत्तमकुलालंकारमाशास्महे ॥ ६५७ ॥

अट्ठाईस मूल गुणनिकरि ग्रंथित रत्नत्रयको भूषणरूप अरु शीलका स्वामीपणारूप कवचकरि रक्षित शरीर कामबाणनिकरि नहीं हरायो गयो अरु अर्हत आदि पदवीको बीज अरु निर्मल परम पवित्र उत्तम कुलको भूषणरूप साधुनिका समुदायने हम वांछै हैं ॥ ६५७ ॥

ओं ह्रीं अस्मिन् बिंबप्रतिष्ठोत्सवे मुख्यपूजार्हं अष्टमवलयोन्मुद्रितसाधुपरमेष्ठिभ्यस्तन्मूलगुणग्रामेभ्यश्च पूर्णार्घं ।

ओं ह्रीं इस बिंब प्रतिष्ठाका उत्सवमें मुख्य पूजाके योग्य आठवां वलय स्थापित साधुपरमेष्ठीनकूं तथा तिनके गुणनि अर्थि पूर्णार्घ ॥

अथ नवमवलयस्थापिताष्टचत्वारिंशदृद्धिधारकपूजाप्रारंभः ।

अत्र कोष्ठाः अष्टचत्वारिंशत् ४८ । तथाहि—

अथ नवम वलयमें स्थापित अडतालीस ऋद्धिधारक मुनिका पूजन करिये है। तहां कोठा ४८ हैं। सो ऐसैं है—

त्रैलोक्यवर्तिसकलं गुणपर्ययाढ्यं यस्मिन्करामलकवत् प्रतिवस्तुजातं ।
आभासते त्रिसमयप्रतिबद्धमर्चे कैवल्यभानुमधिपं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ ६५८ ॥

वहुरि तीन लोकवर्ती समस्त गुण पर्यायसहित वस्तुमात्र है सो जाका करतलमें आंवला समान त्रिकालसंबंधी भासैं है ऐसा केवलज्ञान सूर्यरूपी स्वामीने मस्तककरि नमस्कारकरि मैं पूजू हूं ॥ ६५८ ॥

ओं ह्रीं सकललोकालोकप्रकाशकनिरावरणकैवल्यलब्धिधारकेभ्योऽर्घं ।

ओं ह्रीं सकल लोकालोकप्रकाशनसमर्थ केवलज्ञान धारकनिके अर्थ अर्घम् ।

वक्रर्जुभावघटितापरचित्तवर्तिभावावभासनपरं विपुलर्जुभेदात् ।
ज्ञानं मनोऽधिगतपर्ययमस्य जातं तं पूजयामि जलचंदनपुष्पदीपैः ॥ ६५६ ॥

अरु वांका वा सरल भावनिकरि घटित परका चित्तमैं वर्तै ऐसा भावनिका प्रकाशमें तत्पर अरु विपुलमति ऋजुमति भेदतें मनःपर्यय-ज्ञान जाके हुवा है ताकूं मैं जल चंदन पुष्प दीपनिकरि पूजू हूं ॥ ६५६ ॥

ओं ह्रीं ऋजुमतिविपुलमतिमनःपर्ययधारकेभ्योऽर्घम् ।

देशावधिं च परमावधिमेव सर्वावध्यादिभेदमतुलावमदेशपृक्तं ।
ज्ञानं निरूप्य तदवाप्तियुतं मुनींद्रं संपूज्य चित्तभवसंशयमाहरामि ॥ ६६० ॥

देशावधि अर परमावधि अर सर्वावधि आदि भेदयुक्त अतुल न्यून मर्यादा क्षेत्र करि भिन्न असा ज्ञानतैं निरूपण करि ताकी प्राप्तिवाला मुनींद्रने पूजि चित्तमें हुवा संदेहनै हरू हूं ॥ ६६० ॥

ओं ह्रीं अवधिज्ञानधारकेभ्योऽर्घम् ।

अन्योपदेशमनपेक्ष्य यथा सुकोष्ठे वीजानि तद्गृहपतिर्विनियुज्यमानः ।
ग्रंथार्थवीजबहुलान्यनतिक्रमाणि संधारयन्नृषिवरोऽर्च्यंत उवस्थमंत्रैः (?) ॥ ६६१ ॥

अर दूसरेका उपदेशकूं नहीं अपेक्षित करि जैसे सुंदर कोठामें वीज जे है गृहको स्वामी विनियोग करतो संतो ग्रंथका अर्थ अतिक्रम-रहित धारै हैं ता मुनिवरने मैं आर्षोक्त मंत्रनिकरि पूजूं हूं ॥ ६६१ ॥

ओं ह्रीं कोष्ठबुद्ध्यर्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

एकं पदार्थमुपगृह्य मुखांतमध्यस्थानेषु तच्छ्रुतसमस्तपदग्रहोक्तिम् ।
पादानुसारिधिषणाद्यभियोगभाजां संपूज्य तन्मतिधरं तु समर्चयामि ॥ ६६२ ॥

अरु पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि आदिके योगकूं भजनेवारेनिको एक पद वा अर्थ आदि मध्य अंतमें ग्रहण करि तिस श्रुतका समस्त पदनिका ग्रहण वा उक्ति होय ताहि पूजि करि तिस बुद्धिका धारी साधुने मैं पूजू हूं ॥ ६६२ ॥

ओं ह्रीं पादानुसारिबुद्धिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

कालादियोगमनुसृत्य यथासमस्त कोटिप्रदं भवति वीजमनिंद्रियादि ।
वीर्यांतरायशमनक्षयहेत्वनेकपादावधारणमतीन् परिपूजयामि ॥ ६६३ ॥

जैसे देश काल क्षेत्र आदिका योगनै अनुसरण करि जो वीज बोया होय सो कोटि वोज देनेवाला होय तैसैं मन इंद्रिय वीर्यांतरायका प्रशम तथा क्षय आदि हेतु करि अनेक पदका धारण ग्रहण बुद्धिप्राप्त साधु होय तिननै मैं पूजू हूं ॥ ६६३ ॥

ओं ह्रीं बीजबुद्धिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ये चक्रिसैन्यगजवाजिखरोष्ट्रमर्त्यनानाविधस्वनगणं युगपत् पृथक्त्वात् ।
गृह्णांति कर्णपरिणामवशान्मुनींद्रास्तानर्घयामि क्रतुभागसमर्पणेन ॥ ६६४ ॥

अरु जे चक्रवर्तीकी सेनामैं खर गज घोड़ा ऊंट मनुष्य आदिका स्वर शब्दका समुहनै एकै काल न्यारा न्यारा कर्ण इंद्रियका परिणामवशतै ग्रहण करै है तिनि मुनींद्रनिनै यज्ञभागका समर्पण करि मैं पूजू हूं अर्घोद्धार करू हूं ॥ ६६४ ॥

ओं ह्रीं संभिन्नश्रोत्रऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

दूरस्थितान्यपि सुमेरुविधुप्रभास्वत्सन्मंडलानि करपादनखांगुलीभिः ।
संस्पर्शशक्तिसहितर्द्धिवशात् स्पृशंतस्तान् शक्तियुक्तपरिणामगतान् यजामि ॥ ६६५ ॥

अरु दूर प्रदेशमें स्थित भी मेरु चंद्रमा सूर्यका मंडल जे है तिनिने स्पर्शन शक्ति सहित ऋद्धिका वशतैं हाथ पाद नख अंगुलीनिकरि स्पर्श करते अरु तिस शक्ति परिणामें साधुने मैं पूजू हूं ६६५ ॥

ओं ह्रीं दूरस्पर्शशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

नास्वादयंति न च तत्सदने समीहा तत्रापि शक्तिरमितेति रसग्रहादौ ।
ऋद्धिप्रवृद्धिसहितात्मगुणान् सुदूरस्वादावभासनपरान् गणपान् यजामि ॥ ६६६ ॥

अरु जो मुनीद्र नहीं तो आप स्वाद लेवै है अरु नही तिनका स्वादमें वांछा है तथापि तिसका ग्रहणमें शक्ति प्रबल होय तिस ऋद्धिकी वृद्धि सहित आत्मगुणयुक्त दूरास्वादनमें समर्थ ऐसे मुनिनिनै मैं पूजू हूं ॥ ६६६ ॥

ओं ह्रीं दूरास्वादनशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

उत्कृष्टनासिकहृषीकगतिं विहाय तत्स्थोर्ध्वगंधसमवायनशक्तियुक्तान् ।
उत्कृष्टभागपरिणामविधौ सुदूरगंधावभासनमतौ नियतान् यजामि ॥ ६६७ ॥

अरु जे नासिका इंद्रियकी उत्कृष्ट गति है ताकूं भी छोड़ि अधिक स्थानमें गंधका ग्रहणकी शक्तियुक्त जे हैं तिननैं अरु उत्कृष्ट गंधका अनुभागका प्रकाशमें अरु निश्चयरूप ऐसे मुनींद्रनिनें मैं पूजू हूं ॥ ६६७ ॥

ओं ह्रीं दूरघ्राणविषयग्राहकशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

निर्णीतपूर्णनयनोत्थहृषीकवार्ता चक्रेश्वरस्य नियता तदधिक्यभावात् ।
दूरावलोकनजशक्तियुतान् यजामि देवेंद्रचक्रधरणींद्रसमर्चितांह्रिं ॥ ६६८ ॥

अरु जो निर्णय किया परिपूर्ण नेत्र इंद्रियका विषयकी वार्ता चक्रवर्तीके नियत है अरु तासैं अधिक भावतैं दूर देखनेकी शक्तिसंयुक्त अरु देवेंद्र चंद्र धरणीधरनितें पूजित चरण जिनके ऐसे मुनींद्रने मैं पूजू हूं ॥ ६६८ ॥

ओं ह्रीं दूरावलोकनशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

श्रोत्रेंद्रियस्य नवयोजनशक्तिरिष्टा नातः परं तदधिकावनिसंस्थशब्दान् ।
श्रोतुं प्रशक्तिरुदयत्यतिशायिनी च येषां तु पादजलजाश्रयणं करोमि ॥ ६६९ ॥

अरु कर्ण इंद्रियकी उत्कृष्ट नवयोजन प्रमाण शक्ति इष्ट है अरु अधिक पृथ्वीमें रहते शब्दनिनै सुणवेकी अतिशय शक्ति जिनके उदयमें होय तिन साधुनिका पद कमलका आश्रय करू हूं ॥ ६६९ ॥

ओं ह्रीं दूरश्रवणशक्तिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

अभ्यासयोगविहितावपि यन्मुहूर्तमात्रेण पाठयति दिग्भ्रमपूर्वसार्थं ।
शब्देन चार्थपरिभावनया श्रुतं तच्छक्तिप्रभूनधियजामि मखस्य सिद्धयै ॥ ६७० ॥

अरु जे अभ्यासकिये विना ही मुहूर्त्त मात्रकरि दश पूर्वनै पढै हैं शब्द अरु अर्थकी भावनाकरि ता श्रुतकी शक्तिसंयुक्त प्रभूनिनै यज्ञकी सिद्धि अर्थि पूजू हूं ॥ ६७० ॥

ओं ह्रीं दशपूर्वित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

एवं चतुर्दशसुपूर्वगतंश्रुतार्थं शब्देन ये ह्यमितशक्तिमुदाहरंति ।
तानत्र शास्त्रपरिलब्धिविधानभूतिसंपत्तयेऽहमधुनार्हणया धिनोमि ॥ ६७१ ॥

अरु ह्री चतुर्दश सुंदर पूर्वगत श्रुतका अर्थने शब्द करि सहित उदाहरण करै तिनकूं शास्त्रकी प्राप्तिका विधान संपदाके निमित्त मैं अब भी पूजा करि प्रसन्न करू हूं ॥ ६७१ ॥

ओं ह्रीं चतुर्दशपूर्वित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

अन्योपदेशविरहेऽपि सुसंयमस्य चारित्रकोटिविधयः स्वयमुद्भवंति ।
प्रत्येकबुद्धमतयः खलु ते प्रशस्यास्तेजां मनाक् स्मरणतो मम पापनाशः ॥ ६७२ ॥

अरु अन्य गुरु जनका उपदेश विरहमें भी संयमकी चारित्र कोटि विधान जे है ते स्वतः ही प्रकट होय हैं ते प्रत्येकबुद्धिपति हैं तिनकी प्रशंसा करि मेरा पापका नाश स्मरणतैं होय है ॥ ६७२ ॥

ओं ह्रीं प्रत्येकबुद्धत्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

न्यायागमस्मृतिपुराणपठित्यभावेऽप्याविर्भवंति परवादविदारणोद्धाः ।
वादित्वबुद्धय इति श्रमणाः स्वधर्मं निर्वाहयंति समये खलु तान् यजामि ॥ ६७३ ॥

अरु जे न्याय आगम स्मृति पुराणनिके पठनका अभावमें भी परवादिनिके मान विदीर्ण करै हैं उन वादित्वबुद्धिसंयुक्त मुनिनकूं मैं ...नु हूं ॥ ६७३ ॥

ओं ह्रीं वादित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

जंघाग्निहेतिकुसुमच्छदतंतुवीजश्रेणीसमाजगमना इति चारणांकाः ।
ऋद्धिक्रियापरिणता मुनयः स्वशक्तिसंभावितास्त इह पूजनमालभंतु ॥ ६७४ ॥

अरु जंघाचारण अग्निशिखाचारण पुष्पचारण पत्रचारण तंतुचारण वीजचारण श्रेणीचारण ये अपने अपने समाजकरि निमित्तमात्र चारण अंकधारी हैं ते ये क्रिया परिणत ऋद्धिधारी अपनी शक्तिकरि संभावनायुक्त मुनींद्र यहां यज्ञमें पूजाने प्राप्त होउ ॥ ६७४ ॥

ओं ह्रीं जलजंघातंतुपुष्पपत्रवीजश्रेणीवह्न्यादिनिमित्ताश्रयचारणऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

आकाशयाननिपुणा जिनमंदिरेषु मेर्वाद्यकृत्रिमधरासु जिनेशचैत्यान् ।
बंदंत उत्तमजनानुपदेशयोगानुद्धारयंति चरणौ तु नमामि तेषां ॥ ६७५ ॥

अरु जे आकाशगमनमें निपुण अरु जिनमंदिरनिमें मेरु आदि अकृत्रिम पृथ्वीमें जिनेंद्र चैत्य हैं तिननै बंदना करते अरु उपदेशके योगतैं उत्तम भव्यजननै उद्धारते हैं उनका चरणकूं मैं नमू हूं ॥ ६७५ ॥

ओं ह्रीं आकाशगमनशक्तिचारणर्द्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ऋद्धिः सुविक्रियगता बहुलप्रकारा तत्र द्विधाविभजनेष्वणिमादिसिद्धिः ।
मुख्यास्ति तत्परिचयप्रतिपत्तिसंज्ञान् यायज्मि तत्कृतविकारविवर्जितांश्च ॥ ६७६ ॥

अरु विक्रियागत ऋद्धि बहोत प्रकार है तिनमैं दोय प्रकार विभागमें अणिमादि शक्ति मुख्य है तिनका परिचयकी प्राप्तिके मंत्ररूप अरु ताका किया विकारकूं नहीं चाहते तिनिमुनींद्रनै पूजू हूं ॥ ६७६ ॥

ओं ह्रीं अणिमामहिमलघिमगरिमप्राप्तिप्राकाम्यवशित्वेशित्वऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

अंतर्दधिप्रमुखकामविकीर्णशक्तियेषां स्वयं तपस उद्भवति प्रकृष्टा ।
तद्विक्रियाद्वितयभेदमुपागतानां पादप्रधावनविधिर्मम पातु पाणिं ॥ ६७७ ॥

अंतर्धान आदि अर कामेच्छाचारी नाना शक्ति जिनके स्वतैही प्रकृष्ट तपका प्रभावतैं प्रकट होय है सो विक्रियाका दूसरा भेदनै प्राप्त भये तिनका चरणपूजाविधि है सो मेरा हस्तने पवित्र करो ॥ ६७७ ॥

ओं ह्रीं विक्रियायां अंतर्धानादिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

षष्ठाष्टमादिदशपक्षकमासमात्रानुष्ठेयभुक्तिपरिहारमुदीर्य योगं ।
आमृत्युमुग्रतपसा ह्यनिवर्तकास्ते पांत्वर्चनाविधिमिमं परिलंभयंतु ॥ ६७८ ॥

अरु वेलो तेलो वारा तथा पक्ष महीना आदि अनुष्ठान योग्य आहारको सागनै ग्रहण करि मृत्युपर्यंत तिस योगकूं नहीं निवर्तनकरें ते उग्र तप ऋद्धिके धारी येह मेरी पूजाविधि दिईने प्राप्त होऊ ॥ ६७८ ॥

ओं ह्रीं उग्रतपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

घोरोपवासकरणेऽपि बलिष्ठयोगान् दौर्गंध्यविच्युतमुखान् महदीप्तदेहान् ।
पद्मोत्पलादिसुरभिस्वसनान्मुनींद्रान् यायज्मि दीप्ततपसो हरिचंदनेन ॥ ६७६ ॥

घोर वीर उपवास किया भी बलवान है योग कहिये मन वचन काय जिनके अरु दुर्गंधतारहित मुख जिनको अरु कांतिकरि देदीप्यमान है देह जिनको अरु कमल अरु नील कमल चंदन आदिवत् सुगंध श्वासोच्छ्वास जिनके ऐसे मुनींद्र दीप्त तप ऋद्धिधारिनिनै मैं हरिचंदन-करि पूजू हूं ॥ ६७६ ॥

ओं ह्रीं दीप्ततपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

वैश्वानरौघपतितांबुकणेन तुल्यमाहारमाशु विलयं ननु याति येषां ।
विरामूत्रभावपरिणाममुदेति नो वा ते संतु तप्ततपसो मम सद्विभूत्यै ॥ ६८० ॥

अरु जिनके आहार भोजनादि शीघ्र ही अग्निमें पड्या जल कण समान विलय होय अरु विष्ठा मूत्र,कफ आदि रूप नहीं परिणमै वे तप्त तप मुनींद्र मेरे मोक्ष विभूति अर्थि होहु ॥ ६८० ॥

ओं ह्रीं तप्ततपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

हारावलीप्रभृतिघोरतपोऽभियुक्ताः कर्मप्रमाथनधियो यत उत्सहंते ।
ग्रामाटवीष्वशनमप्यतिपातयंति ते संतु कार्मणतृणाग्निचयाः प्रशांत्यै ॥ ६८१ ॥

अरु जे मुक्तावली हारावली सिंहनिःक्रीडित आदि तपके धारी क निका नाशके अर्थि यातैं उत्साह स्वभाव होय है अरु ग्राम वनी आदिमें भी भोजन नहीं ग्रहण करैं ते कर्मनिका समूहरूप तृणमैं अग्निचय समान मुनींद्र मेरे प्रशांतिभावके अर्थि होहु ॥ ६८१ ॥

ओं ह्रीं महातपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

कासज्वरादिविविधोग्ररुजादिसत्त्वेष्वप्यच्युतानशनकायदमान् श्मशाने ।
भीमादिगह्वरदरीतटिनीषु दुष्टसंक्लृसबाधनसहानहमर्चयामि ॥ ६८२ ॥

अरु जे काश ज्वर श्वास आदि नाना प्रकार रोग होत संते भी नहीं च्युत किया उपवास और शरीरको दमन जिननै अरु श्मशानमें तथा भयानक पर्वतनिकी गुफा कंदरा नदीनिमें दुष्ट प्राणीकृत परीषहनिनै सहनेवारे मुनींद्रननैं मैं पूजू हूं ॥ ६८२ ॥

ओं ह्रीं घोरतपऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

पूर्वोदितासु विधियोगपरंपरासु स्फारीकृतोत्तरगुणेषु विकाशवत्सु ।
येषां पराक्रमहतिर्न भवेत्तमर्चे पादस्थलीमिह सुघोरपराक्रमाणां ॥ ६८३ ॥

अरु पूर्व कहे सर्वयोग समूहनै होतां विशद किया है उत्तर गुणविकाश जिननै तिनके कदाचित् भी पराक्रमकी हानि नहीं होय तिन घोर पराक्रमधारी मुनींद्रनिकी पादस्थलीनै पूजू हूं ॥ ६८३ ॥

ओं ह्रीं घोरपराक्रमगुणऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

दुःस्वप्नदुर्गतिसुदुर्मतिदौर्मनस्त्वमुख्याः क्रिया व्रतविघातकृते प्रशस्ताः ।
तासां तपोविलसनेन समूलकाषंघातोऽस्ति ते सुरसमर्चितशीलपूज्याः ॥ ६८४ ॥

अरु जिनकै दुष्ट स्वप्न अरु दुर्गति अरु बुद्धि अरु मनका संकल्पको दुष्टपणो आदि व्रतका नाशमें प्रशस्त ऐसी जे क्रिया हैं तिनको तपका प्रकाशकरि निर्मूल हुवा ते देवनिकरि पूजित शीलकरि पूज्य हैं ॥ ६८४ ॥

ओं ह्रीं घोरब्रह्मचर्यगुणऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

अंतर्मुहूर्त्तसमये सकलश्रुतार्थसंचितनेऽपि पुनरुद्भटसूत्रपाठाः ।
स्वच्छा मनोऽभिलषिता रुचिरस्ति येषां कुर्यान्मनोबालिन उत्तममांतरं मे ॥ ६८५ ॥

अरु जे अंतर्मुहूर्तमात्रकालमैं संपूर्ण शास्त्रका संचितनमें भी पुन दूणो भयो है शास्त्रको पाठ जिनकै अरु स्वच्छ मनकी रुचि जिनकै होय ते मनोवली मेरा अंतरंगने उत्तम करो ॥ ६८५ ॥

ओं ह्रीं मनोवलऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

जिह्वाश्रुतावरणवीर्यशमक्षयात्तावंतर्मुहूर्त्तसमयेषु कृतश्रुतार्थाः ।
प्रश्नोत्तरोत्तरचयैरपि शुद्धकंठदेशाः सुवाक्यबलिनो मम पांतु यज्ञं ॥ ६८६ ॥

अरु जे जिह्वा इंद्रिय तथा श्रुतावरण अरु वीर्यांतराय कर्मका क्षयोपशमकी प्राप्तिमैं अंतर्मुहूर्त्त कालमैं समस्त शास्त्रका अर्थचिंतन करैं अरु प्रश्नोत्तरनिका उत्तरसंचयनकरि शुद्ध कंठ प्रदेश हैं ते वचनवली मुनींद्र मेरा यज्ञकी रक्षा करो ॥ ६८६ ॥

ओं ह्रीं वचनवलऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

मेर्वादिपर्वतगणोद्धरणेषु शक्ता रक्षःपिशाचशतकोटिबलाधिवीर्याः ।
मासर्तुवत्सरयुगाशनमोचनेऽपि हानिर्न कायबलिनः परिपूजयामि ॥ ६८७ ॥

अरु मेरु आदि पर्वतनिका गणका उठायनेमैं समर्थ अरु राक्षस भूत पिशाचनिका कोटि सैंकडाका पराक्रमतैं अधिक है वीर्य जिनका अरु महीना दोय महीना संवत् युग आदि पर्यंत भोजनका त्यागमैं भी जिनका शरीरवज्रकी हानि नहीं होय ते कायवली मुनींद्र है तिनिनै पूजूं हूं ॥ ६८७ ॥

ओं ह्रीं कायवलऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

स्पर्शात्करांह्रिजनिताद् गदशांतनं स्यादामर्षजा यव इति प्रतिपत्तिमासान् । (?)
येषां च वायुरपि तत्स्पृशतां रुजार्तिनाशाय तन्मुनिवराग्रधरां यजामि ॥ ६८८ ॥

अरु जिनका हाथ अंगुलीनका स्पर्शतैं रोगको शांति होय तातैं आमर्ष ही औषधि है असा नाम पाया है अर जिनका पवन भी स्पर्श करने-वालोंकूं रोगपीडाका नाशके अर्थि होय है तिनि मुनिवरनिकी अग्रभूमिनै मैं पूजूं हूं ॥ ६८८ ॥

ओं ह्रीं आमर्षौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम्।

निष्ठीवनं हि मुखपद्मभवं रुजानां शांत्यर्थमुत्कटतपोविनियोगभाजां।

क्ष्वेलौषधास्त इह संजनितावतारा: कुर्वंतु विघ्ननिचयस्य हतिं जनानां ॥ ६८९ ॥

अरु जिनका मुखकमलतैं उत्पन्न हुवा निष्ठीवण रोगनिकी शांतिके अर्थि होय है ते क्ष्वेलौषध हैं, तिन उत्कृष्ट तपका नियोग भजनेवारे अरु सफल है जन्म जिनका ते विघ्नसमूहका निवारण मनुष्यनिका करो ॥ ६८९ ॥

ओं ह्रीं क्ष्वेलौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं।

स्वेदावलंबितरजोनिचयो हि येषामुत्क्षिप्य वायुविसरेण यदंगमेति।

तस्याशु नाशमुपयाति रुजां समूहो जल्लौषधीशमुनयस्त इमे पुनंतु ॥ ६९० ॥

अरु जिनका प्रस्वेदकरि संचित रजका समूह पवनका फैलावकरि उड़िकरि जिनका शरीरनै स्पर्श है तिनका रोगनिका समूह है सो नाशने प्राप्त होय है ते जल्लौषधि ऋद्धिधारी मुनींद्र मोनै पवित्र करो ॥ ६९० ॥

ओं ह्रीं जल्लौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम्।

नासाक्षिकर्णरदनादिभवं मलं यन्नैरोग्यकारि वमनज्वरकासभाजां।

तेषां मलौषधसुकीर्तिजुषां मुनीनां पादार्चनेन भवरोगहतिर्नितांतं ॥ ६९१ ॥

अरु नासिका नेत्र कर्ण दांत आदिका मल रोगी ज्वर काश वमनवारेनिको नीरोगता करनेवारा है तिनि मलौषधि ऋद्धिकी कीर्तिकूं भजनेवारे मुनींद्रका. पादारविंदका अर्चनकरि अतिशय रोगकी हानि होय है ॥ ६९१ ॥

ओं ह्रीं मलौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घ।

उच्चार एव तदुपाहितवायुरेणू अंगस्पृशौ च निहतः किल सर्वरोगान्।
पादप्रधावनजलं मम मूर्ध्निपातं किं दोषशोषणविधौ न समर्थमस्तु ॥ ६९२ ॥

अरु जिनका मलनिपात है सो ताको स्पर्शकिई पवनअररेणु है ते जाका अंगकूं स्पर्श करैं तदि सर्व रोगनिने हते हैं तिनका चरणारविंद-का धोयो जल मेरा मस्तकमैं प्राप्त हूवो कहा दोषका शोषण विधिमें समर्थ नहीं होय, अपि तु होय ही होय ॥ ६९२ ॥

ओं ह्रीं विडौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम्।

प्रत्यंगदंतनखकेशमलादिरस्य सर्वो हि तन्मिलितवायुरपि ज्वरादि।
कासापतानवमिशूलभगंदराणां नाशाय ते हि भविकेन नरेण पूज्याः ॥ ६९३ ॥

अरु जाका अंग दंत नख केश मल आदि सब ही तथा तिनका स्पर्श कियो पवन है सो ज्वर आदि कास अरु अपतान कहिये मृगी वमन शूल भगंदरनिका नाशके वास्तैं होय ते मुनि कौन भव्यकरि पूज्य नहीं होय अर्थात् होंय ही होंय ॥ ६९३ ॥

ओं ह्रीं सर्वौषधिऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं।

येषां विषाक्तमशनं मुखपद्मयातं स्यान्निर्विषं खलु तदंह्रिधरापि येन।
स्पृष्टा सुधा भवति जन्मजरापमृत्युध्वंसो भवेत्किमु पदाश्रयणे न तेषाम् ॥ ६९४ ॥

अरु जिनका विषमिलित अशन हूं मुख कमलने प्राप्त हूवा निर्विष होय तथा तिनको पादतल पृथ्वी भी अमृतरूप होय ताकरि तिनिका पादारविंदका आश्रयकरि जन्म जरा मृत्युको नाश होय है ॥ ६९४ ॥

ओं ह्रीं आस्याविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं।

येषां सुदूरमपि दृष्टिसुधानिपातो यस्योपरिस्खलति तस्य विषं सुतीव्रं।

अप्याशु नाशमयते नयनाविषास्ते कुर्वंत्वनुग्रहमसी क्रतुभागभाजः ॥ ६९५ ॥

जिनको दूर भी दृष्टिरूप अमृतवर्षणा जाके ऊपर पडि जाय तो तीव्र भी विष शीघ्र ही नाशकूं प्राप्त होय है ते नेत्राविष ऋद्धिधारी यें यज्ञका भागने भोगिवावाला मेरे ऊपरि कृपादृष्टि करो ॥ ६९५ ॥

ओं ह्रीं दृष्टयविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

ये यं ब्रुवंति यतयोऽकृपया म्रियस्व सद्यो मृतिर्भवति तस्य च शक्तिभावात् ।
येषां कदापि न हि रोषजनिर्घटेत व्यक्ता तथापि यजतास्यविषान् मुनींद्रान् ॥ ६९६ ॥

अरु जे साधु रोषकरि जिसप्रति कहै कि तू मरि तो तत्काल मरिजावे ये कथन शक्तिस्वभावमात्र है उनके कदापि रोषकी उत्पत्ति नहीं व्यक्ति अपेक्षा घड़ै तथापि शक्ति अपेक्षा है, तिनि मुनींद्र आशीविष ऋद्धिधारीनिन पूजन करो ॥ ६९६ ॥

ओं ह्रीं आशीविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

येषामशातनिचयः स्वयमेव नष्टोऽन्येषां शिवोपचयनात्सुखमाददानाः ।
ते निग्रहाक्तमनसो यदि संभवेयुर्दृष्टयैव हंतुमनिशं प्रभवो यजे तान् ॥ ६९७ ॥

अरु जिनका असाताको समूह आप ही नष्ट हूवो अर अन्यनिकूं कल्याणके देनेतैं सुखकूं देनेवारे हैं अर निग्रहमें मन करैं तो दृष्टि क्रूर करि मारिवेकूं समर्थ हैं तिनि मुनींद्रनै पूजूं हूं ॥ ६९७ ॥

ओं ह्रीं दृष्टिविषऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

क्षीराश्रवर्द्धिमुनिवर्यपदांबुजात्तद्वंद्वाश्रयाद् विरसभोजनमप्युदश्चित् ।
हस्तार्पितं भवति दुग्धरसाक्तवर्णास्वादं तदर्चनगुणामृतपानपुष्टाः ॥ ६९८ ॥

अर क्षीरस्रावी ऋद्धिधारी मुनिवरके चरणाविंदयुगलका आश्रयत हस्तने प्राप्त विरस भोजन है सो दुग्धका रससंयुक्त बलवान् तथा स्वादवान् होय तिनि मुनींद्रका पूजन गुणरूप अमृतका पानकरि पुष्ट हम होहु ॥ ६९८ ॥

ओं ह्रीं क्षीरश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घं ।

येषां वचांसि बहुलार्तिजुषां नराणां दुःखप्रघातनतयापि च पाणिसंस्था ।
भुक्तिर्मधुस्वदनवत् परिणामवीर्यास्तानर्चयामि मधुसंश्रविणो मुनींद्रान् ॥ ६९९ ॥

अरु जिनका वचन वहोत पीडायुक्त पुरुषनिका दुःखका घातनपणाकरि अरु जिनका हाथमें प्राप्त भोजन मधुर स्वादयुक्त होय ते परिणामनमें पराक्रमधारी हैं तिनि मधुस्रावी मुनींद्रननिने मैं पूजू हूं ॥ ६९९ ॥

ओं ह्रीं मधुश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

रुक्षान्नमर्पितमथो करयोस्तु येषां सर्पिःस्ववीर्यरसपाकवदाविभाति ।
ते सर्पिराश्रविण उत्तमशक्तिभाजः पापाश्रवप्रमथनं रचयंतु पुंसाम् ॥ ७०० ॥

अरु जिनका हस्तमें अर्पित रुक्ष अन्न है सो घृतका रसरूप स्वपाकवान शोभित होय ते घृतश्रावी उत्तम शक्तिके धारी पुरुषनिका पापाश्रवकौं नाशनै रचौ ॥ ७०० ॥

ओं ह्रीं घृतश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योर्घम् ।

पीयूषमाश्रवति यत्करयोर्धृतं सद् रूक्षं तथा कटुकमम्लतरं कुभोज्यं ।
येषां वचोऽप्यमृतवत् श्रवसोर्निधत्तं संतर्पयत्यसुभृतामपि तान् यजामि ॥ ७०१ ॥

अरु जिनका हातमें धरयो हुवो रूक्ष अन्न तथा कटुक खाटो भी कुभोजन अमृतने श्रवे अरु जिनिको वचन कर्णनिमें धार्यो संतो प्राणीनिकूं अमृतसमान तर्पित करै तिनि मुनींद्रनिनै मैं पूजू हूं ॥ ७०१ ॥

ओं ह्रीं अमृतश्राविऋद्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम् ।

यद्दत्तशेषमशनं यदि चक्रवर्तिसेनाऽपि भोजयति सा खलु तृप्तिमेति।
तेऽक्षीणशक्तिललिता मुनयो दृगाध्वजाता ममाशु वसुकर्महरा भवंतु ॥ ७०२ ॥

अरु जाके अर्थि दियो भोजन कदाचित् चक्रवर्तीकी सेना भी भोजन करै सो भी तृप्तिनै प्राप्त होय ते अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी मुनींद्र मेरा नेत्रकमलका मार्ग प्राप्त हुवा संता आठ कर्मनिके हरनवारे होहु ॥ ७०२ ॥

ओं ह्रीं अक्षीणमहानसर्द्धिप्राप्तेभ्योऽर्घम्।

यत्रोपदेशसरसि प्रसरच्युतेऽपि तिर्यग्मनुष्यविबुधाः शतकोटिसंख्याः।
आगत्य तत्र निवसेयुरबाधमानास्तिष्ठंति तान्मुनिवरानहमर्चयामि ॥ ७०३ ॥

अर जिनकी उपदेशसभा फैलावरहित होय तथापि तिसमैं कोटि सैकड्या मनुष्य अरु देव आय तहां सुखपूर्वक बाधारहित तिष्ठैं तिनि मुनींद्रनिनै मैं पूजू हूं ॥ ७०३ ॥

ओं ह्रीं अक्षीणमहालयऋद्धिधारकेभ्योऽर्घम्।

इत्थं सत्तपसः प्रभावजनिताः सिद्ध्यृद्धिसंपत्तयो
येषां ज्ञानसुधाप्रलीढहृदयाः संसारहेतुच्युताः।
रोहिण्यादिविधाविदोदितचमत्कारेषु संनिःस्पृहा
नो वांछंति कदापि तत्कृतविधिं तानाश्रये सन्मुनीन् ॥ ७०४ ॥

ऐसैं समीचीन तपका प्रभावसे उत्पन्न भई सिद्धिऋद्धि हैं ते ज्ञानामृत पुष्टहृदय अर संसारीक प्रयोजनरहित होय हैं ते रोहिणी आदि महाविद्याकृत प्रभाव चमत्कारमैं निःस्पृह कदापि तिनिका आश्रयनै नही वांछै तिनि मुनींद्रनै मैं पूजू हूं ॥ ७०४ ॥

ओं ह्रीं सकलऋद्धिसंपन्नसर्वमुनिभ्यः पूर्णार्घं।

अत्रैव चतुर्विंशतितीर्थेशां चतुर्द्दशशतं मतं ।
सत्रिपंचाशता युक्तं गणिनां प्रयजाम्यहं ॥ ७०५ ॥

चौईस तीर्थंकरनिका चौदहसै त्रेपन संख्यावाले गणधर महाराजनै पूजू हूं ॥ ७०५ ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंश्वराग्रिमसमावर्तिसत्रिपंचाशच्चतुर्दशशतगणधरमुनिभ्योऽर्घं ।

मदवेदनिधिद्व्यग्रखत्रयांकान्मुनीश्वरान् ।
सप्तसंघेश्वरांस्तीर्थकृत्सभानियतान्यजे ॥ ७०६ ॥

अरु सभानिवासी उनतीस लाख अडतालीस हजार नियत मुनीनै मैं पूजू हूं ॥ ७०६ ॥

ओं ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थंकरसभासंस्थायि एकोनत्रिंशल्लक्षाष्टचत्वारिंशत्सहस्रप्रमितमुनींद्रेभ्योऽर्घं ।

अथ चतुर्दिक्षु जिनचैत्यचैत्यालयागमधर्माणां चत्वार्यर्घाणि देयानि तथाहि—

अथ च्यारू दिशा कौनमें च्यारि अर्घ सो ऐसे हैं—

अकृत्रिमाः श्रीजिनमूर्त्तयो नव सपंचविंशाः खलु कोटयस्तथा ।
लक्षास्त्रिपंचाशमितास्त्रिसगुणाः कृष्णाः सहस्राणि शतं नवानां ॥ ७०७ ॥
द्विहीनपंचाशदुपात्तसंख्यकाः प्रणम्य ताः पूजनया महाम्यहं ।

अकृत्रिम नौसै पचीस कोटि त्रेपन लक्ष सताईस हजार नौसै अडचालीस श्री जिनमूर्ति जे हैं तिनिनै मैं नमस्कारकरि पूजू हूं ॥ ७०७ ॥

ओं ह्रीं नवशतपंचविंशतिकोटित्रिपंचाशल्लक्षसप्तविंशतिसहस्रनवशताष्टचत्वारिंशत्प्रमितअकृत्रिमजिनबिंबेभ्योऽर्घं ।

अष्टौ कोट्यस्तथा लक्षाः षट्पंचाशमितास्तथा ।

सहस्रं सप्तनवतेरेकाशीतिश्चतुःशतं ॥ ७०८ ॥

एतत्संख्यान् जिनेंद्राणामकृत्रिमजिनालयान् ।

अत्राहूय समाराध्य पूजयाम्यहमध्वरे ॥ ७०६ ॥

अरु आठकोडि छप्पन लाख सत्ताणवे हजार च्यारिसे इक्यासी एतत्संख्यावारे जिनेंद्रके अकृत्रिम जिनालय जे हैं तिनिनै इस यज्ञमें आह्वाननकरि अरु समाराधनकरि मैं पूजू हूं ॥ ७०८-७०६ ॥

ओं ह्रीं अष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशत एकाशीतिसंख्याकृत्रिमजिनालयेभ्योऽर्घम् ।

यो मिथ्यात्वमतंगजेषु तरुणक्षुन्नुन्नसिंहायते

एकांतातपतापितेषु समरुत्पीयूषमेघायते ।

श्वभ्रांधप्रहिसंपतत्सु सदयं हस्तावलंबायते

स्याद्वादध्वजमागमं तमभितः संपूजयामो वयं ॥ ७१० ॥

अरु जो मिथ्यात्वरूप हस्तीनिमैं युवान अरु भूखकरि पीडित दुष्ट सिंहके समान है अरु एकांतरूप आतापकरि तप्तायमाननिमैं पवनसंयुक्त मेघके समान है अरु नरकरूप कुवायें डूबते प्राणीनिमैं सदय होय तसैं हस्तका आलंबन देनेवारा है ऐसा स्याद्वादरूप ध्वजायुक्त आगम जो है ताहि सर्वत्र हम पूजैं हैं ॥ ७१० ॥

ओं ह्रीं स्याद्वादमुद्रांकितपरमजिनागमायार्घम् ।

जिनेंद्रोक्तं धर्मं सुदशयुतभेदं त्रिविधया स्थितं सम्यक्रत्नत्रयलतिकयाऽपि द्विविधया ।

प्रणीतं सागारेतरचरणतो ह्येकमनघं दयारूपं बंदे मखभुवि समास्थापितमिमं ॥७११॥

अरु दशभेद संयुक्त उत्तमक्षमादिरूप अरु सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र प्रकारतैं तीन प्रकार अरु मुनि श्रावक भेदतैं दोय प्रकार अरु दयारूप निःपापकरि एक ऐसा जिनधर्मनै यज्ञभूमिमैं स्थापन प्राप्त हूवानै मैं बंदूं हूं ॥ ७११ ॥

ओं ह्रीं दशलक्षणोत्तमादित्रिलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप तथा मुनिगृहस्थाचारभेदेन द्विविध तथा दयारूपत्वे नैकरूपजिनधर्माय अर्घम् ।

यागमंडलसमुद्धृता जिनाः सिद्धवीतमदनाः श्रुतानि च ।
चैत्यचैत्यगृहधर्ममागमं संयजामि सुविशुद्धिपूर्तये ॥ ७१२ ॥

इस यागमंडलमें उद्धार किया जिनेंद्रदेव हैं ते तथा सिद्धिरूप वीतराग गुरु जे हैं ते तथा चैत्य चैत्यालय आगम धर्म जे हैं तिनिकों विशुद्धिकी परिपूर्णता निमित्त मैं पूजू हूं ॥ ७१२ ॥

ओं ह्रीं सर्वयागमंडलदेवताभ्यः पूर्णार्घम् ।

शांतिः पुष्टिरनाकुलत्वमुदितश्राजिष्णुताविष्कृतिः
संसारार्णवदुःखदावशमनं निःश्रेयसोद्भूतिता ।
सौराज्यं मुनिवर्यपादवरिवस्याप्रक्रमो नित्यशो
भूयादभ्रशराक्षिनायकमहापूजाप्रभावान्मम ॥ ७१३ ॥

यह दोयमें पंचास महानायक पूजाका प्रभावतैं भव्यनिकै शांति होय पुष्टि होय अनाकुलपना होय तेजस्विताकी प्राप्ति होय अरु संसार समुद्रमें दुःखरूप दावानलको शमन होय अरु कल्याणकी उत्पत्ति होय अरु सुंदर राज्य अरु मुनिवर चरण पूजाको अनुक्रम सदाकाल होय ॥ ७१३ ॥

इत्याशीर्वादं पठित्वा पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

ऐसें सर्ववलयकोणमैं पुष्पांजलिरूप आशीर्वाद देना ।

ततोऽत्राचार्यार्हद्भक्तिसिद्धश्रुतचारित्रभक्तिपाठं कृत्वा महार्घं दद्यात् ।

अब इहां यजमान अरु आचार्य दोन्यूं आचार्यभक्ति अर्हद्भक्ति सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति चारित्रभक्ति पाठ करै अरु अर्घ देव ॥

अथ पंचकल्याणकारोपमनुक्रमिष्यामः ।

अथ पंच कल्याणनिका आरोपनै अनुक्रमकरि कहै हैं—

कल्याणपंचकमनुक्रमतः सुरेंद्राः कृत्वा स्वजन्मवहनं सफलं गणंतः ।
तत्पंचकावतरणे विधृतिक्रियार्था धन्या भवाम इति तान्यनुभावयामः ॥ ७१४ ॥

सुरेंद्र हैं ते अपना जन्मनै सफल मानते जिनेंद्रका पंचकल्याण अनुक्रमतें करि अर तिसपंचल्याणका अवतरणमें जो जो क्रिया अर्थ धारण करें अर धन्य मान है तिनिनै हम भी अनुभवन करै है ॥ ७१४ ॥

इत्युक्त्वा पुष्पांजलिक्षेपः ।

ऐसे पढ़ि पुष्पांजलि क्षेपण करना ।

मंत्र ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं । ओं जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नंद नंद नंद अनुसाधि अनुसाधि पुनीहि पुनीहि पुनीहि मांगल्यं मांगल्यं मांगल्यं शांतिरस्तु ।

मंगलं जिननामानि मंगलं मुनिसेवनं ।
मंगलं श्रुतमध्येयं मंगलं विंबनिर्मितिः ॥ ७१५ ॥

जिनेंद्रके जितने नाम हैं, ते सर्व मंगल हैं, अर वीतराग मुनिनिको सेवन है सो मंगल है अर अध्ययनयोग्य श्रुत कहिये आप्तवाक्य ते मंगल हैं अर भगवानका विंबकी प्रतिष्ठा है सो मंगलरूप है ॥ ७१५ ॥

——:※:——

तावदत्र शचीकल्पनं ।

प्रथम इंद्राणीका स्थापन कहिये है—

सौभ्याग्यामलचारुभूषणचरित्रालंकृतां पावनीं
कल्पद्रुवासवभामिनीं व्रतगुणैः शीलैर्महाशोभनां ।
अन्यां वा कृतिकर्मसंग्रहकरीं योग्यामुदीक्ष्य ध्रुवं
संदीक्षाव्रतशुद्धये वितनुतामाचार्यवर्यः स्वयं ॥ ७१६ ॥

आचार्य आप दीक्षा जो प्रतिष्ठारूप व्रतकी शुद्धि अर्थि सौभाग्य ही अमल सुंदर भूषण अर चरित्र ताकरि आलंकृत. सुंदर भूषण अरु चारित्र ताकरि अलंकृत अर पवित्र अर व्रत गुणनिकरि और शीलनिकरि महा शोभायमान ऐसी कल्पना किया इंद्रकी पत्नी जो है ताहि तथा अन्य सर्व कार्यने सावधानीकरि करनेवारी योग्यने देखि निश्चय करै कि स्थापन करै ॥ ७१६ ॥

अस्मिन् कर्मणि मातृपासनविधावेषा प्रशस्ता भव-
त्वेवं सभ्यजनाः प्रमाणयत सद्धर्मत्वबुद्ध्येति तां ।
मांगल्यादिविभूषणैः कृतमहोत्संहामिमां रक्षय
मंत्रोपास्तितया नियोज्य कुसुमक्षेपं विदध्योत्सवे ॥ ७१७ ॥

अर सकल सभाजन प्रमाण करैं कि या इंद्राणी माताकी उपासना विधिमें तथा वस्त्रालंकार देनेकी विधिमें प्रशस्त होहु धर्मबुद्धि करि या प्रकार मांगल्य आभूषणनिकरि किया उत्सवजाको इसने मंत्रकी उपासनाकरि रक्षाबंधन सहित नियोजित करि इस उत्सवमें पुष्पांजलि क्षेपण करै ॥ ७१७ ॥

इति शचीदेवीप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलिः ।
ऐसैं शची देवीकी स्थापना करनी ।

अंबाः सर्वाः सवित्र्यस्त्रिजगदधिपतिप्राप्तपूजाधिकारा

अत्रागत्याध्वरोर्व्यां यजनकृतमिह स्वादरेण वृणांतु ।

अध्वर्यूपलिका वा धृततनुकुलयोर्दोषहीनां प्रकल्प्य

वादित्रोद्घोषपूर्वं विहितयमदमां भूषयेत्पुण्यमूर्तिम् ॥ ७१८ ॥

कदाचिदेषा न भवेद्गुणाढ्या मंजूषिकां कल्पतु मातृकार्ये ।

एवं चतुर्विंशतिजिनप्रसूनां नामानि पुण्यानि कृती व्रहेत ॥ ७१९ ॥

तीन जगतके स्वामी इंद्र धरणेंद्रादिकरि प्राप्त है पूजाको अधिकार जिनि असी सर्व जननी अंबा जे हैं ते इहां यज्ञ भूमिमैं आयकरि यज्ञका कृत्यने आदरकरि ग्रहण करो। काष्ठकी मंजूषाने ही माताका कार्यमें कल्पना करो। ऐसैं चौईस जिनराजकी माताका नाम पुण्यवान् यजमान स्थापन करै तथा स्मरण करै ॥ ७१८-७१९ ॥

ओं ह्रीं मरुदेव्यादिजिनेंद्रमातरोऽत्र सुप्रतिष्ठिता भवंतु स्वाहा ।

ओं ह्रीं मरुदेवी आदि जिनेंद्रमाता इहां तिष्ठो, अर्घ देणा। ऐसैं भद्रपीठ कहिये वंदना काष्ठकृत पीढामें मातृमंडल प्रति पुष्पांजलि देनी।

इत्युक्त्वा.... .... ।

.... ।

.... ॥ ७२० ॥

छत्र रत्न दर्पण ध्वजा वस्त्र मंगलीक आभूषणनिका ग्रहण करि भूषित शुचिविधानसंयुक्त स्नान करावै अरु चंदनको चर्चन अरु माला आदिनि करि पूजै ॥ ७२० ॥

असैं पढ़ि माताके अग्र छत्र चामर भूषण आदि स्थापन करै।

अब दिक्कुमारिका जो माताकी सेवामें इंद्रकरि नियोजित कीजिये है ताको कल्पन है—

.... ।

.... ॥ ७२१ ॥

देवनिकरि मानी सुंदर भूषण वस्त्रदान करि सन्मानित कियी ऐसी कुमार अवस्थाको धारण करनेवाली अरु नहीं प्राप्त है पतिसंभोग विकार जिनि अरु जाति कुलमें उच्च छह संख्यावाली तथा छप्पन संख्यावाली कल्पनाकरि संनियोजित करनी ॥ ७२१ ॥

कुमारिकोपरिपुष्पांजलिक्षेपः। तदुत्तरं यज्वा ताभ्यो नानावस्त्राभरणमुकुटादिदानं कुर्यात्।

ओं ह्रीं श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी तुष्टि पुष्टि शांत्यादि दिक् कुमारिका देवी इहां आय जिन माताने सेवो ऐसा कहि कुमारिका ऊपरि पुष्पांजलि क्षेप करना। अरु यज्वा प्रतिष्ठाको धणी इनिकूं नाना प्रकारका वस्त्र आभरण प्रदान करै।

इंद्रादिदिग्पतिनियोगकृतावनानि स्थानानि यस्य परितः सुपरिष्कृतानि।
तद्राजसद्मनि पुरंदरदत्तशिष्टी रत्नानि वर्षयतु गुह्यकराजराजः॥ ७२२ ॥

बहुरि इंद्रनिकी आज्ञानुसार कुवेर है सो जाकी चौतरफा इंद्रादि देवनि करि नियोगसें किया है रक्षण जिनिका अर चौतरफ तिष्ठते ऐसे स्थान वेष्टित कर रख्या है ता राजमंदिरमें रत्ननिकी वर्षा करो ॥ ७२२ ॥

ओं ह्रीं धनाधिपते अर्हत्प्रतिसौधे रत्नवृष्टिं मुंचतु मुंचतु स्वाहा। इत्युक्त्वा सौधोपरि सर्वत्र रत्नवृष्टि तथा कुंकुमाक्तपुष्पोत्करं यजमानाद्यो विस्तृणवंतु। इति रत्नवृष्टिस्थापनं।

ओं ह्रीं धनादिपति कुवेर अर्हतका महलमें रत्नवृष्टिने करो ऐसें कहि सर्व गृहमें ऊपरि रत्ननिकी वर्षा तथा पंचवर्ण तंदुलनिकी वर्षा करै। ऐसै रत्नवृष्टि स्थापन करनी।

सर्वर्तुजानि फलपुष्पविलेपनानि गंधासनोपकरणानि पवित्रितानि।
संस्थापयत्वधिगृहं जिनमातृकाया भोगोपभोगरुचिराणि मनोहराणि ॥ ७२३ ॥

अर कुवेर है सो सर्वऋतुके उपजे फल पुष्प चंदनादिक तथा माला आसन आदि अनेक चित्र विचित्र ऐसे मनोहर भोगोपभोगसामिग्री जे हैं तिनिनैं जिनमाताके गृहमें स्थापन करो ॥ ७२३ ॥

इति जिनमातृसौधे वस्त्रभूषणमंडनादिस्थापनं।

ऐसैं जिनमाताका भवनमें अनेक शोभा करै।

अथ पंचकल्याणस्तोत्रम् ।

अब यहां पंचकल्याण स्तोत्र पाठ पढिये है सो ऐसा—

यद्गर्भावतरात्पुरः सुरपतिः संतोषयन् भूतलं
दीनानाथजनांश्च दुःखदवतो निर्धाव्य हर्षं ददन् ।
षण्मासात्पुरतः परत्र नवसु स्वर्णं समावर्षयन्
श्रीह्रीमुख्यकुमारिकाः प्रणियुजन् यस्यास्ति सेवापरः ॥ ७२४ ॥

अर जिस जिनेश्वरके गर्भमें अवतारके पहिली ही सर्व भूतलनैं संतोषित करतो अर दुःखरूप दावानलसे दीन अनाथ जनने दूर करतो इंद्र है सो छह महीना पहिली अर नवमास पीछे ताईं रत्नवर्षाने त्रिकाल करतो अर श्र्यादि कुमारिकानैं यथानियोग गर्भशोधनार्थं योजन करतो इंद्र सेवामें तत्पर होतो भयो सो भगवान् जय ते रहो ॥ ७२४ ॥

स्वर्गानेकपमाधिरोह्य सदनाद्राज्ञः सुमेरुस्थलं
नीत्वा दुग्धपयोधिसंभृतनिपैः स्नानं चकारेंद्रराट् ।
यत्स्तोत्रं सुविधातुमास्यमकरोत्साहस्रसंख्यं तथा
नृत्यप्रांगणसंगतस्तु वपुषं स त्वं जिनेंद्रः प्रभुः ॥ ७२५ ॥

अरु इंद्र ही जाकूं राजाका गृह आंगणसैं ऐरावत हस्तीपर आरोहण कराय सुमेरु पर्वत पर ले जाय अर तहां क्षीरसमुद्रके जल भरे कलशनि करि स्नान करातो भयो अर जाका स्तोत्र करवेकूं इंद्र अपणा मुख हजार संख्यावाले करतो भयो अर नृत्य अंगणमें प्राप्त भयो इंद्र हजार शरीर रचतो भयो सो तू जिनेंद्र स्वामी जयवान हो ॥ ७२५ ॥

किंचिद्धेतुविलंभनादिह गतं साम्राज्यसौख्यं तृण-

प्रायं मोचितवान् त्रिलोकमहितं राज्यं समासादितुं ।
कृत्वोग्रे तपसि स्थितोऽशुभविकृत्युत्पाटयन्मूलत-
श्चारित्रैश्यमगात्प्रभुर्गुणनिधिः स त्वं विभास्येव नः ॥ ७२६ ॥

अर जो कछु हेतुमात्र वैराग्यका प्राप्ति होनेतैं इस भगवान् चक्रवर्ती आदि राज्य सुखन तृण समान जानि अर तीन लोकपूजित सिद्धत्व राज्यने प्राप्त होवेकूं छोडतो भयो सो उग्र तपमैं आत्मनै करि स्थित हूवो अशुभ विक्रिया कर्मनै मूलसैं उत्पाटन करतो चारित्र संपूर्णका स्वामीपणानें प्राप्त होतो भयो सो गुणांको निधि तू प्रभू हमारे मध्य शोभायमान हो ॥ ७२६ ॥

कैवल्यावगमाच्चराचरजगद्वस्तुस्वरूपं करे
कृत्वा श्रीसमवस्थितौ नरपशुस्वर्गिव्रजं वोधयन् ।
धर्माभो भवदुःखतप्तभविनो दत्वा सुखास्वादनं
नीताः सोऽस्त्वपुनर्भवाय भवतां कल्याणकल्पद्रुमः ॥ ७२७ ॥

अर केवल ज्ञानका प्राप्ति होनेतें चर अचर जगत् पदार्थनिका स्वरूपने हाथमें करि श्रीमान् समवसरनमैं स्थिति करि मनुष्य और तियच और देव इनका समूहनै वोधित करतो धर्मरूप जलदान संसार दुःख करि तप्त संसारी जनोंकूं देय सुखको आस्वादने प्राप्त कियो सो स्वामी संसार आवागमनका नहीं होनेके वास्ते कल्याणका कल्पवृक्ष होउ ॥ ७२७ ॥

आयुर्नामसुगोत्रशातनविधीनुक्त्वाल्पसर्वप्रकृ-(?)
त्युन्माथं सुविधाय चैकसमये लोकांतमाप्तः स्वभूः ।
किंचिन्न्यूननिजात्मदेशकलनः सिद्धः परंज्ञायक-
श्चिद्ज्ञानांबकवीर्यतातिविमलः स त्वं महान् पूज्यसे ॥ ७२८ ॥

अर आयु नाम गोत्र अर साता वेदनीय कर्मनिकूं सम रूप उत्फाल करि सर्व प्रकृतिनिका नाशकरि फिरि एक समयमें लोकांतकूं प्राप्त भयो सो स्वयंभू किंचिन्न्यून चरम देहतैं आत्मप्रदेश रचनावालो होय सिद्ध ज्ञायक चेतन्य ज्ञान दर्शन वीर्यपनातैं निर्मल है, सो तू हम करि महान् पूजिये है ॥ ७२८ ॥

इति पठित्वा पंचकल्याणारोपणविधिप्रतिज्ञानाय मूलप्रतिकृत्यग्रे 'पुष्पांजलिक्षेपः ।

ऐसैं पढ़ि मूलप्रतिमाके अग्र पंचकल्याणका आरोपण वास्तै पुष्पांजलि क्षेपणी ।

तां मूलप्रतियातनां सुरपतिर्गंधाक्तवर्ष्यप्रभां
मंजूषानिहितां विधाय विनयान्मातुः प्रसूतिस्थले ।
आनीयापि निधापयेत् शुचितरैर्वस्त्रै रहस्ये रज-
न्यर्धे चाल्पतनौ तु तत्त वसनाच्छन्नां क्रियान्मंत्रवित् ॥ ७२९ ॥

ऐसैं इंद्र राजा है सो उस मूल विंबकूं गंधयुक्त देह लिंपन करि मंजूषामें स्थापि विनयसेती माताका प्रसूतिस्थानमें ल्याय करि सुंदर धौत वस्त्रनिकरि एकांतमें अरु अर्ध रात्रिमें आच्छादित करै अल्प शरीर नहीं होय तो वहां ही वस्त्र करि मंत्रशास्त्री आच्छादन करै ॥ ७२९ ॥

इति मूलविंबाच्छादनं ।

ऐसैं मूलविंबकी क्रियाकरि अन्यविंबनिनै केसरि चंदन करि लिंपन कर।

——:※:——

अथ मातुःस्वप्नारोपणं । तथाहि—

अब माताकूं स्वप्न आवै ताका वर्णन कहिये है—

सौधांतरुद्यन्मणिदीपकाद्युतिविद्योतिशय्याभवनाग्रभूमिषु ।
चित्राणि लेख्यानि पृथक् पृथक् स्थितान्यादृश्यमाना जननी स्वपां क्रियात् ॥ ७३० ॥

महलमें देदीप्यमान रत्नके दीपकनिकी द्युतिकरि प्रकाशित शय्यागृहनिकी अग्रभूमिमें न्यारे न्यारे चित्र स्वप्नके माताकूं दीखते रवि माता शयन करैं ॥ ७३० ॥

तानि कानीत्यत आह—

ते स्वप्न कौन कौन हैं सो कहिये है—

आपांडुरद्युतिमुदंचितपीवरोरुस्कंधं गवेंद्रमुरुमंजुलमंद्रघोषं ।
ऐरावतं द्विपपतिं त्रिमदश्रवंतं मंद्रार्द्रगर्जितमुरुप्रबलांगयष्टिं ॥ ७३१ ॥

प्रथम ही पांडुरकांति अर उन्नत पुष्ट स्कंधयुक्त अर दीर्घ मधुर शब्द करता अर नवीन शोभायमान ऐसा बैलने देखत भई तथा तीन स्थानमें कपोल कुंभस्थल ग्रीवामें मद झरतौ अर मंद्र गर्जनायुक्त ऐसा ऐरावत नामक हाथीने देखत भई ॥ ७३१ ॥

पंचास्यमिंदुनिभदेहसटावितानभास्वंतमुद्यदभिभासि विवश्वदंगं ।
पद्मासनाश्रयहरिस्थितिदोलयंतीं पद्मां हिरण्मयनिपैः स्नपितामुदारां ॥ ७३२ ॥

चंद्रमासमान धवल स्कंधके केशराली समूहकरि भासमान अर उदयरूप कांतियुक्त शोभित शरीर ऐसा सिंहने देखत भई अर कमलका सरोवरमें सिंहासन पर बैठी झूलती सुवर्णके कलशनिकरि स्नान करती ऐसी युवान लक्ष्मीने देखत भई ॥ ७३२ ॥

पुष्पस्रजौ कुसुमगंधविलुब्धभृंगे उत्तानसंस्थितियुजौ नवसत्पुनीते ।

तारापतिं तरलभासुरशुक्लकांतिं संपूर्णविंबविगलत्सुधयातिरम्यं ॥ ७३३ ॥

अर पुष्पनिकी सुगंधमें मग्न है भ्रमर जिनमें अर लंबायमान स्थितियुक्त अर नवीन पवित्र मालाका युगलने देखत भई अर तरल दीप्तियुक्त श्वेतकांतिवारो अर संपूर्ण विंबतें झरतो अमृत करि रमणीक ऐसा चंद्रमाने देखत भई ॥ ७३३ ॥

दिग्सुंदरीवदनदर्शनदर्पणाभं ध्वांतच्छिदं रविमहर्मुखभासमानं ।
कुंभौ स्वमंगलधियाग्रधरांगणस्थौ पद्मच्छदावृतमुखौ शुचिनीरपूर्णौ ॥ ७३४ ॥

अर दिशारूप नायकाका वदनकों देखनेका दर्पण समान अर अंधकारने नाशनहारो अर प्रभातमें उदय होतो ऐसा सूर्यने देखत भई अर अपना मंगलकी बुद्धिकरि अग्र पृथ्वीका आंगणमें धरे अर कमलपत्रकरि ढके हैं मुख जिनके अर शुद्ध जलकरि भरे ऐसे कलशनिन देखत भई ॥ ७३४ ॥

मीनौ सरोवरजले जलजप्रसन्ने खेलाः कृतौ नयनयोरुपमानगम्यौ ।
रिंगत्तरंगततपद्मपरागगंधि दिव्यं सरोवरमदच्छुचिराजहंसं ॥ ७३५ ॥

अर कमलयुक्त सरोवरमें क्रीडा करते अर नेत्रको उपमायोग्य ऐसे मीन कहिये छोटे मत्सने देखत भई अर चंचल तरंगनिकरि विस्तृत कमलका पराग करि सुगंधित अर क्रीडा करता है राजहंस जामैं ऐसो सरोवरने देखत भई ॥ ७३५ ॥

अक्षोभपूर्णसलिलप्लुतवाडवाग्निं रत्नाकरं स्फटिकदर्पणवत्प्रभासं ।
सिंहासनं मणिखचद्द्वयपार्श्वकुड्यं सिंहैश्चतुर्भिरनुसंगतपादमूलं ॥ ७३६ ॥

अर अगाध परिपूर्ण जल करि डूबतो है बाडवानल जामैं अर स्फटिकका दर्पण समान ऐसा समुद्रने देखत भई । अर मणिकरि खचित दोन्यू परखवाड़ा अरु भित्ति जाकी अर च्यारि सिंहनिकरि च्यारि पाया धारण किया ऐसा सिंहासन देखत भई ॥ ७३६ ॥

नाकालयं मणिनिबद्धनभोऽवकाशं स्वर्गात्समागतमिव प्रभुसेवनार्थम् ।
नागेंद्रसद्मधरिणीहृदयाद् धरेणां संदर्शनोत्सुकमिवोद्गतमंशुपिंडम् ॥ ७३७ ॥

अर मणि करि समस्त आकाशमें प्रकाशयुक्त अर प्रभुका सेवन वास्त हो स्वगसें मानू आया ऐसा स्वगका विमानने देखत भई। अर पृथ्वीका हृदयतें निकस्यो अर भुवनपति जिनेंद्रका दर्शनमें ही मानू उत्साहवान ऐसा धरणींद्रका भवनने देखत भई॥ ७३७॥

दारिद्रदुःखविनिपातनहेतुभूतं राशिं सुरत्ननिचयस्य लसंतमुच्चैः।
निर्धूमतोज्ज्वलदमेयशिखं कृशानुं मूर्तं स्वकर्मदहनाय कृतावतारं॥ ७३८॥

अर दारिद्रका अर दुःखका दूर करणेमें कारणभूत अर उच्च प्रकार देदीप्यमान ऐसी रत्ननिकी राशिने देखत भई अर निधूंमतायुक्त उज्ज्वल है अप्रमाण शिखा जाकी अर अपना कर्मनिका दहन वास्ते ही किया है अवतार जाने ऐसा अग्निने देखत भई॥ ७३८॥

दृष्ट्वा नितांतशुभदायतिगान् सुखोत्थान् स्वप्नान् प्रभातसमये प्रतिबुद्ध एव।
मांगल्यतूर्यविनिबोधितयोग्यकाले तिष्ठेत्सखीजनविवृद्धसुखप्रचारा॥ ७३९॥

ऐसैं या प्रकार षोडश स्वप्नने नितांत शुभ देने वारा है उत्तरकाल जिनका अर सुखकरि उठे तिनिकूं देखकरि प्रभात समयमें जागतो माता मंगलकारि वादित्रनिका शब्दकरि योग्य समयमें सखी जनादि परिचारिकानिकरि सुखकूं फैलावती संती उठती भई॥ ७३९॥

एवं विधातृकल्पोपकंठे आचार्ययज्वानौ समागत्य तद्दृष्टस्वप्नानां पृथक् पृथक्तया फलानि निवेदयित्वा षोडशमात्रग्रे उत्तरयेतां सापि तानि श्रुत्वाऽऽत्मानं धन्यां मन्वाना श्र्यादिषु दत्तादरा स्यात्।

या प्रकार माता समान कल्पित माता पास यजमान तथा आचार्य आय अनुक्रमकरि स्वप्नका फल निवेदन करते षोडश फल माताके अग्र उतारैं तथा तो माता भी अपना आत्माने धन्य मानि श्री ह्री आदि कुमारिकाकी तरफ आदरपूर्वक दृष्टि देवै।

अथ श्र्यादीनां स्वरूपकृत्यवर्णनं । तथाहि–

अब श्री आदि कुमारिका देवोनिका स्वरूप ऐसा सो कहिये है—

चतुर्भुजा श्रीर्धृतपुष्पकुंभसच्चामरैर्मातरमुत्सहंती ।
शोभां जगत्यामपुनर्भवंतीं दध्रे चलत्कंकणचारुहस्तैः ।। ७४० ।।

चारि हैं भुजा जाकै अर धारण किया है पुष्प अर कुंभ अर समीचीन चमर जानैं अर माताकूं उत्साहयुक्त करती अर जगतमें कदापि नहीं होनेवारी शोभाने चलायमान कंकणयुक्त सुंदर हस्तनिकरि धारण करती श्री नाम देवी होती भई ।। ७४० ।।

लज्जाकुलोद्भूतनितंबिनीनामाभूषणं तां द्विगुणीचकार ।
मातुःपदांभोरुहसेवनानि छत्रेण चक्रे वरिवस्यमाना ।। ७४१ ।।

अर सुंदर कुलमें उपजी स्त्रीनिकै लज्जा है सो भूषण है, सो येह ह्रीं देवी वा लज्जाने दूणी करती भई अर छत्रकरि सेवा करती संती माताका चरणारविंदकी सेवाने करती भई ।। ७४१ ।।

धैर्यं विदध्रे धृतिनामदेवी सिंहासनस्यार्पणतः सवित्र्याः ।
त्रैलोक्यनाथप्रसवेन लोके मान्यत्वसंसूचनताकरस्य ।। ७४२ ।।

अर धृतिनाम देवी सिंहासनका अर्पणतें माताकी सेवामें धैर्य धारण करावती भई । सिंहासन है सो त्रैलोक्यनाथका जन्म करि लोकमें मान्यपणाका देनेवारा है ।। ७४२ ।।

विस्तारयामास यशोभिवृद्धिं कीर्तिः समासादितपुण्यकार्या ।
जयस्तवौ मातुरुदीर्य यष्टिं द्वारोपकंठे स्थितिमादधौ सा ।। ७४३ ।।

अर संचयरूप किया है पुण्यकार्य जानै ऐसी कीर्तिदेवी माताकी यशकी वृद्धि विस्तारती भई अर जय जय शब्दकरि अर स्तुतिकरि माताका द्वार पर स्थितिने ग्रहण करती भई॥ ७४३ ॥

स्वयंप्रबुद्धस्य जनुर्विधात्र्या मातुः कुतश्चित्परिवृद्धबुद्धिः ।
नेति स्वयं चास्ति दधार बुद्धिर्बुद्धिप्रकाशं जनतार्थनीयं ॥ ७४४ ॥

अर्थः-स्वयं प्रबुद्ध भगवानकी जन्म देनेवारी माताकी बुद्धिकी वृद्धि कोई कारणतै भी नहीं है किंतु स्वयमेव ही है यातैं बुद्धि नाम देवी अनेक जन्मनिकरि प्रार्थनीय बुद्धिका प्रकाशने आप ही धारण करती भई ॥ ७४४ ॥

रत्नावली यस्य गृहे पपात त्रिकालमाशार्थिजनस्य पूर्णा ।
यत्रेति लक्ष्मीः स्वयमागतानामभ्यर्थितार्थादधिकं ददेऽर्थं ॥ ७४५ ॥

अर जाका गृहमें रत्नवृष्टि त्रिकाल याचक जनाकी पूर्णता करनेवाली होती भई ताकारण लक्ष्मी जहां स्वतः ही है सो स्वयं आए याचक जनोंका मनोरथसें अधिक द्रव्यने देती भई॥ ७४५ ॥

यस्योद्भवे नारकसंगतानां मुहूर्त्तमात्रा किल शांतिरासीत् ।
तन्मातुरीशित्वविधाप्रपूर्तौ शांतिः स्वयं शांतितर्ति ततान ॥ ७४६ ॥

अर जा जिनेंद्रका उत्पत्ति समय नरकके प्राणीनिकै भी मुहूर्त्त मात्र शांति हुई ता कारण शांति देवी माताका इष्ट विधानकी पूर्तिमें आप ही शांतिसमूहने विस्तरती भई ॥ ७४६ ॥

सर्वत्र जीवाभयदानदत्तेः पुष्टिः स्वयं जीवगणस्य चासीत् ।
चित्रं यतोऽचेतनरत्नराशिः पुष्टीबभूवात्मगणेन सार्धम् ॥ ७४७ ॥

अर पुष्टि देवी है सो सर्वस्थानमें प्राणीमात्रकूं अभयदान देनेमें नियुक्त होती भई और येह आश्चर्य है कि अचेतन रत्नवृष्टि भी आपका गण जो नाना प्रकार मणिनिकरि पुष्ट होता भया ॥ ७४७ ॥

रोगाः स्वपायामपि यत्र लोकान्न प्रापुरेवं स्वत एव तुष्टिः ।
परंतु तुष्टिः स्वनियोगसिद्ध्यै पादद्वयं नैव जहौ जनन्याः ॥ ७४८ ॥

अर संसारमें भव्यजन ता समय रोगकूं स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त भये या कारण स्वतः ही तुष्टि है परंतु नियोगमात्रकी सिद्धिके अर्थि तुष्टिदेवी माताका चरणारविंदद्वयने नहीं छोडती भई ॥ ७४८ ॥

एवं कुमार्योऽमरनाथशिष्टिं विनैव मातुश्चरणार्चनायां ।
प्रशक्तिभाजो हि बभूवुरीशप्रभाव एव प्रतिपत्तिहेतुः ॥ ७४९ ॥

ऐसे देवकुमारिका इंद्रराजकी आज्ञा विना ही माताका चरणारविंदकी सेवामें प्रशक्त होती भई-यह प्रभाव श्रीजिनेंद्रका सर्व प्राप्तिमें हेतुभूत है ॥ ७४९ ॥

तांबूलदायिन्यपरांघ्रिसेवासंवाहने कापि सुमज्जनेऽन्या ।
महानसे कापि सुमंगलार्थगानेऽन्यका नृत्यविधौ नियुक्ता ॥ ७५० ॥

केई माताकूं तांबूल देनेमें युक्त भईं केई पादमर्दनमें निपुण होती भईं, कोई स्नान कार्यमें, केई रसोईका परिपाकमें, कोई मंगलीक गानमें अर अन्य नृत्यका विधानमें नियुक्त होती भईं ॥ ७५० ॥

प्रसाधनानि व्यजनं सुवस्त्रं सौगंध्यमुर्वीप्रतिमार्जनं च ।
आदर्शपालाब्जविभूषणानि काप्यादधौ मातुरुदग्रभूम्यां ॥ ७५१ ॥

कोई अलंकार शृंगार पात्रने, कोई बीजना पवन पात्रने, कोई वस्त्रने, कोई सुगंध चंदनादिकने, कोई पृथ्वीका शोधनमें अर्थात् बुहारीमें, कोई दर्पण पात्र काच विभूषणादिक माताके अग्र धारण करती भई ॥ ७५१ ॥

छंदःकलागोष्ठिपुराणचर्चामनोहरा याभिरहर्निशं तु ।

प्रवर्त्यंते यत्र सरस्वती हि स्वयंप्रबुद्धा न जहाति पार्श्वं ॥ ७५२ ॥

अरु जिन करि रात्रिदिन छंद शास्त्र कला चातुर्य तथा गोष्ठी जो संसार सुख वार्ता तथा पुराण आदिकी चर्चा मनोहर प्रवर्त्त न करिये तहां स्वयं जागती सरस्वती है सो माताका नजदीकपणाने नहीं छोडें है ॥ ७५२ ॥

इत्याद्युपाक्लृप्तकुमारिकाणां सार्थेन पूज्या जननी जिनेशः ।
मासान्नवाथोपनिनाय यद्वा यामान् दिनानि व्यतिसंक्रमेण ॥ ७५३ ॥

इन आदि कल्पना किई दिक्कुमारिका समूह करि सेवित श्रीजिनेशकी माता उत्कृष्ट नव महीना अथवा नवदिन तथा प्रहर पर्यंत यथा-योग्य गर्भवासको मंगल करै ॥ ७५३ ॥

—:※:—

अथ प्रभाते सौभाग्यसीमंतिनीकृतयात्राविधानं । तथाहि–

अथ प्रभात समय सौभाग्यवती स्त्रियां जलयात्रा करैं अर्थात् कलश भरि ल्यावें सो ऐसें —

पुरोपकंठे सरिदादिशुद्धनीराणि सौवर्णघटैर्गृहीतुं ।
वादित्रमांगल्यनिनादपूर्वं गच्छेयुरभ्यर्थपुरंध्रिमुख्याः ॥ ७५४ ॥

सुवर्ण आदिके कलशनिकरि नगर समीप तिष्ठती नदी आदिका शुद्धनीर ग्रहण करिवेकूं मनोज्ञ स्त्रियां वादित्र नाद मंगलीक-पूर्वक गमन करैं ॥ ७५४ ॥

जलाशयस्थांश्च वितीर्य योग्यासनादिपानैर्वसनैर्मनोज्ञैः ।
संगृह्य शुद्धया कलशैः स्त्रजाक्तवासःफलैर्वेदिमुपाचरेयुः ॥ ७५५ ॥

अर वहां जलके स्थानके अधीशनिनै योग्य आसन पान अरु वस्त्र मनोज्ञनिकरि वितीर्ण करि माला गंधयुक्त वस्त्र तथा फलनिकरि द्वितीय वेदीप्रति ल्यावं ॥ ७५५ ॥

तं वारकं वासवपाणिनीतं स्वस्त्यादिमंत्रैरुपचर्य यंत्रे ।
श्रीशांतिके मंत्रकृता पुनीते संस्थाप्य यज्वाऽर्चनमाकरोतु ॥ ७५६ ॥

अर सौभाग्यवंतीनिकरि ल्यायो जो मंगल कलश तिसनैं इंद्र अपना हाथकरि ग्रहणकरि स्वस्तिवाचन मंत्रनिकरि पूजा करै अरु शांति यंत्रमें कि अनेक मंत्रनिकरि पवित्र कियो तीहमें स्थापन करि पूजन करो ॥ ७५६ ॥

ततः पुरस्कृत्य जिनेशपेटां श्रीमातरं वा कृतिकर्मपूर्वं ।
जिनेंद्रमातृ उपदिश्य गर्भकल्याणपूजां वितनोतु शक्रः ॥ ७५७ ॥

तातं जिनेंद्रमूर्तिकूं जिस मंजूषामें रखी है उसकूं अर श्रीमाताकूं अग्रभाग स्थापि अर गर्भ कल्याण पूजा करो । ७५७ ॥

अत्र चतुर्विंशतिमातॄणां नामोद्देशपूर्वकं गर्भतिथीनुद्दिश्य पृथक्मंडले पूजा इष्टिः कर्तव्या। तदुत्तरं सिद्धभक्त्यादिपाठे कायोत्सर्गः मंत्रजपश्च ।

इहां चोईस तीर्थंकरांकी माताका नामपूर्वक गर्भकल्याणकी तिथिनिकूं वोलि वेदीमें मंडल मांडि जुदी पूजा करणी। पीछे सिद्धभक्ति आदिका पाठ पढ़ि आचार्य तथा यजमान कायोत्सर्ग करै अरु मंत्रको जप करै ।

—:※:—

अथ जन्मकल्याणं ।

ऐसैं गर्भकल्याणक विधि करि जन्मकल्याणविधिका प्रारंभ करै। सो ऐसैं है—

शुभे विलग्ने सुनवांशके वा जिनेंद्रजन्म प्रबभूव यद्वत् ।
मंजूषिकांतर्गतमाशु विंबं निःकाशयेदार्यवरः कराभ्यां ॥ ७५८ ॥

शुभ लग्नमें अर शुभ नवांशकमें जैसै प्रथम साक्षात् जिनेंद्रको जन्म होतो भयो तैसैं मंजूषिकाके अंतर्गत मूर्तिनै आचार्य दोऊ हाथौंसे निकासें ॥ ७५८ ॥

वादित्रनादोल्वणनंदनंदजयेतिशब्दप्रभृतीनुदीर्य ।
भद्रासने स्थाप्य सुसिद्धमंत्रैः पुष्पप्रकीर्णावलिमुत्क्षिपेत ॥ ७५९ ॥

तत्र तहां वादित्रनिका नाद अर उच्च जय जय नंद नंद इत्यादि शब्दनिनै उदीरण करि उस विंबकूं भद्रासनमैं स्थापन करैं अर सिद्ध मंत्रनिकरि पुष्प आवलीकूं क्षेपैं ॥ ७५९ ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्योद्धरणधीरं जिनेंद्रं भद्रासने उपवेशयामि स्वाहा। इत्युक्त्वा पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

ताका मंत्र—ओं ह्रीं तीन लोकका उद्धारमें धीर ऐसा जिनेंद्रने भद्रासनमें उपवेशन करू हूं। इस मंत्रकरि पुष्पांजलि क्षेपणी।

तदैव घंटानकसिंहभेरीशब्दैश्चतुर्धा त्रिदिवालयानां ।
संघो नमन्मौलिरुपात्तहर्षोऽभ्युपाययौ वेति नमो जिनाय ॥ ७६० ॥

तहां उसही वखत घंटा शब्द अरु ढोल शब्द अर सिंहशब्द अर भेरी शब्द इन शब्दनिकरि च्यारि निकायके देवनिको संघ मस्तक नमाय हर्षसंयुक्त नमो जिनेंद्र ऐसैं आवतो भयो ॥ ७६० ॥

इंद्रः ससैन्यान्यसुरेशवर्यो निर्वर्त्य देवद्विपमुन्नतांगं ।
ऐरावतं स्वस्वनियोगशक्तान् कुर्वीत दंडातपवारणाद्यैः ॥ ७६१ ॥

सेनायुक्त ईशानादि स्वर्गके इंद्र संयुक्त सौधर्मेंद्र है सो उत्तम ऊंचो देवोपनीत ऐरावत हस्तीने रचि अर आप आपके नियोगानुसार इंद्रादिकनिने दंड छत्र आदि उपकरणकरि नियुक्त करावतो भयो ॥ ७६१ ॥

शचीं समाहूय नमस्कृतांगीं शय्यागृहं त्वं प्रविशेति हर्षात् ।
विश्वांबिकाकुक्षिभवं गृहाण यथा न माता विरहं प्रयाति ॥ ७६२ ॥

अर बहुरि इंद्र नमस्कारयुक्त है मस्तक जाको ऐसी इंद्राणीने बुलाय करि कहै कि तू माताका प्रति शय्यागृह प्रवेश करि अर हर्षत जगन्माताका कुक्षितैं उत्पन्न हुवा बालकने ग्रहण करि परंतु माता बालकका वियोगने नहीं प्राप्त होय तैसैं करि ॥ ७६२ ॥

हर्षौत्सुक्यात्पुलकिततनुः स्वं जनुः सत्कृतार्थं
मन्वाना सा चिरपरिचयाबद्धमोदां सवित्रीं ।
नामं नामं कपटविधिनाऽन्यं विधायार्भकं तं
त्रैलोक्येशं विकसितमुखं मूर्ध्नि कुर्वीत संस्थं ॥ ७६३ ॥

ऐसैं सो इंद्राणी हर्ष अर उत्साह भावतैं रोमांचित भया है शरीर जाका ऐसी अर अपना जन्मने धन्य धन्य मानती संती चिरकाल परिचयतैं वृद्धिने प्राप्त भयो है प्रमोद जाकैं ऐसी माताने नमस्कार वारंवार करि दूसरा बालकने कपटसे मातापास मेलि तिस बालक त्रैलोक्यनाथने प्रसन्नमुख करि मस्तकमें स्थापित करती भई ॥ ७६३ ॥

अत्रवाचार्यो जिनविंबानामन्येषां सर्वेषामुपरि पुष्पाणि विकीर्यात् ।

ऐसै उस समय आचार्य अन्य प्रतिविंबनिपरि पुष्पक्षेप करै ।

दीनानाथानधिपुरमितांस्तोषयन् वांछितार्थान्
यज्वा पूजाविरचनधिया जन्मकल्याणपंक्तेः ।
चातुर्विंशं जिनपमनुभिर्मंडलं संलिखेत

तज्ज्ञोऽष्टाभिः सलिलकुसुमाद्यैश्च पूजां दधातु ॥ ७६४ ॥

अर यजमान उस समय जन्म कल्याण उत्सवमें नगरमें प्राप्त दीन अर अनाथ जनकूं वांछित अर्थ युक्त करि तोषित करि अर पूजा अर पूजाकी रचनाकी बुद्धि करि जन्मकल्याणकी परंपरातैं चोईस जिनको मंडल समंत्र लिखे तहां जल पुष्प आदि अष्ट द्रव्यनिकरि जिनेंद्रकी पूजा करै ॥ ७६४ ॥

क्लृप्ते मेरावभिषवधिया दुग्धपाथोऽधिजातै-
नीरैरष्टप्रगतशतकैः स्वर्णकुंभोद्धृतैर्वा ।
हस्त्यारूढं सुरपतिकृतोत्संगसंस्थानमन्यै-
रिंद्रैर्देवैरपि सह हरिः स्नापयत्वीशमिष्टं ॥ ७६५ ॥

बहुरि उत्तर दिशामें पूर्व रचित मेरुमें अभिषेक बुद्धि करि क्षीर समुद्रके उत्पन्न जलकरि एकसो आठ सुवर्ण कलशनि करि ऐरावत गजेंद्र पर आरूढ अर इंद्रकी गोदमें तिष्ठता प्रभूने सौधर्मेंद्र अन्य इंद्रनिकरि सहित होय स्नान करावो ॥ ७६५ ॥

नृत्यारंभो जयजयरवो वाद्यनादः प्रमोदो
गानं शच्यास्त्रिदशवनितासंगतं चाटुवाक्यं ।
द्यावाभूमीमलविगमता स्नानपाथोधिलौल्यं
यादृग्जातं मम किमु धराधर्तुरेवाप्यवाच्यं ॥ ७६६ ॥

अर उस समयका नृत्यका आरंभ तथा जयध्वनि तथा साढा बारा कोटी जातिका वादित्रनिका बजना तथा देवोंका हर्ष तथा इंद्राणीका गीत ज्यों देवांगनासहित होय है तथा परस्पर प्रमादका प्रवचन तथा आकाश अर पृथ्वीकी निर्मलता तथा स्नान समुद्रकी चंचलता जैसा हुआ सो मैं कहा कहिसकूं, धरणेंद्र भी हजार मुखसैं नहीं कहसकै है ॥ ७६६ ॥

मेरौ पांडुशिला तदत्र पृथुले सिंहासने मध्यगे

संस्थाप्याभिषवार्थमर्घ्यमकरोत् क्षीराब्धितः संभृतैः ।
कुंभैरष्टचतुःक्षितिप्रमलसद्भिर्योजनैर्विस्तृतै-
दैर्घ्ये चोदरवक्त्रयोः सुरगणानीतैर्भृशं मोदत ॥ ७६७ ॥

अर उस सुमेरु पर्वतमें ऊपरि पांडुक नाम शिला है तामध्य तीन सिंहासन हैं तहां मध्य सिंहासनमें जिनेंद्रकूं विराजमान करि क्षीर समुद्रतें भरे आठ योजन लंबे च्यारि योजन मोटे अर एक योजन मुखवाले कलशनि करि देव परस्पर हर्ष भरेनिसहित अर्घपाद्य करि स्नान करावतो भयो ॥ ७६७ ॥

दिग्पालाः स्वस्वदिक्षु स्थितिमधुरवनीं द्यामधिव्याप्य भक्त्या
शक्राग्निश्राद्धदेवाशरवरुणमरुत्श्रीदशर्वेंदुनागाः ।
सर्वे सर्वज्ञभक्ता अधिकृतनियुताश्चापरं द्वादशेंद्राः
संख्यातीताः सुरा वै निजवपुषि परानंदमाजग्मुरिष्टौ ॥ ७६८ ॥

अर तहां दिक्पाल देव पृथ्वीने तथा आकाशने व्याप्त करि भक्तियुक्त होय इंद्र अग्नि यम नैऋत्य वरुण पवन कुवेर ईशान अर धरणेंद्र चंद्र अपनी अपनी दिशामें स्थिति करते भये ते सर्व सर्वज्ञदेवके भक्त अर अनादिकालतैं अपना नियोगमें निपुण तथा अन्य भी द्वादश इंद्र अर असंख्यात देव देवांगना उस उत्सवमें अपना शरीरमें परम आनंदने प्राप्त होते भये ॥ ७६८ ॥

अतिशयितशरीरे तीर्थभर्तुः पवित्रे जलकणलवलेशो नांगलग्नो बभूव ।
स्फटिक इव तथापि स्वामिसेवात्तचित्ता कृतुपतिललनांगं मार्जयामास भर्तुः ॥ ७६९ ॥

अर श्रीतीर्थंकरका पवित्र अतिशययुक्त शरीरमें जलकणनिका लवलेश किंचिन्मात्र भी स्फाटिकमें तैसैं अंगमें लग्यो हुओ नहीं होतो भयो तथापि स्वामीकी भक्ति सेवामें मग्न है चित्त जाका ऐसी इंद्राणी भगवानका अंगनै मार्जन करती भई ॥ ७६९ ॥

सद्गंधैरनुलिप्य मूर्ध्नि मुकुटं चूडामणिं कौशिके
भाले सत्तिलकं श्रुतौ मणिचिते सत्कुंडले लंबिकां।
मुक्तावल्यथ कंठिकां गलतटेष्वावापकंश्चागदः
.... ॥ ७७०॥

केयूरं भुजयोः पदोस्तु कटके मंजीरयुग्मादिका
आभूषाः परिधापने नवमहामूले सुरेंद्रालयात्।
आनीतानि दधाति न क्षितिभवानींद्रप्रियेत्यादरा—
दाविर्भूतमतिर्नतोत्तमतनुर्भूषां चकार स्वयं ॥ ७७१ ॥

बहुरि सो इंद्राणी भगवानका शरीरनै समीचीन चंदन करि लिंपन करि मस्तकमें तो मुकुटनै अर केशपाशमें चूडामणि रत्नने अर ललाटमें तिलकने अर कर्णमें मणिजडित कुंडलने अर गलभागमें लंबिका नाम हारने मोतीनिकी मालाने अर भुजमें बाजू बंधने अंगद नाम आभूषणने अर हस्तनिमें कंकणने अर कटिमें मेखलाने अर भुजनिमें केयूरने अर चरणनिमें कटकने अर मंजीरयुग्म भूषणने, अर पहरवा वास्तै वस्त्र नवीन नवीन बहुमोल्य दुपट्टा धोवती आदि देवोपनीत ल्याये ही धारण करावती भई अरु पृथ्वीमें उत्पन्न भये तिनकूं नहीं करावती भई। वा इंद्राणी आदरयुक्त बुद्धिमती अर नम्र है मस्तक जाका ऐसो विभूषित करती भई ॥ ७०-७१॥

यस्यांगद्युतिभिः सुकोटिदिनकृद्भासापिधानं धृतं
लावण्येन तु कोटिदर्पककथा वीर्येण विश्वांगिनां।
सारं सौख्यभुवेंद्रकोटितुलनाधिकारमारोपिता
तद्रूपं मुहुरीक्षितः क्रतुभुजः किं किं न कृत्यं व्यभात् ॥ ७७२ ॥

अर जाकी अंगकी कांतिकरि कोटि सूर्यकी प्रभा आच्छादन कियो अरु लावण्य कहिये रूप संपदाकरि कोटि कामदेवकथा धिक्कार प्राप्त भई तथा वीर्य पराक्रमकरि तीन लोकके प्राणीमात्रको बल धिक्कार प्राप्त हूवो अर सुखभूमिकरि कोटि इंद्रनिकी तुलना धिक्कार प्राप्त भई ऐसा श्री जगत्प्रभूका रूपने वार वार देखतो इंद्रकै कहा कहा कृत्य नहीं शोभायमान हूवो ॥ ७७२ ॥

प्रह्वन्मौलिरसौ प्रमत्तहृदयानंदोद्गमेन स्तवं
तत्लोद्भासिगुणौघकीर्तनविधावानंत्यभावं वहन् ।
स्तोकीकृत्य सहस्रनामखचितं स्पष्टीचकारामरा·
धीशस्तेषु मनाग्मया कतिचिदाख्याः स्तूयते पावनाः ॥ ७७३ ॥

अर यो नम्र मुकुटयुक्त इंद्र है सो प्रमोदरूप हृदयका आनंदका होवातैं आप ही उस भगवानमें प्रगट भये गुण समूहके कीतनमें अनंत भावने धारतो संतो अनंत नामनिने समेटि अर हजार नामकरि रचित स्तोत्रने प्रगट करतो भयो तिस अमराधीशका किया नामनिमेंसे मैं किंचिन्मात्र नाम करि पवित्र स्तवन करिये है ॥ ७७३ ॥

त्वं देव ! वीतरागोऽसि नार्थः स्तवननिंदने ।
तथापि भक्तिवशगः स्तवीमि कतिचित्पदैः ॥ ७७४ ॥

हे वीतरागदेव ! तू वीतराग है, तेरे स्तुति अर निंदामें प्रयोजन कछू भी नहीं है। तथापि मैं भक्तिके अधीन हूवो संतो कितनेक पदनिकरि स्तुति करूं हूं ॥ ७७४ ॥

मंगलं शरणं लोकोत्तमोऽर्हन् जिनराड् जिनः ।
सिद्ध आचार्यसंपूज्यः साधुः साधुपितामहः ॥ ७७५ ॥

हे भगवान ! तू मंगल है, अर शरणरूप है, अर लोकमें उत्तम है, अरहंत है, जिनराज है, जिन है, सिद्ध है, आचार्यनिकरि पूज्य है, साधु है, अर साधुनिका पितामह है ॥ ७७५ ॥

प्राग्र्यः पापहरोऽधीशो निःकषायो गुणाग्रणीः ।
पावनं परमंज्योतिः परमेष्ठी सनातनः ॥ ७७६ ॥

अर प्रकर्षकरि अग्रगण्य है, अर पापहर्ता है, अधीश है, अर कषायनिकरि रहित है, अर गुणमें मुख्य है, पावन है, परमज्योति है, परमेष्ठी है, सदाकाल स्थिर है ॥ ७७६ ॥

अव्यक्तो व्यक्तमूर्तिस्तमलक्ष्यो लक्षणातिगः ।
सुलक्ष्म्यो लक्षणाज्ञेयः पापशत्रुरुदारधीः ॥ ७७७ ॥

अप्रगट है अर प्रगटरूप भी है, अर अलक्ष्य है, अरु लक्षणकरि रहित है, अरु सुलक्ष्य है, अर लक्षणनिकरि जानवे योग्य है, अर पापरूप वैरीका शत्रु है, अर उदारबुद्धि है ॥ ७७७ ॥

प्रणीतार्थः प्रमाणात्मा सुनयो नयतत्त्ववित् ।
प्रणाधिः प्रणवो नाद्यो ज्ञानदर्शननायकः ॥ ७७८ ॥

अर निश्चयरूप कियो है पदार्थ जानै सो है अर प्रमाण स्वरूप है, सुंदर नयवान् है, अर नय नैगमादिकनिका तत्त्वने जानवावालो है ध्यानरूप है अर ओंकारस्वरूप है अर अनादि है अर ज्ञानदर्शनको स्वामी है ॥ ७७८ ॥

पुराणपुरुषोऽहार्यरूपो रूपातिगो महान् ।
कामहा कमनो काम्यः कामगामी कलानिधिः ॥ ७७९ ॥

हे भगवन् ! तुम पुराण कहिये प्राचीन पुरुष हो, अर अनुपम रूपका धारी हो अर रूपकरि रहित हो अर महंत पुरुष हो अर कामने हनिवा वारा हो अर मनोहर हो अर कामनारहित हो अर कामगामी कहिये स्वतंत्र विहार करनेवाला हो अर कलाका निधि हो ॥ ७७९ ॥

कम्रः कामयिता कांतः कामनातीतकामुकः ।
कालुष्यहंता कामारिः कोपावेशहरो हरः ॥ ७८० ॥

अर कमनीय हो अर अनेक जनों करि वांछा करनेवारा हो अर मनोहर हो अर संसारीक कामनारहित वडी कामनावारा हो अर पापका हंता हो अर कामका वैरी हो अर शांतमुद्राकरि कोपका मर्दन करनेवारा हो अर हर कहिये दुःखका हर्ता हो ॥ ७८० ॥

स्वयंभूर्विधिरुत्साहधीरः सुकृतभावनः ।
स्रष्टा भूतपतिः साक्षी त्रैलोक्यपरमेश्वरः ॥ ७८१ ॥

अर स्वयमेव ज्ञानचारित्रकरि उत्पन्न हो ऐसा हो अर विधिरूप हो अर उत्साहमें धीरवीर हो अर पुण्यरूप है भावना जाकै ऐसा हो अर आदि ब्रह्मा हो अर प्राणीमात्रनिका स्वामी हो, अर साक्षी (प्रत्यक्ष द्रष्टा) हो अर तीन लोकका परमेश्वर हो ॥ ७८१ ॥

प्रभूष्णुरधिदेवात्मा विश्वराड् विश्वतोमुखः ।
विश्वयोनिर्जिष्णुरीशः संवदः पुण्यनायकः ॥ ७८२ ॥

अर समर्थ हो अर देवाधिदेव स्वरूप हो अर लोकका राजा हो, अर सर्वज्ञानरूपी सुखयुक्त हो अर संसारका स्वभावका उत्पत्ति करनेवारा हो अर जयशील हो अर समर्थ ईश हो अर सुखके करनेवारा हो अर पुण्यका प्रवर्तन करनेवारे हो ॥ ७८२ ॥

धर्माम्बुवाहो धर्मज्ञो वेदविद् वदतांवरः ।
भव्यभानुर्मखज्येष्ठस्त्वं हि ब्रह्मपदेश्वरः ॥ ७८३ ॥

अर धर्मका वर्षा करनेवारे हो अर धर्मका ज्ञाता हो अर वेद कहिये ज्ञान ताकूं जाननेवारे हो अर पंडितनिमें मुख्य हो अर भव्यनिके वास्ते सूर्य हो अर यज्ञमें श्रेष्ठ हो अर तुमहो ब्रह्मपद आत्मस्वरूप ताका ईश्वर हो ॥ ७८३ ॥

भूष्णुः स्थिरतरः स्थाष्णुरचलो विमलो विभुः ।
महीयान् जातिसंस्कारः कृतकृत्यो महस्पतिः ॥ ७८४ ॥

अर स्वयं विना उपदेश भवनशील हो अर स्थिर हो अर अपना स्वरूपमें तिष्ठनेवारे हो अर अचल हो अर विमल हो अर व्यापक हो अर अतिशय करि बडे हो अर हुवा है संस्कार जाकै ऐसा हो अर कृतकृत्य हो अर उत्सवका स्वामी हो ॥ ७८४ ॥

वाग्मी वाचस्पतिः प्राज्ञो गुणरत्नाकरो निधिः ।
शास्ता सर्वज्ञ ईशानः आप्तः सर्वलोचनः ॥ ७८५ ॥

अतिशय वचनशील हो अर वाणीके स्वामी हो अर प्राज्ञ हो अर गुण रूप रत्ननिका भंडार हो अर शिक्षाका दाता हो अर सर्वज्ञ हो अर ईश्वर हो अर यथार्थ वक्ता हो अर सर्वत्र देखनेवाले हो ॥ ७८५ ॥

कूटस्थो निर्विकारोऽस्तिनास्त्यवाच्यगिरांपतिः ।
स्याद्वादनायको नेता मोक्षमार्गोपदेशकः ॥ ७८६ ॥

अर कूटस्थ कहिये तटस्थ हो अर निर्विकार हो अर अस्ति वा नास्ति वा अवाच्य भंगनिका पति हो अर स्याद्वादके उपदेशक हो अर प्रणयनकर्त्ता हो अर मोक्षमार्गका उपदेशक हो ॥ ७८६ ॥

निरीहः सुगतो भास्वान् लोकालोकविभावसुः ।
अनंतगुणसंपूज्यो नित्ययज्ञोऽसि विश्वराड् ॥ ७८७ ॥

अर निर्वांछक हो अर सुगत कहिये सुंदर ज्ञानवान हो अर कांतिमान हो अर लोकालोकका सूर्य हो अर अनंत गुणकरि पूज्य हो नित्य यज्ञरूप हो अर विश्वका राजा हो ॥ ७८७ ॥

एवमष्टोत्तरशतां नाम्नां पातु बंधनात् । (?)
मोचय स्वात्मसंभूतिं देहि देहि महेश्वर ॥ ७८८ ॥

ऐसें नामनिका एक सौ आठ समुदाय मोनै रक्षा करो अर बंधनने छुडावो अर आत्माकी विभूतिने देवो हे परमेश्वर ॥ ७८८ ॥

निर्गलत्प्रेमधारांबुक्षालितांह्रिसरोरुहः ।
मांगल्यपावनत्वादिलुब्धो विधिनियामकः ॥ ७८९ ॥

ऐसी निसरती प्रेमकी धाराको जल करि प्रक्षालित किया है भगवानका चरण कमल जाने अर्थात् नमस्कारका करवा करि मस्तक नमावता चरणनि परि नेत्र पडें तब नेत्रनिका जलकरि प्रक्षाल होते ही ऐसा भाव जानना अर मंगल तथा पवित्रपणाका इच्छुक अर विधिको नियता ऐसो ॥ ७८६ ॥

क्रियाकलापसंवेत्तुरीश्वरस्येश्वरक्रियाः ।

संस्कारयामास पुनर्मंत्रप्रांशुभिरुत्तमैः ॥ ७६० ॥ तथाहि—

इंद्र महाराज है सो उत्तम उत्तम मंत्रनि करि सकल क्रियाका समूहने जाननवाला ईश्वर भगवानकी संस्कार क्रिया जे हैं तिनिनें पुनरुक्त ही निवंतन करतो भयो ॥ ७९० ॥

ओं ह्रीं इक्ष्वाकुकुले नाभिभूपतेर्मरुदेव्यामुत्पन्नस्यादिदेवपुरुषस्य ऋषभदेवस्वामिनोऽत्र बिंबे वृषभांकितत्वाचद्गुणस्थापनं तेजोमयं करोमि स्वाहा।

सो ऐसैं—ओं ह्रीं इक्ष्वाकुलमें नाभि राजा अरु मरुदेवीसे उत्पन्न आदिदेव श्री ऋषभदेव स्वामीका इस बिंबमें वृषभका चिन्ह वाका गुणांको स्थापन तेज स्वरूप करू हूं ।

ओं ऋषभादिदिव्यदेहाय सद्योजाताय महाप्रज्ञाय अनन्तचतुष्टयाय परमसुखप्रतिष्ठिताय निर्मलाय स्वयंभुवे अजरामरपदप्राप्ताय चतुर्मुखपरमेष्ठिनेऽर्हते त्रैलोक्यनाथाय त्रैलोक्यपूज्याय अष्टदिव्यनागप्रपूजिताय देवाधिदेवाय परमार्थसंनिहितोऽसि स्वाहा ।, (आभ्यां) प्रतिमाया अंगानि संस्पृशन् गुणाधिरोपणं कुर्यात् ।

ओं अस्मिन् बिंबे निःस्वेदत्वगुणो विलसतु स्वाहा ॥ १ ॥

ओं अस्मिन् जिने मलरहितत्वगुणो विलसतु स्वाहा ॥ २ ॥

ओं अस्मिन् जिने क्षीरवर्णरुधिरत्वगुणो विलसतु स्वाहा ॥ ३ ॥

ओं अस्मिन् जिने समचतुरस्रसंस्थानगुणो विलसतु स्वाहा ॥ ४ ॥

ओं अस्मिन् जिने वज्रवृषभनाराचसंहननगुणो विलसतु स्वाहा ॥ ५ ॥

ओं अस्मिन् जिनेऽद्व तरूपगुणो विलसतु स्वाहा ॥ ६ ॥
ओं अस्मिन् जिने सुगंधशरीरगुणो विलसतु ॥ ७ ॥
ओं अस्मिन् जिने अष्टोत्तरसहस्रलक्षणव्यंजनवत्त्वगुणो विलसतु स्वाहा ॥ ८ ॥
ओं अतुलबलवीर्यत्वगुणो विलसतु स्वाहा ॥ ९ ॥
ओं हितमितप्रियवचनत्वगुणो विलसतु स्वाहा ॥ १० ॥
एवं दशातिशयान् संस्थाप्य तदनंतरं

ओं अर्हद्भ्यो नमः, नवकेवललब्धिभ्यो नमः, क्षीरस्वादुलब्धिभ्यो नमः, मधुरस्वादुलब्धिभ्यो नमः, संभिन्नश्रोतृभ्यो नमः, पादानुसारिभ्यो नमः, कोष्ठबुद्धिभ्यो नमः, बीजबुद्धिभ्यो नमः, सर्वावधिभ्यो नमः, परमावधिभ्यो नमः ।

ओं ह्रीं वल्गुवल्गुनिवल्गुसुश्रवणे । ओं ऋषभादिवर्धमानान्तेभ्यो वषट् वौषट् स्वाहा । इति मंत्राभ्यां अंगानि संस्पृशेत् ।

तथा—ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स जस्स चक्कं जलंतं गच्छई आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जूए वा विवादे वा रणंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा । इति वर्धमानमंत्रेण चांगानि संस्पृशेत् ।

इत्याकारशुद्धिं निष्पाद्य जयजयशब्दपुरस्सरं तथैवैरावतोपरि जिनं संस्थाप्य राजगृहं नयेत् ।

पुनमत्र—ओं ऋषभ आदि दिव्य देहका धारी सद्य उत्पन्न महाबुद्धि अनन्त चतुष्टययुक्त अर परमसुखमें प्रतिष्ठित निर्मल स्वयंभू अजर अमर पदप्राप्त चतुर्मुख परमेष्ठी अर त्रैलोक्यनाथ त्रैलोक्यपूज्य अष्टदिव्य नामनिकरि सपूजित देवाधिदेव वरदके अर्थि परमार्थमें युक्त होहु । इनि दोय मंत्रनि करि प्रतिमाका अंगनिने स्पर्शित करतो गुणाको अधिरोपण करे । इहां इंद्र अह आचार्य इनिको हो कर्तव्यता कही है सो गुणनिका रोपण ऐसा कि—

इस बिंबमें निःस्वेदता आदि गुण प्रकाशमान होहु । १ । मलरहितत्वगुण प्रकाशमान होहु ।२। क्षीरगौर शोणित गुण प्रकाशमान होहु ।३। समचतुरस्र गुण० । ४ । वज्रवृषभनाराचगुण० । ५ । अद्भुतरूप गुण० । ६ । सुगंध शरीर गुण० । ७ । अष्टोत्तर सहस्रगुण० । ८ । अतुल बलवीर्यत्व गुण० । ९ । हितमितप्रियवचनत्व गुण० । १० । ऐसें दश अतिशयरूप गुण ते स्थापन करे पीछे ओं अर्हंतनिकूं नमः, नवकेवललब्धिनिकूं नमः, क्षीरस्वादुलब्धिकूं नमः, संभिन्न श्रोतृनिकूं नमः, पादानुसारिकूं नमः, कोष्ठबुद्धिकूं नमः, बीजबुद्धिकूं नमः, सर्ववि-

धिकूं नमः, परमावधिकूं नमः। ओं ह्रीं वल्गुवल्गुनिवल्गुसुश्रवणे ओं ऋषभादिवर्धमानांतेभ्यो त्रौषट् स्वाहा इति मंत्रनिकरि भी प्रतिमा अंगनै स्पर्शें।

तथा ओं णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स.........आदि वर्धमान मंत्र है या करि भी अंग स्पर्शन करें। अन्य विंवन पर भी स्पर्श करैं ऐसें आकार शुद्धिने करि जय जय शब्द उच्चारण करि ऐरावत पर आरूढ़ करि सुमेरुतैं राजगृह प्रति भगवानने ल्यावैं।

श्लोकास्तथाहि—

सर्वान् सुरानधिकृतव्यवहारनिष्ठानुद्दिश्य राजगृहमापयितुं सुरेशः।
आज्ञापयत्ववगतप्रमदाभिवृद्धिः स्वं स्वं नियोगमधिकृत्य कृतार्थभूतान् ॥ ७६१ ॥

सुरेश इंद्र है सो प्राप्त भया है प्रमोदकी वृद्धि जाकै ऐसो हुवो संतो सर्व देवनिने अपने अपने अधिकारमें निपुणनिने उपदेश करि प्रभूने राजगृह प्रति ल्यावेकूं आज्ञा करै अर अपना अपना नियोगने पाय सब देव कृतार्थ भये ॥ ७६१ ॥

गंधर्वकिंपुरुषगीतपुरस्सरेण नृत्यत्सुरेशललनागणविभ्रमेण।
दौवारिकाद्यधिकृतेंद्रजयस्वनेन देवाधिदेवमनयत् पितृसद्मधाम ॥ ७६२ ॥

इंद्र है सो गंधर्व जाति तथा किंपुरुष जाति देवनिका गानयुक्त अर नृत्य करता इंद्रादि देवांगनाका समूहका विभ्रम करि अर द्वारमें अधिकृत आदि इंद्रनिका जय जय शब्द करि श्री देवादिदेवने पिताका गृह प्राप्त करतौ भयौ ॥ ७६२ ॥

तत्रागतौ प्रवरमौक्तिकचूर्णपूर्णरंगावलीलिखितपुष्पकमंडनानि।
राजांगणप्रथमतोरणयोरधस्तात् शच्या पुरंध्रिषु पुरस्कृतया कृतानि ॥ ७६३ ॥

तहां भगवानका आगमन समय राजांगणका तोरणद्वयके नीचा भागमें बहुत मोतीनका चूर्ण करि पूर्ण रंगावलीके लिखित फूलनिके मांडना इंद्राणी सौभाग्यवती स्त्रियोंके अग्रभूत जो है, ताकरि किये ॥ ७६३ ॥

आरार्त्तिकेषु मणिरत्नशिखोच्चयेषु पुष्पांजलिप्रकर इंद्रमखाधिराड्भ्यां।

निक्षिप्यमाण उदभात् कनकाचलेषु स्नानीयनीरनिकरो व जिनांगकांतौ ॥ ७६४ ॥

तव इंद्राणीका किया आरतीके रत्न शिलासमूहमें पुष्पांजलिका समूह इंद्र अर यजमान करि क्षेप्यो जैसे मेरुमें क्षेप्यो स्नानका जल भगवानका अंगकी कांतिमें शोभायमान हूवो तैसैं शोभित होते भयो ॥ ७६४ ॥

श्रीमातरं लसितवक्त्रसरोरुहां च राजानमुद्भटमहासुकृतानुभावं ।
नत्वा शताध्वरपतिर्जिनराजमंके संस्थाप्य तांडवमकांडभवं ततान ॥ ७६५ ॥

बहुरि इंद्र महाराज श्रीमती विकसित मुखारविंदयुक्त माताजीने अर प्रकट महापुण्यका अनुभाववाला राजाने नमस्कार करि अरु जिनराजने गोदमें स्थापि आकस्मिक समयमें भया तांडव नृत्य करतो भयो ॥ ७६५ ॥

संवृद्धहर्षफलिताविव तौ स्ववंशमुच्चैर्धृतं यदधिजन्म जिनाधिभर्त्रा ।
भूपावृते सदसि तुष्टुवतुः प्रमोदः पूर्वं कृतार्चनविधिश्च ननर्त शक्रः ॥ ७६६ ॥

बहुरि ते माता पिता वढा हर्ष करि फलित ही है ऐसा अपना वंशमें या समय जिनराजने जन्म धारण किया ता समयमें अनेक राजानिका समूहयुक्त सभांगणमें तुष्टरूप करते भये अर प्रमोदपूर्वक पूजन सामिग्रीकरि इंद्र राजा नृत्य करतो भयौ ॥ ७६६ ॥

इति तांडवानंतरं जिनं वेद्यामारोप्य जन्मकल्याणकचतुर्विंशतितिथीनुद्दिश्य सपर्या कर्तव्या।

ऐसैं महा तांडव नृत्यकरि श्री जिनबिंबने वेदीमें आरोपण करि चौईस जिनेंद्रनिका जन्मकल्याणकी तिथिकी उद्देश्य पूर्वक पूजन करणे।

अंगुष्ठयोरमृतदुग्धविधिं प्रकल्प्य वालार्यमप्रतिभुवः सविधे कुमारान् ।
संयोज्य पंचशतकान् वसनान्नपानभूषाफलादिभिरुपास्य जगाम कामं ॥ ७६७ ॥

बहुरि इंद्र महाराज श्रीजिनराजका हस्त अंगुष्ठमैं अमृतरूप दुग्धविधिनै कल्पनाकरि जो वालक सूर्य समान श्रीजिनका निकट पंचशत

प्रमाण देवकुमारनिकूं संयोजित करि देवोपनीत ही वस्त्र भोजन पान भूषण फलादि सामग्री करि उपासना करि यथेच्छ स्वगमें प्राप्त होतो भयो ॥ ७९७ ॥

अत्र मातापित्रोरंकनिवेशस्थानीयपूर्वप्रक्लृप्तमंडपोपस्कृतवेदिकायां भद्रासने मूलबिंबस्थापनं विदध्यात्।

इहां माता पिताका गोद स्थानापन्न पूर्वें जो मंडप भूषित वेदी थी उसमें भद्रासनमें मूलबिंबका स्थापन करै।

दोलनारूढक्रीडां च विदध्युः पुरंध्रयस्तथात्रैवान्या अपि प्रतिष्ठेयाः प्रतिकृतयः स्थाप्या इति दिक्।

अर इहां ही इंद्राणी आदि सौभाग्यवती स्त्री अन्य भी दोलना क्रीडा (पालनामें) करै अर बिंब भी उस ही वेदीमें स्थापन करना । ऐसें यथा योग्य विधि करनी।

यथा वा बालेंदुः प्रतिदिनमवर्द्धन्निजकरै-
स्तथायं श्रीसार्वोवधिमननयुक् किं च युवतां।
अवाप्तः पितादेर्नृपपदगसाम्राज्यकमलां
स्म भुंक्ते चापेषुद्रघणाकरवालादिसहितः ॥ ७९८ ॥

जैसें बालक चंद्रमा अपने किरणनि करि प्रतिदिन वृद्धिने प्राप्त होय तैसें मानू येह सर्व हितकारी जिन अवधिज्ञानसंयुक्त युवा अवस्थाने प्राप्त होतो भयो संतो पिताने दिया राज वा चक्रवर्ती पद लक्ष्मीनें भोगतो भयो। तब राज्य अवस्थामें धनुष बाण मुद्गर तरवारि आदि शस्त्रयुक्त होतो भयो ॥ ७९८ ॥

इति राज्योपभोगचिन्हानि शस्त्राण्यस्त्राणि च पुरः स्थापयेत्।

या प्रकार राज्यके भोगोपभोग चिन्ह शस्त्र तथा अस्त्र अग्रभागमै स्थापन करै व्यवहारमात्र।

——:※:——

अथ निःक्रमणकल्याणारोपः ।

अब व्यवहारमात्र राज्य चिह्न दिखाय तपकल्याण प्रारंभ करिये है—

पूर्वं लौकांतिका देवा कल्प्या अष्टौ सुबुद्धयः ।
श्रुतांबुनिधिपारज्ञाः धीराः सदुपदेशने ॥ ७९९ ॥

इहां पूर्व आठ संख्यावाले सुबुद्धि अर शास्त्रसमुद्रके पारगामी अर समीचीन उपदेशमें धीरवीर ऐसे लौकान्तिक देव कल्पना करने योग्य है ॥ ७९९ ॥

इत्युक्त्वा लौकांतिकदेवोपरि पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।
ऐसें लौकांतिक देवोपरि पुष्पांजलि क्षेपनी ।

अब भगवानके वैराग्य भावनाकूं दिखावैं हैं—

अतिमृदुपरिपाकात् कर्मणां पूर्वजन्मावधृतजिनपतित्वोद्भावनानां प्रभवात् ।
किमपि लघुनिमित्तालंबनं प्राप्य धीमानुपधिनिगडबंधानुज्जहाति स्म बुद्धौ ॥ ८०० ॥

कर्मनिका अत्यन्त कोमल विपाचनतें तथा पूर्व जन्ममें धारण कियी तीर्थंकर प्रकृति पैदा करनेवारी भावनाका प्रभावतैं कछू विद्युत्पात आदि थोरा भी निमित्तका आलंबन प्राप्त होय वह धीमान् उपाधि जे द्वि प्रकार परिग्रहरूप बेडीका बन्धन तिनैं अपना भावमें छोड़तो भयो ॥ ८०० ॥

अहो संसाराब्धौ बहुगतिपरावर्त्तविकटे पतद्दुर्दुःखोर्मिप्रकरचलनभ्रांतिसतते ।
परिश्च्योतद्धर्मप्रवहणतयागाधदुरितजले मज्जोन्मज्जाविव बहुकृतौ कर्मवशगैः ॥८०१॥

सो विचार ऐसा है कि अहो ! बडा आश्चर्य है इनि कर्मनिका वश भये संसाररूप समुद्र जो बहुगति चतुर्गतिमें परावर्तन करि विकट अर पडती है खोटी दुःखरूप लहरका समूह तिनका चलना सोही भ्रांति तिनि करि भरया अर अपार पापरूप जलयुक्त ऐसामें नष्ट भया धर्मरूप नौकापणा करि मज्जन उन्मज्जन बहु प्रकार किये ॥ ८०१ ॥

अथ भावना नाटयंति ।

अत्र अनित्यादि भावनाने ग्रंथकर्ता नटावै है । सो ही लौकांतिक देवोंका स्तुति उपदेश है ।

पर्यायबुद्ध्या खलु वस्तुजाते विनश्वरे मोहवशाद् विधत्ते ।
रतिं कदाचिद्विरतिं मनुष्यो रागद्विषाभ्यां विपरीतबुद्धिः ॥ ८०२ ॥

ऐह रागद्वेषनितैं विपरीत भई है बुद्धि जाकी ऐसा प्राणी पर्याय अपेक्षा विनश्वर ऐसा सकल वस्तुमात्रमें मोहका उदयतैं कदाचित् रति कदाचित् अरति भावने धारण करै है ॥ ८०२ ॥

अनादिमिथ्यात्ववशात्कषायपरीतचेता न वशः स्वकस्य ।
वांतात्मभानामृत एष जंतुः ऋषीकहालाहलमेव भुंक्ते ॥ ८०३ ॥

येह प्राणी अनादि प्राप्त भया मिथ्यात्वका वशतैं कषायनिकरि वेष्टित चित्तवाला आपके वश नहीं रहता है फिर वमन किया है आत्मज्ञानरूप अमृत जाने ऐसा येह प्राणी इंद्रियनिका विषयरूप हालाहलने ही खावै है ॥ ८०३ ॥

श्रीदेहपुत्रैश्यकलत्रचिंतां पुनः पुनर्यत्र गतौ प्रचिंतन् ।
तदाप्त्यनाप्तिप्रतिबद्धचेताः स्वयं स्वभावे स्थितिमुज्जहाति ॥ ८०४ ॥

अर जिस गतिमें गया तहां लक्ष्मी देह पुत्र अपनी उच्चता अर स्त्री इनकी चिंता होने वारंवार चिंतन करता अर इनका वियोग संयोगमें ही थंबा है चित्त जाका ऐसा हुवा संता स्व स्वभावकैं स्थिरता छोडै है ॥ ८०४ ॥

वपुःस्थितिर्यत्र न तत्र कास्था भिन्नेषु पुत्रादिषु चेत्तथापि ।
गृहं ममार्थो मम पुत्रमित्रं इत्थं परस्वत्वधिया वृणोति ॥ ८०५ ॥

अर तहां अपना शरीरकी ही नियत स्थिति नहीं तहां भिन्न जे पुत्र मित्र इनमें कहा आस्था है ? तथापि येह मूल येह मेरा गृह है, अर येह मेरा द्रव्य है, अर येह पुत्र मित्र है, ऐसें अपनी बुद्धि करि पर वस्तुमें ग्रहण करै है ॥ ८०५ ॥

शीर्णानि सर्वाणि पुनर्न तृष्णा ज्वरेपि दाहं द्विगुणीकरोति ।
मूढात्मना तत्र निमज्यते वा संक्षीयते जन्मपरंपरायां ॥ ८०६ ॥

अर या संसारमें सर्ववस्तु जीर्ण होय है, एक तृष्णा नहीं जीर्ण होय है, अर तृष्णा ज्वरतें भी अधिक दाहनै द्विगुण करै है अर मूढ प्राणी ई तृष्णामें अनेक जन्म संतानमें डूबे है अर जन्ममरण करै है ॥ ८०६ ॥

क्वचित्तरंगाः सरितां जलानि मेघस्य पृथ्व्यंतरितानि भूयः ।
पश्चान्निवर्तंत इहोपभुक्ता नैका कला कालविडंबनस्य ॥ ८०७ ॥

अर कोई समयमें नदीनिका जलतरंग तथा मेघका पृथ्वीमें गये भये भी जल पाछा फिरि निवर्तै है अर इहां भोगी हुई एक कला कहिये घटी कालचक्रकी नहीं निमडै है ॥ ८०७ ॥

प्रतिक्षणं त्वायुरिदं क्षिणोति मृत्युः पुरस्तात्समुपैति नृणां ।
जनुर्जरामृत्युपथिस्थितानां न चित्रमेतद्विषयांध्यभाजां ॥ ८०८ ॥

अर देखो इह आयु क्षण क्षणमात्रमें तो क्षीण होय है अर मृत्यु प्राणीनिकी अग्र प्राप्त होय है तो जन्म जरा मृत्युका मार्गमें स्थित अर विषयनिरूप अंधकारके मध्य तिष्ठता प्राणीके येह आश्चर्य नहीं है ॥ ८०८ ॥

ध्रुवं पदार्थस्य समागमं ते वियोगभावः समुपैति तस्मिन् ।
विद्वेष्टि मूढस्तदपायचिंतो बध्नाति कर्माण्यपुनर्भवंति ॥ ८०९ ॥

अर निश्चय करि पदार्थका संयोगके अंत वियोगभाव प्राप्त होय ही है अरु मूढ़ प्राणी तिसमें विद्वेष कर है अर ताका नाशहोतैं चिंतायुक्त हुवो संतो नवीन कर्मने बांधे है ॥ ८०९ ॥

दावप्रदग्धवपुषो विगलद्धितस्य स्फारीभवंति च कपेर्व्रणकंडुरोगाः ।
दंतैर्विदारिततनोरिव यद्हृषीकभोगैस्तदायततृषा प्रतिजीवजाता ॥ ८१० ॥

अर जैसैं दावानल अग्निकरि दग्ध शरीरवाला अर भूलि गया है हित जानै ऐसा व्रतमें कंडूरोग कि खाजरोग दंतनिकरि विदीर्ण किया है शरीर जानै ऐसा कपिके जैसै विस्तरै है तैसैं इंद्रियनिका भोगकरि ताका प्राप्तिकी वांछा जीवमात्रके विस्तृत होय है ॥ ८१० ॥

देवदानवसुधांशुभास्करा इंद्रनागपतियक्षराक्षसाः ।
भूरिशो नवनिधीश्वराः क्षणाद् रक्षितुं न मरणात् प्रभूष्णवः ॥ ८११ ॥

अर देव दानव चंद्र सूर्य तथा इंद्र धरणेंद्र यक्ष राक्षस जे हैं, ते नवनिधिके स्वामी चक्रवर्ती आदि जे है ते बहुविध समर्थ भी इस प्राणीकूं मरणतैं रक्षा करिवेकूं समर्थ नहीं है ॥ ८११ ॥

वित्तवीर्यसुकृतव्यपायिनो पुत्रदारसुहृदोऽर्थकामुकाः ।
नाल तत्कृतिभपास्य जंतवः स्थैर्यमाप्नुयुरहर्निशं क्षणात् ॥ ८१२ ॥

अर पुत्र स्त्री मित्र जे हैं ते धन पराक्रम अर पुण्यके नाश करनेवारे हैं अर धनहीके लोलुपी हैं। अर प्राणी हैं ते पुत्र स्त्री आदिका कृत्यनै छोडिकरि रात्रिदिन क्षणमात्र भी स्थिरतानैं नहीं पावै हैं ॥ ८१२ ॥

आहारभीतिमैथुनपरिग्रहग्रहचपेटया विकलाः ।
कुत्रापि न संसृतिचक्रे सुदृशात्मानं न पश्यंति ॥ ८१३ ॥

देखिये येह प्राणी सर्वत्र आहार भय मैथुन परिग्रह येह च्यारि संज्ञारूपी ग्रहनिकी चपेटिकाकरि विकल भये संते कहीं भी संसार परिभ्रमण चक्रमें सुदृष्टि करि आत्माने नहीं देखै हैं ॥ ८१३ ॥

ये संबद्धा अणवो निष्पन्नं यैर्भवांतरेऽप्यशुचि ।
देहं त एवाघचिताः शकलीक्रियतेऽद्य भावितैरंगं ॥ ८१४ ॥

जिन प्राणीनिने अपनी शरीरकी वृद्धिमें परमाणु संबंधरूप किये अर अपवित्र देह निष्पन्न किया वे ही इस भवमें संचयरूप भये। अर कम-भावनानुसार तिनकरि ही देह खंडित करिये है ॥ ८१४ ॥

पश्यतु मम मूढत्वं जातावधिबोधलोचनसहस्रस्य ।
दृष्ट्वापि विश्वविकृतिं निमज्जनं तत्र निर्भयं कुर्वे ॥ ८१५ ॥

श्रीभगवान विचारें है कि मेरा मुढपना देखो प्राप्त भया है अवधिज्ञानरूपी नेत्रनिका सहस्र जाकै ऐसा मेरे भी संसारका विकारने देखि करि भी तहां ही अपना डूबना निःशंक करू हूं ॥ ८१५ ॥

संख्यातिगा चरमजातिनिगोतवासान्निर्गत्य भूरिजननानि धरांबुजातौ ।
तेजोमरुत्सु च वनस्पतिषु द्विभित्सु क्षुद्रा भवाः कुमरणाद्भविना गृहीताः ॥ ८१६ ॥

अनंत वा असंख्यात जन्ममें तो निगोदको वास करै है अर तातै कथंचित् निकसि पृथ्वीकाय जलकाय जातिमें तथा अग्निकाय पवन-कायमें चकारतैं वनस्पति प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेदरूप दोय प्रकारमें इस प्राणीने कुमरणतैं क्षुद्र भव ग्रहण किये ॥ ८१६ ॥

द्वित्र्यादिकेंद्रियगणेषु च पंचकाक्षेऽसंज्ञित्वसंज्ञिविधया द्वितयप्रणीते ।
तिर्यग्मनुष्यसुरजातिषु जन्ममृत्युकष्टं प्रलब्धमसुभृद्भिरघोपयोगात् ॥ ८१७ ॥

फिर त्रसकायमें तेइंद्रियनिका गणमे तथा पंचेंद्रियनिमें संज्ञी असंज्ञी दोय प्रकार कथितमें अर तिर्यच मनुष्य देव जातिमें जन्म मरण का कष्टने पापका योगतैं प्राणीने लब्ध किये अर्थात् पाये ॥ ८१७ ॥

स्वर्गस्थोऽप्यशुभोदयेन पतति श्वत्वे तथा श्वा सुरेंद्र

संजायेत भवावर्वर्तसरणेः कुल स्थिरत्वं भवेत् ।
चेदद्यापि भवांधकूपपतनादुद्धर्त्तये किं कृतं
विज्ञानप्रवणेशतादिविधिषु प्राप्तेष्वपि प्रायशः ॥ ८१८ ॥

अर स्वर्गका देव भी अशुभकर्मका उदयकरि कुक्कुर पर्यायमें पडे हैं। अर श्वान भी कारण पाय शुभोदयकरि देव हो जाय है इस भव-परावर्तनकी स्थिरता कहां भी नहीं होय है ऐसा होतैं अवै भी वहु प्रकार तीन ज्ञानका पावना ईश्वरताका पावना आदि विधि प्राप्त भया भी इस भवांध कूपपतनसैं नहीं उद्धार करूं तो कहा किया ? अर्थात् यो विधि प्राप्त भई तब भी कहा लाभ है ? ॥ ८१८ ॥

द्रव्यक्षेत्रजकालभावभवतः पंचप्रपंचोच्छलत्-
संसारे कति नाम पंचतयतां प्राप्ताः न के प्राणिनः ।
धिग्मूढत्वमतंद्रितं पितृसुतस्त्रीश्र्यादिपाशेषु वा
बद्ध्वा दुर्गतिषु प्रयांति भविनो दुःकर्मरज्जूद्धृताः ॥ ८१९ ॥

इस संसारमें कौन प्राणी द्रव्य क्षेत्र काल भव भावरूप पंच प्रकार उछलता संसारनमैं कितने मरणाने नहीं प्राप्त भये हा धिक् है ! अर ऐ मूढपणाने पिता पुत्र स्त्री लक्ष्मी आदिकी पाशी वचन कायका योगनि करि तथा कर्मरूप जेवडी करि खेंच्या हुवा प्राणी दुर्गतिमें प्राप्त होय है ॥ ८१९ ॥

आकिंचन्यतपःशरण्यमभवद्येषां मनःकायकृद्-
योगैस्ते खलु मोक्षवर्यललनास्वायंवरं लंभिताः ।
जन्मापत्पथविच्युताः शिवसुखे मग्नाः स्वयंभाविन-
स्ते धन्यास्तदिहाशु मे समुदयो जागर्तु शुद्धात्मनः ॥ ८२० ॥

अर ये महात्माके मन वचन काय योगनिकरि आकिंचन्यभाव तप है सो शरण्य होतो भयो। ते ही मुक्तिरूप उत्तम स्त्रीका स्वयंवरपणातैं प्राप्त भये अर जन्म मरण आपदाका मार्गतैं च्युत भये अर मोक्ष सुखमें मग्न, स्वयं होनेवारे ते ही धन्य है वा कारण अब मेरे शीघ्र ही शुद्धात्माको उदय जागो ॥ ८२० ॥

इत्थं भावनया विशुद्धमनसस्त्रैलोक्यचूडामणि-
सिद्धत्वं कृतकृत्यतावगमनात् पूर्णं लभंते सुखं।
इत्येवं मनसि स्थितं प्रकटयंतः स्वं नियोगं पुर-
स्कृत्यैवामरपूजिताः सुरवरा आजग्मुरुद्धात्मनः ॥ ८२१ ॥

या प्रकार अनिशाद भावनाकरि विशुद्ध भयो है मन जिनको ऐसे धन्य पुरुष कृतकृत्यताका लाभतैं तीन लोकमे चूड़ामणि समान सिद्ध पदने अर पूर्ण सुखने प्राप्त होय है। ऐसैं श्रीभगवानका मनमें तिष्ठता भावने प्रकट करता अर अपना नियोगने अग्रकरि देवनिकरि पूजित लौकांतिकदेव ऋद्धिकरि प्रसन्न है आत्मा जिनको ऐसे हुवे संते आवते भये ॥ ८२१ ॥

अथ लौकांतिकदेवागमनप्रतिज्ञानाय पुष्पांजलि क्षिपेत्।

ऐसैं लौकांतिक जातिका देव आगमनके अर्थि पुष्पांजलि क्षेपना।

अब लौकांतिक देवनिका वर्णन करै हैं—

सारस्वतादिमदसंख्यकुलप्रसूता एकं भवं समधिगम्य शिवालयाप्त्याः।
स्याद्द्वादशांगविनिवेदितविश्वतत्त्वा आगत्य संस्तुतिमिषाद् विहितोपदेशाः ॥ ८ २ ॥

सारस्वत आदित्य आदि आठ कुलमें उत्पन्न भये अर एक भव मनुष्यपनाको पाय मोक्षरूप स्थानमें प्राप्त होनेवारे द्वादशांगवाणीकरि संसारका समस्त तत्त्वने जाननेवारे ऐसे ये देव भगवानके समीप आय स्तुतिके मिषतैं कह्यो है उपदेश जिनि ऐसे होते भये ॥ ८२२ ॥

स्वामिन्नद्य जगत्त्रये प्रसरतां मांगल्यमाला यतः

सर्वेभ्यः सुकृतं भविष्यति भवत्तीर्थामृतांभोधरात् ।
घोरापज्ज्वलनापनोदनमितो भव्यात्मनां जायतां
वैराग्यावगमस्त्वया परिचितस्तस्मै नमस्ते पुनः ॥ ८२३ ॥

हे स्वामिन् ! यातैं अवार तीन जगतमें प्राप्त भये प्राणीनिकूं मांगल्यकी पंक्ति होय है अर सर्व प्राणीनिके अर्थि आप तीर्थरूपी अमृतमेघतैं कल्याण होसी अर यातैं भव्यजीवनिके घोर आपदारूप अग्निकी शांति उत्पन्न होय सो वैराग्य भावनाको अवगम तैंने परिचय कियो ऐसो तेरे वास्ते बारंबार नमस्कार होहु ॥ ८२३ ॥

संसारदुःखविनिवृत्तिपरायणः स्वयं बुद्ध्वा भवस्थितिमिमां स्वपरात्मनां शिवं ।
कर्तैत्यसावभिमतस्वनियोगभावुकानस्मान् प्रपंचयति निःक्रमणोत्सवस्तव ॥ ८२४ ॥

अर स्वामिन् ! या संसारकी स्थितिने जाणि इस संसारका दुःखकी निवृत्तिमें सावधान आपही हो । अर स्वपरके कल्याणका कर्ता आप ही हो अर निःक्रमण कहिये दीक्षाको उत्सव तिहारो है सो अनादि वांछित नियोगकें भजिवेवारे हम जे हैं तिनिने प्रेरित करै है ॥ ८२४ ॥

के वा वयं त्वदुपदेशविधानदक्षाः स्वायंभवस्य सकलागमपूतदृष्टेः ।
आत्मैव केवलमथो प्रतिबुद्धमार्गं नीतः स्वयं न खलु भव्यगणोऽपि तात ॥ ८२५ ॥

अथवा हम तेरे उपदेशके देनेवारे कौन हैं अर तुम स्वयंभू सकल आगमकरि शुद्ध है दृष्टि जिनकी ऐसा तेरा आत्मा ही हे तात ! केवल संबोधनका मार्ग नहीं प्राप्त कियो किंतु सकल भव्यगण ही संबोधन मार्ग प्राप्त कियो ॥ ८२५ ॥

अयं पितेयं जननी तवेति लोका मुधार्थं व्यवहारयंति ।
विश्वेशिता विश्वपितामहस्त्वं माताऽसि सर्वप्रतिपालनेच्छुः ॥ ८२६ ॥

अर लोक व्यवहारका झूंठा मार्गने लेय यह तेरा पिता है अर यह तेरी माता है, ऐसा कहै हैं । तू ही विश्वको स्वामी है, अर विश्वको पितामह है अर प्रमाणको कर्ता है अर सर्वका पालन उद्धारको इच्छुक है ॥ ८२६ ॥

अवाप्तसंसारतटः स्वलब्ध्या निमित्तमन्यत्समुपस्थितोऽसि ।
स्वयंप्रबुद्धः प्रभविष्णुरीशः कदापि नास्मत्स्तवनेन बुद्धः ॥ ८२७ ॥

अर स्वामिन् ! तू अपनी लब्धिकरि संसार समुद्रका पार प्राप्त होनेवारो है अन्य तो निमित्तमात्र है, तुम स्वयंबुद्ध हो, समर्थ हो, स्वामी हो, हमारा स्तवनकरि कदापि नहीं बुद्ध हो ॥ ८२७ ॥

प्रकाशितं सूर्यमुदीक्ष्य दीपः स्वयं स्वदीप्त्या किमु भासयेत्तं ।
गंगा स्वयं शीतलतोपदात्री किं पल्वलेन स्वतृषां भनक्ति ॥ ८२८ ॥

अर विश्वका प्रकाश करनेवारा सूर्यने देखि दीप कहा अपनी प्रभाकरि प्रकाश करै ? तथा गंगा नाम नदी स्वयं शीतल जल देनेवारी है सो कहा छोटा सरोवरसें अपनी तृषा मैटै तैसैं आप जगत्पितामहने हम कहा उपदेश देय संबोधैं ? ॥ ८२८ ॥

जय कल्याणपरंपर मदनमयंकर निजशक्तिपते ।
जय शाश्वतसुखकर त्रिभुवनमहिधर जय जय जय गुणरत्नपते ॥ ८२९ ॥

हे कल्याण परंपरावारा जयवंत होहु, हे अविनाशी सुखका करनेवारा जयवंत होहु, हे त्रिभुवनका पृथ्वीधर ! जयवंत होहु, अर हे गुण-रत्नका पति-ईश्वर जयवंत होहु ॥ ८२९ ॥

इति स्तुत्वा जिनेशानां नतमस्तकमौलयः ।
मंदारकुसुमोद्दाममालयार्चां व्यधुः सुराः ॥ ८३० ॥

या प्रकार नम्रीभूत है मस्तक मकुट जिनका ऐसे लौकांतिकदेव श्री भगवानने स्तुतिकरि मंदार आदि कल्प वृक्षके पुष्पनिकी पंक्तिकरि पूजाने रचते भये ॥ ८३० ॥

इति बिंबोपरि लौकांतिकदेवर्षिकृतपुष्पांजलिः ।

ऐसें बिंब ऊपरि लौकांतिक देवनिकरि पुष्पांजलि क्षेपनी ।

वुद्ध्वा स्वस्वनियोगेन तपःकल्याणमूर्जितं ।
चतुर्णिकाया देवेंद्रा आजग्मुः कृतसंस्तवाः ॥ ८३१ ॥

अव चतुर्णिकायके देव जे हैं ते अपना अपना नियोगकरि प्रकट भया तपःकल्याणने जानिकरि स्तुति करते संते आवते भये ॥ ८३१ ॥

संबोध्य पितॄन् स्वकुटुंबलोकान् पौरांस्तथांतःपुरमाशु याने ।
विनिर्मितं वा शिविकादिरूपे समारुरोह प्रतिपन्नमूर्तिः ॥ ८३२ ॥

अर भगवान अपना माता पिताने तथा अपना कुटुंबके लोकनिने तथा नगरनिवासी जनने तथा अपना अंतःपुरने संबोधि शीघ्र शिविकादिरूप देवनिकरि रचित यानमें प्रसन्नतापूर्वक आरोहण करतो भयो ॥ ८३२ ॥

अत्रैवान्यासां प्रतिमानामुपरि पुष्पांजलिः ।

ऐसें भगवानने पालिकी पर विराजमानकरि अन्य बिंबनिपरि पुष्पांजलि क्षेपणो ।

वादित्रगंधर्वजयेतिशब्दैः स्तब्धीकृताशानिचये मुहूर्त्ते ।
शुभे दिनार्धोत्तरभाजि जिष्णोर्नैर्ग्रंथ्यकालः शुभदो विधेयः ॥ ८३३ ॥

अव पालकी पर आरोहण समय अनेक वादित्रनिका शब्द तथा गंधर्व आदिका जय जय शब्दकरि व्याप्त भया है दिशांका समूह जामें ऐसा दिनार्धका अपर भाग शुभ मुहूर्तमें श्रीजिन जयनशीलका निर्ग्रंथकाल शुभकूं देनेवारा करना ॥ ८३३ ॥

त्रिसप्तपद्यां स्वकुटुंबिविद्याधरामरैरूढसुवंशदेशा ।
अनेकभूपार्थिजनैरुपास्या जयत्वलभ्या शिविका जिनस्य ॥ ८३४ ॥

वहुरि शिविकारूढ़ भगवानकूं निज कुटुंबके जन अर विद्याधरनितैं तीन सात पेंड़ लेय अमर देवनिकरि धारण किया है वांस दंड जाका अर अनेक राजारूप याचकनिकरि सेवनियोग्य ऐसी अलभ्य जिनेंद्रकी पालकी जयवंती रहो ॥ ८३४ ॥

अथ दीक्षावृक्षावतारः।

अब दीक्षा वृक्षनिका वर्णन कहै है—

न्यग्रोधो मदगंधि सर्जमशनं श्यामे शिरीषोर्हता-
मेते ते किल नागसर्जजटिनः श्रीस्तिंदुकः पाटलाः।
जंब्वश्वत्थकपित्थनंदिकविटाम्राववंजुलश्चंपको
जीयासुर्बकुलोऽत्र वांशिकधवौ शालश्च दीक्षाद्रुमाः ॥ ८३५ ॥

अरत तीर्थकरोंका दीक्षा प्रधान वृक्ष प्रथम तो १ वट २ सप्तच्छद अर्थात् सत् नो ३ साल ४ साल ५ प्रियंगु ६ प्रियंगु ७ श्रीखंड ८ नागवृक्ष ९ साल १० पलास ११ तींदू १२ पाटल १३ जंबू १४ पिप्पल १५ दधिपर्ण १६ नंदिवृक्ष १७ तिलक १८ आम्र १९ अशोक २० चंपा २१ मोलसरी २२ वांस २३ धव २४ साल येह अनुक्रम चौईस जयवंते वर्तौ ॥ ८३५ ॥

ओं ह्रीं णमो अरहंताणं जिनदीक्षावृक्षा अत्रावतरंतु अवतरंतु स्वाहा।

एतेषु मध्ये यन्नाम्नो जिनस्य वृक्षाभावेऽपि एषु मध्ये योऽन्यतमं भवेत् स एव ग्राह्यः।

आगें कहिये है कि जिस जिनेश्वरको जो वृक्ष होय उस ही अधोभाग उस जिनेंद्रका तप कल्याण करना। कदाचित् वैसा वृक्ष नहीं मिले तो इनि चौईसमें मिलै सो ही ग्रहण करना ॥

सहेतुकवने गत्वा मंडपांतरितांबरे।
दूरं सभानिवेशं च कुर्यादिंद्रो विधिप्रदः ॥ ८३६ ॥

ऐसैं पालकीमें आरूढ होय वनमें जाय जिस सहेतुक नाम सामान्य वनमें जहां मंडप निर्माण किया है तहां सभाका निवेश किंचिन्मात्र दूर, विधिको कर्ता इंद्र करै ॥ ८३६ ॥

जिनविंबं समुत्तार्य पाषाणे वाथ पट्टके ।
दीक्षातरोरधोभागे प्राङ्मुखं चोत्तरोन्मुखं ॥ ८३७ ॥

तहां जिनविंबनै पाषाण अथवा पट्टमें स्थापि दीक्षावृक्षके अधोभागमें पूर्व दिशा सन्मुख तथा उत्तर दिशा सन्मुख स्थापै ॥ ८३७ ॥

केशलोचो भूषणानां गंधमाल्यादिवाससां ।
त्यागः सर्वसभासाक्षी कारयेन्मंत्रविक्तमः ॥ ८३८ ॥

तहां भूषण वस्त्रनिका तथा गंधमाल्यादिकका त्यागकरि कचलोच करै, सर्व सभाकी साक्षी पूर्वक इंद्र अरु आचार्य करावै ॥ ८३८ ॥

केशा वासांसि भूषाश्च पिटिकायां निधाय च ।
इंद्रः स्वस्वस्थापनादिक्षेत्रे योग्यं समर्पयेत् ॥ ८३९ ॥

तव इंद्र महाराज केश अर वस्तु अर भूषण एक पेटीमें स्थापि आप आप स्थानमें यथा योग्य भजै ॥ ८३९ ॥

तत्रोपदेशविधिना तु सभासदः स्युराचार्यक्तश्रुतवराग्रिमवाक्यपुष्टाः ।
शीलं यमं शमदमेंद्रियरोधनानि गृह्णीयुरिंगितफलेषु यतो निपातः ॥ ८४० ॥

तहां आचार्यका श्रुतधरका वाक्य वैराग्यगर्भित उपदेश विधिकरि सभाके जन परिपुष्ट होवैं अर शील अर पंचेंद्रिय दमन यम आदि नियम सभाके जन ग्रहण करैं कारण येह कि अपनी चेष्टाका फलमें आपको निपात होय है ॥ ८४० ॥

एवं सभासद्भ्यो धर्मोपदेशं दत्वा तत्रापवरकेन जिनविंबं परीत्य केषुचिदेव जनेषु योग्येषु दीक्षाविधिं नियुंज्यात् ।

तत्र 'नमः सिद्धेभ्यः' इति मंत्रेण केशोत्पाटनं । अत्र विंबस्याचेतनत्वाज्जिनकार्यं केशलोचादि आचार्येणैव विधातव्यं । तथा च–अहं सर्वसावद्यविरतोऽस्मीति प्रतिज्ञायार्हद्भक्तिसिद्धभक्तिपाठो जिनोद्देशेनाचार्येण कार्यः । विधिमुद्दिश्य त्वाचार्यश्रुतभक्तिपाठः कर्तव्यः । अत्र कमंडलुपिच्छिकादानं तीर्थंकरस्य शौचक्रियाजीवघाताभावाच्च न कर्तुं प्रभवति, केवलं साधुत्वे उपयोगि न तु प्रतिमायामर्हति च, इत्याम्नायविदः ।

तत्र तावदकन्यासविधिः। कर्पूरचंदनकाश्मीरादिसुगंधद्रव्यैः सुवर्णशलाकया प्रतिमाया अंगेऽङ्गन्यासो विधेयः। तत्र तावदाचार्यः स्वशरीरे मातृकामंत्रं जपन् अंकानि संन्यस्य तदुत्तरं प्रतिमायां लेखनद्वारा कार्यो विधिः। तथाहि—

ओं अं नमः इति ललाटे, ओं आं नमः मुखवृत्ते, इं ईं नेत्रयोः, उ ऊं कर्णयोः, ऋ ॠं नासिकयोः, ऌं ॡं गण्डयोः, ए ऐं ओष्ठयोः, ओं औ दंतयोः, अ अः मूर्ध्नि, कं खं दक्षिणबाहुदंडे, गं घं दक्षिणकरांगुलिषु, ङं दक्षिणकराग्रे, चं छं वामबाहुदंडे, जं झं वामहस्तांगुलिषु, ञं वामहस्ताग्रे, टं ठं दक्षिणपादमूले, डं ढं दक्षिणपादगुल्फे, णं दक्षिणपादाग्रे, एवं तवर्गं वामपादे, पवर्ग पार्श्वादिकुक्षयंतं, यं हृदि, रं दक्षिणस्कंधे, लं ककुदि, वं वामस्कंधे, शं हृदादिदक्षिणकरे, षं हृदादिवामकरे, सं हृदादिदक्षिणपादे, हं हृदादिवामपादे, क्षं हृदादिजठरे, न्यसेत्, स्थापयेच्च।

ततः अनादिसिद्धमंत्रं जपेत्—ओं णमो अरहंताणमित्यादि, धम्मो सरणं पव्वज्जामीत्यंतं स्वाहा। इत्यष्टोत्तरशतं जपः, ततः पुष्पाणि सुवर्णलवंगजात्यादिभवानि संगृह्य एकैकसंस्कारमंत्रमुच्चार्य प्रतिमोपरि क्षेपः।

तथाहि—ओं ह्रीं इहार्हति सद्दर्शनसंस्कारः स्फुरतु स्वाहा। १।

ओं ह्रीं इहार्हति सज्ज्ञानसंस्कारः स्फुरतु स्वाहा। २।

ओं ह्रीं इहार्हति सच्चारित्रसंस्कारः स्फुरतु स्वाहा। ३।

एवं ओं ह्रीं इहार्हति, इत्यादि संस्काराग्रे स्फुरंत्वित्यंते स्वाहा। इति न्यसेत्सर्वत्र सत्तपःसंस्कारः। ४।

सद्वीर्यचतुष्टयसं०। ५। अष्टप्रवचनमातृका। ६। शुद्ध्यष्टकावष्टंभः। ७। परीषहजयः। ८। त्रियोगेन संयमाच्युतिः। ९। कृतकारितानुमोदनैरनतिचारनिवृत्तिः। १०। शीलसप्तकं। ११। दशासंयमोपरमः। १२। पंचेंद्रियनिर्जयं। १३। संज्ञानचतुष्टयनिग्रहः। १४। दशविधिधर्मधारणं। १५। अष्टादशसहस्रशीलपरिशीलनं। १६। चतुरशीतिलक्षोत्तरगुणसमाश्रयः। १७। अतिशयविशिष्टधर्म्यध्यानं। १८। अप्रमत्तसंयमः। १९। सुदृढश्रुततेजोवाप्ति। २०। अप्रकंपक्षपकश्रेण्यारोहणं। २१। अनंतगुणशुद्धिः। २२। अथाप्रमत्तकरणप्राप्तिः। २३। पृथक्त्ववितर्कविचारप्रणिधिः। २४। अपूर्वकरणप्राप्तिः। २५। अनिवृत्तिकरणप्राप्तिः। २६। वादरकषायचूर्णनं। २७। सूक्ष्मकषायचूर्णनं। २८। सूक्ष्मसांपरायचारित्रं। २९। प्रक्षीणमोहः। ३०। यथाख्यातचारित्रावाप्तिः। ३१। एकत्ववितर्कविचारध्यानाध्ययनावलंबनं। ३२। घातसमुद्भूतकैवल्यावगमः। ३३। धर्मतीर्थप्रवृत्तिः। ३४। सूक्ष्मक्रियशुक्लध्यानपरिणतत्वं। ३५। शैलेशीकरणं। ३६। परमसंवरः। ३७। चूर्णकृतिः। ३८। योगायुतिभाक्त्वं। ३९। समुच्छिन्नक्रियावत्त्वं। ४०। निर्जरायाः परमकाष्ठारूढत्वं। ४१। सर्वकर्मक्षयावाप्तिः। ४२।

अनादिभवपरावर्तनविनाशः । ४३ । द्रव्यक्षेत्रकालभावपरावर्तननिष्क्रांतिः । ४४ । चतुर्गतिपरावृत्तिः । ४५ । अनंतगुणसिद्धत्वप्राप्तिः । ४६ ।
ओं ह्रीं अदेहसहजज्ञानोपयोगचारित्रसंस्कारः स्फुरतु स्वाहा । ४७ । ओं ह्रीं अर्ह इहार्हति विंबे अदेहसहोत्थदर्शनोपयोगैश्वर्यप्राप्तिसंस्कारः स्फरतु स्वाहा । ४८ ।

एवमष्टचत्वारिंशत्संस्काराधारित्वं प्रतिपाद्य एतदर्थारोपणांतःकरणेन आचार्येण सर्वप्रतिमासु पुष्पांजलिः क्षेप्यः । ततः सभाविसर्जनं वादित्राद्युपस्करविसर्जनं च कृत्वा एकाकी आचार्यो वा इंद्रश्च प्रतिमां वेदिकायां नयेत् । तत्र चतुर्विंशतितपस्तिथोनुद्दिश्य मंडले पृथगिष्टिः कर्तव्या ।

याका अर्थ ।

ऐसे सभाका मनुष्योंकूं धर्मोपदेश देय वहां अपवरक कहिये पडदो लगाय जिनबिंबके चौतरफ योग्य कितना ही मनुष्यांके सन्मुख दीक्षापाठ आचार्य पढै अन्य जनाके समक्ष दीक्षापाठ वा दीक्षा नहीं करै । तहां 'नमः सिद्धेभ्यः' येह मंत्र बोलि केशलोच विधि करै । इहां ऐसा जानना कि बिंब तो अचेतन है, स्वयं केशलोच कहा करै ? परंतु आचार्य ही करै अर जिनेंद्रकी एवज 'अर्हं सर्वसावद्यविरतोऽस्मि' अथ-मैं हूं सो यावत् यावत् आयुष्य सर्व सावद्य क्रिया हैं तिनका त्यागी हूं ऐसैं प्रतिज्ञा करूं अर अर्हंतभक्तिको पाठ तथा सिद्धभक्तिको पाठ करै और विधि करता आचार्य है सो आप अपनी शुद्धि वास्तै प्रथम आचार्य अरु श्रुतभक्तिपाठ भी सिवाइ करै अर इहां कमंडलु काष्ठको अर मयूरपिच्छिकाको ग्रहण साधुपणाको उपयोगी है तथापि तीर्थंकरकै नीहारकी क्रिया नहीं, तथा स्वशरीरसे जीवघात नहीं, तातैं निमित्त मिलनेकी समय स्थापन करो पुनः उपयोगी नाहीं तातैं नहीं करावनी ऐसैं आम्नायकूं जाननेवारे कहे हैं ॥

तहां प्रथम अंकस्थापन विधि कहिये है सो ऐसैं हैं कि—एक मुख्य बिंबकूं आचार्य अपने संमुख लेय कपूर चंदन केशर आदि सुगंध द्रव्यनिकूं घसिकरि सुवर्ण शलाकाकरि प्रतिमाका अंगोपांगनिपरि अंक स्थापन करै अर्थात् लिखै । तहां प्रथम आचाय भी अपना शरीर निमित्त मातृका मंत्र जो पूर्वै मंत्राधिकारमें कह्या था सो अष्टोत्तर शत जपै अर अपना अंगमें भावमात्र संस्थापन करै पीछे प्रतिमामें लिखै । अं ऐसा ललाटमें लिखै, आं मुखमें, इ दक्षिण नेत्रमें, ई वाम नेत्रमें, उ ऊ कर्णमें, ऋ ॠ नासिकाद्वयमें, ऌ ॡ गंडस्थलनिमें, ए ऐ ओष्ठ-ओ औ दंतनिमें, अं अः मस्तकमें, क ख दक्षिण भुजदंडमें, ग घ दक्षिण हातकी अंगुलिमें, ङ दक्षिण हातका अग्रभागमें, च छ वाम डमें, ज झ वाम करकी अंगुलिमें, ञ वाम हातका अग्रभागमें, ट ठ दक्षिण चरणका मूलमें, ड ढ दक्षिण पाद टिक्रून्यामें, ण दक्षिण मूलमें, त थ.........द ध वामपादटिक्रून्यामें, न वामपादाग्रे, प फ दक्षिण पसवाडामें, ब भ वामपादका पसवाडामें, म उदरमें, य

हृदयमे, र दक्षिण कांधामें, ल ग्रीवामें, व वामा कंधमे, श हृदय आदि दहणा हाथ पर्यंतमें, ष हृदयादि वाम हात पर्यंतमें, स हृदयादि दहणा पादमें, ह हृदयादि वामपादमें, क्ष हृदय आदि पेट पर्यंत लिखना—स्थापन करना।

ऐसें अनादिसिद्ध मंत्र जपै सो ऐसा—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्धमंगलं, साहू मंगलं, केवलपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। क्ष्रौं क्ष्रौं स्वाहा। पढि एक सौ आठ वार जप करै, ता पीछै सुवर्ण अरु लोंग तथा जाय आदि सुगंध हाथमे लेय जो संस्कार मंत्र है सो पढ़ि प्रतिमा ऊपर नाखै। सो येह है—ओं ह्रीं इह अर्हतविंबमें सम्यग्दर्शन संस्कार स्फुरायमान होहु ॥ १ ॥ ओं ह्रीं इस अर्हतविंबमे सम्यग्ज्ञान संस्कार स्फुरायमान होहु ॥ २ ॥ ओं ह्रीं इस अर्हंतविंबमें सम्यक् चारित्र संस्कार स्फुरायमान होहु ॥ ३ ॥ ऐसैं ओं ह्रीं तो आदिमें अर सस्कार स्फुरायमान होहु अंतमें पढ़ि स्थापन करै, सब जगै। सो ही संक्षेप संस्कार ४
सद्वीर्यचतुष्टयसंस्कार ५ अष्टप्रवचनमातृका संस्कार ६ शुद्धचष्टकप्राप्ति ७ सकलपरीषहजय ८ त्रियोगपूर्वक संयमसे नहीं विगडना ९ कृतका-
रित अनुमोदनकरि अनतिचार संस्कार १० शीलसप्तक संस्कार ११ दशअसंयमोपरम १२ पंचेंद्रियनिर्जय १३ संज्ञाचतुष्टयनिग्रह १४ दशविध-
धर्मधारण १५ अठारा हजार शीलकी प्राप्ति १६ चौरासी लाख उत्तरगुण १७ अतिशययुक्तधर्मध्यान १८ अप्रमत्तसंयम १९ सुदृढ तेजकी प्राप्ति
२० अपकंपक्षपकश्रेणी २१ अनंतगुणविशुद्धि २२ अथाप्रमत्तकरणप्राप्ति २३ पृथक्त्ववितर्कवीचार प्रणाधि २४ अपूर्वकरण प्राप्ति २५ अनिवृत्ति-
करण प्राप्ति २६ वादरकषायचूर्णन २७ सूक्ष्मकषायचूर्णन २८ सूक्ष्मसांपरायचारित्र २९ प्रक्षीणमोह ३० यथाख्यातचारित्रप्राप्ति ३१ एकत्व-
वितर्कवीचारध्यानावलंवन ३२ घातिघातसमुद्भूतकेवलज्ञान ३३ धर्मतीर्थप्रवृत्ति ३४ सूक्ष्मक्रियशुक्लध्यान परिणतत्व ३५ शील ईशरत्व ३६ पर-
मसंवर ३७ योगचूर्णकृति ३८ योगायुतिभागित्व ३९ समुच्छिन्नक्रियावृत्त्व ४० निर्जराके परमकाष्ठारूढ़ ४१ सर्व कर्मक्षय प्राप्ति ४२ अनादि-
भवपरावर्त्तनविनाश ४३ द्रव्यक्षेत्रकालभाव परावर्तन निःक्रमण ४४ चतुर्गतिपरावृत्ति ४५ अनंतगुणसिद्धत्व प्राप्ति ४६ ओं ह्रीं अदेह सहज
ज्ञानोपयोग चारित्र संस्कार स्फुरायमान होहु ४७ ओं ह्रीं इस अरहंतविंबमें अदेहसहोत्थदर्शनोपयोगैश्वर्यप्राप्ति संस्कार स्फुरायमान
होहु ॥ ४८ ॥

ऐसें ये महा अडचालीस संस्कार धारण करावै अर अन्य विंवनि पर भी यथा योग्य धारण करावै अर पुष्पांजलि क्षेपे। पीछै सभाका विसर्जन कर वादित्र आदि सामिग्रीको विसर्जन करै अर आचार्य इंद्र ऐसे दोऊ गुप्त रीतिसे वेदिका परि ल्यावै, स्थापन करै। इहां ही चौईस तीर्थंकरोंकी तिथि तपकल्याणकी उद्देशकरि पूजा करै।

अथोत्तरक्रियाः ।

अब यहां उत्तर क्रिया कहिये है—

तस्मिन् क्षणे त्वर्थविबोधमुद्‌गमन्निव स्मरप्राणहरो जिनाधिपः ।
उत्तार्यते यज्वभिरूढदीपकज्योतिर्भिरारब्धुगसंख्यसत्फलैः ॥ ८४१ ॥

अर ताही क्षणमें मनः पर्यय ज्ञानने प्रकट करतो ही मानूं कामवासनाको प्राणवैरी जिनराज है सो यजनके कर्त्ता हैं (?) ॥ ८४१ ॥

ततोपवासं मघवा तथार्यो यज्वा शची चान्यमहे नियुक्ताः ।
विदध्युरूर्ध्वे विधिना हि मध्यंदिने जिनाग्रे चरुपूजनानि ॥ ८४२ ॥

अर तिस इंद्र अथवा आचार्य अर यजमान इंद्राणी अर अन्य भी यज्ञमें नियुक्त उपवास करं, दिनके मध्य ऊर्ध्व विधिमें जिनके आगै नैवेद्य आदिकरि पूजन करै ॥ ८४२ ॥

तदैव पंचाद्‌भुतवृष्टिरग्रे बिंबस्य पुष्पांजलिना समेता ।
योज्या ध्वनिं तूर्यगणैर्विधाय भुंजीयुरन्यानपि भोजयित्वा ॥ ८४३ ॥

अरु उस हां पंचरत्नकी वृष्टि आश्चर्ययुक्त जिनबिंबके अग्रभाग पुष्प वृष्टियुक्त योजन करनी अर वादित्रकरि ध्वनि बजाय अन्य साधर्मी जननैं उपवासके पारणाके दिन भोजन करावै। ऐसैं आहारग्रहणविधान करै ॥ ८४३ ॥

——:*:——

अथ तपोभावनाः।

अब तपकी भावना कहै है—

वाह्याभ्यंतरभेदतो द्विविधता तंत्रापि षट्भेदकं
वाह्यावांतरमेधितस्वविभवप्रत्यूहनिर्णाशनात्।
भक्त्याभावतदूनतावत्परीसंख्यानषट्स्वादना-
मोहैकांतशयासनांगकदनान्येवं तु वाह्यं तपः ॥ ८४४ ॥

अर वाह्य अभ्यंतर भेदकरि तपके दोय प्रकार है। तहां वाह्य छह प्रकार है अर अंतरंग भी छह प्रकार है। अपना स्वरूपकी स्वच्छता का वधवा करि प्रत्यूह जो विघ्न ताका नाशतें होय है॥ भक्त्याभाव कहिये अनशन १ तदूनता कहिये अवमोदर्य २ वृत्तिपरिसंख्यान ३ रस-परित्याग ४ एकांत शय्यासन ५ अंगकदन कहिये कायक्लेश ६ या प्रकार वाह्यतपनैं नमस्कार कराहां॥ ८४४ ॥

ओं ह्रीं षट्प्रकारवाह्यतपोधारकाय जिनायार्घम्।

अंत्ये दोषविसंगतो न भवति प्रायश्चितानां क्रमो
नो वा यत्र विनेयताऽप्युपरमादौपाधिकस्योद्भवः।
नान्यत्र स्थितिमत्सु साधुषु तथा वैयावृत्तेः प्रक्रमो
नो वा शास्त्रसुशीलनं त्विति परंपार्येण बोध्यं जिने ॥ ८४५ ॥

जिनराजकै दोषांको संगम नही होय है तातैं प्रायश्चित्तनिका प्रक्रम नहीं है अरु स्वयं आचार्य हैं तो विनय किसका करैं अर साधुनिका वृत्य भी कहा होय अर स्वयं बुद्धकै शास्त्रको चिंतवन भी परंपरामात्र ही जानवे योग्य है ॥ ८४५ ॥

व्युत्सर्गं प्रतिवासरं प्रसरतो ध्यानं स्वमाध्यायत

आख्यामात्रमुपाचरत्प्रतिकृतेर्मार्गप्रलंभावनात् ।
गाढोत्कृष्टसुसंहनस्य जिनपस्यास्येति संरूढितः
क्लृप्तं तच्छुचि नाम तत्फलगणैः संपूजयाम्यादरात् ॥ ८४६ ॥

अर नित्य कायोत्सगमात्र करना अर आप स्वभावने ध्यावना जिनकै नाममात्र निश्चयनयतैं होय है अर अंगीकार किया विंबमें भी नाममात्र ही है क्योंकि मार्ग साधूको दिखावनाके अर्थि है अर गाढा उत्तम संहननधारी जिनकै रूढि कल्पनातैं ताका फल कर्मनिकी निर्जराका होवातैं अंत्य अंतरंग तपनै आदरतैं पूजू हूं ॥ ८४६ ॥

ओं ह्रीं षट्प्रकारांतरंगतपोनिष्ठाय जिनायार्घं ।

यस्याश्रयेण सकलाघतृणौघदाहशक्तित्वमाप चरितं चरितं जनेन ।
तच्चारुपंचतयरूपमपास्य चारमंत्यं यथाख्यमगमत्परिपूर्णतांगं ॥ ८४७ ॥

अर जाका आश्रयकरि सकल पापकर्मरूप तृणका समूहमें दाहशक्तिपणानैं प्राप्त होइ है, सो जनने चारित्र आचरण कियो सो पंच प्रकार रूपने छोडि अंत्य यथाख्यात चारित्र श्रीजिनकै परिपूर्ण होतो भयो ॥ ८४७ ॥

ओं ह्रीं यथाख्यातचारित्रधारकाय जिनायार्घ ।

शुक्लद्वयेन परिहृत्य तपोवितानमात्मानमाशु परिक्लृप्य कृतावकाशं ।
ज्ञानावलोकनसमत्ययनाशमापन्मोहस्य पूर्वदलनेन समस्तभावात् ॥ ८४८ ॥

अर शुक्लध्यानका युगलकरि अज्ञान अंधकारने परिहारकरि आत्माने कृतकृत्यकरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अर अंतराय इनका नाश प्राप्त हूवो अर मोहको दमन तो समस्तपणाकरि पूर्वैं हूवो ही ॥ ८४८ ॥

ओं ह्रीं मोहनीयज्ञानदर्शनावरणांतरायनिर्णाशकाय जिनायार्घं ।

—:※:—

अथात्र विधितिलकद्रव्यसंचयनं ।

अब इहां शेषविधि कहिये है—तहां तिलक द्रव्यका संचय है ।

पिंगाप्रियंगुफलदध्यमृतप्रदूर्वा सिद्धार्थका हिममहागुरुरत्नसिक्तं ।
तीर्थांबुकानकघटोद्धृतदुग्धधारासंपन्नमाशु विदधीत निजाभिषिक्त्यै ॥ ८४९ ॥
स्नात्वा कुसुंभवसना धृतहेमभूषा सन्मौक्तिकोद्धृतचतुष्कविराजमाना ।
मंत्रं ह्यनादिनिधनं परिजप्य शुद्धा यष्टीसु चंदनरसं परिषेचयेत्तु ॥ ८५० ॥
भर्त्रंचलाक्तवसनायुगकोणभासि दीपावलीद्युतिविशालिशिलोपरिष्टात् ।
संघृष्य चंदनमनर्थसमूहनष्ट्यै भाले विधातु सवितुः कृतमंडितस्य ॥ ८५१ ॥

ओं ह्रीं णमो अरहंताणं इत्यादि पठित्वा याजकपत्नी वादित्रनादपुरस्सरं जयजयशब्दाकुलं सुमंगलगानरम्यप्रकाशं तिलकं आचार्यमूर्ध्नि कुर्यात् । तत आचार्योऽपि चारित्रभक्तिं पठित्वा

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा एहि संवौषट् ।
ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

इति मंत्रैराहूय एकांते सुलग्ने रेचकस्वरोदये आचार्यो विशुद्धमना परिहृतसकलसंकल्पो मुखजिनबिंबनाभो 'ओं ह्रीं श्रीं अर्ह अ सि आ उ सा अप्रतिहतशक्तिर्भवतु ह्रीं स्वाहा इत्युदीर्य हूँ' (?) इति बीजं स्थापयेत् । इदमेव तिलकदानं प्रकृतो बोध्यं । अत्राष्टकं देयं ।

यजमानकी पत्नी तिलकद्रव्य घसै सो ऐसै करै—सुगंधका भारकरि मिल्यो ऐसो भ्रमरनिके समूह ताकरि शब्दायमान विडा महा अगुरु चंदन ताकरि तथा रत्ननिका चूर्ण तीर्थका जल सुवर्णका घटमें धारण कियो जब शीघ्र ही जिनका अभिषेकके अर्थि करै । तदि आचार्य भी चारित्रभक्तिपाठ पढिकरि ओं ह्रीं इत्यादि आह्वानन स्थापन संनिधिकरण मंत्रनिकरि उस देवको आह्वानन करै अर एकांत सुंदर लग्नमें

रेचक स्वरका उदयमें विशुद्ध मनं अर संकल्प विकल्पकौ परिहारकरि आचार्य है सो मुख्य जिनबिंबकी नाभिस्थानमें ह ऐसा वीज लिखै तदि 'ओं ह्रीं श्रीं अर्हं असि आ उ सा अप्रतिहतशक्तिर्भवतु ह्रीं स्वाहा' जाप करं । ये ही तिलकदान है, प्रतिष्ठाका मुख्य कार्य है ॥८४६-५१॥

अधिवासनाप्रकारः—तत्प्रतिमां भद्रासनोपरि मातृकायंत्रे स्थापयित्वाऽष्टोत्तरशतवारं तीर्थजलधारानिपातनेनाभिमंत्र्य अग्रेविधिं कुर्यात् ।

अब अधिवासना प्रकार करे—सो उस प्रतिमाने भद्रासन ऊपरि मातृका यंत्रने लिखि उस यंत्र ऊपरि प्रतिमाकूं विराजमानकरि तीर्थ जल-धाराने मंत्रपूर्वक निपातन करै ।

काश्मीरचंदनरसेन विलुब्धशुंभत्सौरभ्यमत्तमधुपावलिझंकृतेन ।
पीठस्थलीं जिनपतेरधिपादपद्मं संचर्चयामि मुनिभिः परितः पवित्रां ॥ ८५२ ॥

ओं ह्रीं अर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु पृथु चंदनं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

पवित्र ऐसीने चरणारविंद समीप तैसें लाभने प्राप्त भये सुंदर सौगंध्यकरि मदोन्मत्त ऐसे भ्रमर पंक्तिका झंकारसंयुक्त ऐसा केशरचंदन का रसकरि लिंपन करूं हूं ॥ ८५२ ॥ ओं ह्रीं सर्वशरीरावस्थित अर्हतके अर्थि वहु प्रकार चंदन ग्रहण करू हूं ।

मुक्ताफलच्छविपराजितकामकांतिप्रोद्भूतमोहतिमिरैकफलौघहेतु ।
शाल्यक्षतार्थपरिपूर्णपवित्रपात्रमुत्तारयामि भवतो जिनपस्य पार्श्वे ॥ ८५३ ॥

बहुरि हे भगवन् ! तिहारे अग्रभाग मोतीनिकी छविकरि जीती गई है निश्चल कांति जाकी अर प्रगट दूरि कियो है मोहरूपी तिमिर स्वरूप एक फलसमूहको हेतु जानें ऐसो तंदुल अक्षत अथकरि भरयो अर पवित्र ऐसा अक्षतपात्रने मैं उतारू हूं ॥ ८५३ ॥

ओं ह्रीं अर्हते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु पृथु अक्षतान् गृहाण गृहाण स्वाहा ।

सौरभ्यसांद्रमकरंदमनोऽभिरामपुष्पैः सुवर्णहरिचंदनपारिजातैः ।
श्रीमोक्षमानिवनितापरिलंभनाय माल्यादिभिश्चरणयोरणिमुत्सृजामि ॥ ८५४ ॥

सुगंधकरि सघन मकरन्दवारे अर मनोहर पुष्पनिकरि तथा सुवर्णके अर कल्पवृक्षके पारिजातके पुष्पनिकरि मोक्षरूप मानवती स्त्रीका लाभके निमित्त पूर्वोक्त माला आदिकरि चरणपंक्तिने मैं पूजू हूं ॥ ८५४ ॥

ओं ह्रीं अर्हंते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु पृथु पुष्पाणि गृहाण गृहाण स्वाहा।

नूत्नं निरावृतिचमत्कृतिकारि तेजो नो शक्यमीक्षितवतामपि भावुकानां ।
इत्येवमर्पितनयानयनेन शंभोरग्रे मुखाग्रमहवस्त्रमुपाकरोमि ॥ ८५५ ॥

अरु नवीन अर निरावरण ताका चमत्कारनेवारा प्रभुका तेज है सो देखनेवारे भव्यनिकूं शक्य नहीं है ऐसैं या प्रकार अर्पित नयका अवलंबनकरि श्रीभगवानका मुखके अग्रभागमें वस्त्रसे मैं परदा करू हूं ॥ ८५५ ॥

ओं ह्रीं अर्हंते सर्वशरीरावस्थिताय समदनफलं सप्तधान्ययुतं मुखवस्त्रं ददामि स्वाहा।

इति मुखाग्रे वस्त्रयवनिकां दत्त्वा यवमालावलयं जिनपादाग्रतः स्थापयेत् ।

ऐसैं मुखवस्त्र अग्र रोपण।

प्रश्न—इहां सर्वज्ञपणा मानि पूजन विधान करिये है, फिर भगवानका अग्रमुख वस्त्रका देना कैसा है ?

उत्तर—येह प्रतिष्ठापाठ सर्वक्रियाकांड है, अर मुख नाम अग्रभागका है तातैं बिंबके आड़ा एक परदा भगवानके आड देना ऐसा अभिप्राय है। इस हीकूं मूलपाठमें 'यवनिकां दत्त्वा' ऐसा कहा है। अर्थ—वस्त्रका परदा देना।

षष्ठोपवासविधये नवसर्पिषाक्तनैवेद्यभाजनमिदं परिवर्त्य सप्त ।
वारं तदीयपरिहृत्यभिधाप्रसिद्ध्यै संस्थापयेज्जिनवराग्रिमभूतधात्र्यां ॥ ८५६ ॥

बहुरि श्रीभगवानकूं बेला तेला आदि अनशनतपका विधान हो चुका इस बातके अर्थि नवीन घृतकरि मिश्रित नैवेद्यका पात्र सात वार उतारि आगामी केवल ज्ञानोत्तर भोजनका अभाव है इसकी प्रसिद्धिके अर्थि जिनेंद्रके अग्रभागी पृथ्वीविषै स्थापित करना ॥ ८५६ ॥

ओं ह्रीं अर्हंते सर्वशरीरावस्थिताय पृथु पृथु नैवेद्यं गृहाण गृहाण स्वाहा।

स्फूर्जन्मयूखविततिप्रहतांधकारं दीपं घृतादिमणिरत्नविशालशोभं ।
उद्भिन्नशुक्लयुगलांतिमभागभाजो देहद्युतिं द्विगुणकोटियुतां करोमि ॥ ८५७ ॥

बहुरि देदीप्यमान किरण समूहकरि दूरि किया है अंधकार जाने अर घृत अर मणिरत्नकरि विशाल है शोभा जिसमें ऐसा दीपकनै······ अर प्रकट भया शुक्लध्यानका युगलका अंतिम भागकूं भजनेवारा जिने द्रकी देहकांतिने गुणित कोटियुक्त करूं हूं ॥ ८५७ ॥

ओं ह्रीं प्रज्वल प्रज्वल अमिततेजसे दीपं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

कर्पूरचंदनपरागसुरम्यधूपक्षेपोऽस्तु मे सकलकर्महतिप्रधानः ।
इत्येवभावमभिधाय हसंतिकायामुत्क्षेपयामि किल धूपसमूहमेनं ॥ ८५८ ॥

अर अगर चंदनका परागकरि रमणीक धूपको क्षेपिवो मेरा सकल कर्मनिका हनिबेमें प्रधान होहु । इसी ही भावने अंगीकारकरि धूप· का समूहने सिघरी विषै क्षेपूं हूं ॥ ८५८ ॥

ओं ह्रीं सर्वतोदह दह तेजोऽधिपतये समूहभूताय धूपं गृहाण गृहाण स्वाहा ।

कर्माष्टकापहरणं फलमस्ति मुख्यं तत्प्राप्तिसम्मुखतया स्थितवानसि त्वं ।
यस्मादनेकगुणलास्यकलानिधानधाम्नस्तवस्थलमदभ्रफलैर्यजामि ॥ ८५९ ॥

कर्मका अष्टकका अपहरण है सो मुख्यफल है, अर वांका सन्मुखपणाकरि हे भगवान तुम तिष्ठो हो, यातैं अनेक गुणका विलासकलाका निधानभूत गृहरूप जो तुम ताका स्थलभागने बहुत प्रकार फलनिकरि मैं पूजूं हूं ॥ ८५९ ॥

ओं ह्रीं आश्रितजनायाभिमतफलानि ददातु ददातु स्वाहा ।

त्रैलोक्याभपदं त्रिकालपतिताशेषार्थपर्यायजा-
नंतानंतविकल्पनस्फुटकरं संसारचक्रोत्तरं ।

ज्योतिः केवलनामचक्रमवतो ध्यानावतानप्रभो-
यौऽयं तुर्यविशंशनक्षणमहः कोप्येष जीयात्पुनः ॥ ८६० ॥

तीन लोकने अभयको देनेवारौ अर त्रिकालप्राप्त समस्त पदार्थ अर पर्याय तिनका अनंतानंत विकल्प तिनकूं प्रगट करनेवारो अर संसार-चक्रसे उत्तीर्ण ऐसा केवल नाम ज्योतिने आक्रमण करतो अर ध्यानावस्थित प्रभूको अनिर्वचनीय चौथा कल्याणकी प्राप्तिको उत्सव वारंवार जयवंते रहो ॥ ८६० ॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते द्वितीयशुक्लध्यानोपांत्यसमयप्राप्तायार्घम् ।

ओं ह्री अर्हंत भगवानके अर्थि नमस्कार होहु। दूसरा शुक्लध्यानका उपांत्य समय प्राप्तके अर्थि अर्घ देना।

इति अधिवासनां निष्ठाप्य—सर्वान् जनानपसृत्य दिगंबरत्वावगत आचार्यः 'ओं नमः सिद्धेभ्यः' इति मंत्रमुच्चारयन् भृंगारधारां विष्वग् निपात्य डामरादि क्षुद्रोपद्रवशांत्यै सिद्धचक्रयंत्राभ्यर्णे संनिधाय प्रथमतः स्वस्त्ययनं पठेत् ।

ऐसै अधिवासनाविधिने निष्ठापनकरि 'ओं नमः सिद्धेभ्यः' ऐसा सिद्ध परमेष्ठीको स्मरणकरि मंत्रने उच्चारण करतो झारीतैं जलधाराने चौतरफ क्षेपि क्षुद्रोपद्रवकी शांतिके अर्थि सिद्धचक्र मंत्रकूं समीप राखि प्रथम स्वस्तिविधान पढै। सो ऐसा—

तथाहि—

स्वस्तिश्रीऋषभो देवोऽजितः स्वस्त्यस्तु संभवः ।
अभिनंदननामा च स्वस्ति श्रीसुमतिः प्रभुः ॥ ८६१ ॥
पद्मप्रभः स्वस्ति देवः सुपार्श्वः स्वस्ति जायतां ।
चंद्रप्रभः स्वस्ति नोऽस्तु पुष्पदंतश्च शीतलः ॥ ८६२ ॥
श्रेयान् स्वस्ति वासुपूज्यो विमलः स्वस्त्यनंताजित् ।
धर्मो जिनः सदा स्वस्ति शांतिः कुंथुश्च स्वस्त्यरः ॥ ८६३ ॥
मल्लिनाथः स्वस्ति मुनिसुव्रतः स्वस्ति वै नमिः ।

नेमिर्जिनः स्वस्ति पार्श्वो वीरः स्वस्ति च जायतां ॥ ८६४ ॥
भूतभाविजिनाः सर्वे स्वस्ति श्रीसिद्धनायकाः ।
आचार्यः स्वस्त्युपाध्यायः साधवः स्वस्ति संतु नः ॥ ८६५ ॥

ऋषभदेव स्वामी कल्याणरूप हो, अजितनाथ कल्याणरूप हो, अर संभव अर श्री अभिनंदन कल्याणरूप होउ । अर सुमति अर पद्मप्रभदेव स्वस्तिरूप होहु, अरु सुपार्श्वदेव स्वस्तिरूप होहु अर हमारे चंद्रप्रभ स्वस्ति करो अर पुष्पदंत स्वामी अर शीतलनाथ स्वस्ति करो अर श्रेयांशनाथ स्वस्तिरूप हो अरु वासुपूज्य अर विमलनाथ स्वस्तिरूप हो, अर अनंतनाथ अर धर्मस्वामी सदा कल्याणरूप हो, अर शांति कुंथु अरु अरनाथ कल्याणरूप हो अर मल्लिनाथ स्वस्ति करो अर मुनिसुव्रत अर नमिनाथ स्वस्ति करो अर नेमि जिन स्वस्तिरूप हो अर पार्श्व अर वीर जिन स्वस्तिरूप होहु । अर भूत भविष्यत् सर्व जिन स्वस्तिरूप हो । श्रीसिद्धपरमेष्ठी अर आचार्य अर उपाध्याय अर साधुपरमेष्ठी हमारे कल्याणरूप होहु ॥ ८६१-८६५ ॥ ऐसैं पढि पुष्पांजलि क्षेपणी ।

इति पठित्वा पुष्पांजलि क्षिपेत् ।

अथाख्यातं प्रांतोदयधरणिधृन्मूर्द्धनि प्रकाशोल्लासाभ्यां युगपदुपयुंजंस्त्रिभुवनं ।
दधज्ज्योतिः स्वायंभवमपगतावृत्यपथो मुखोद्घाटं लक्ष्म्या व्रजतु यवनीं दूरमुदयेत् ॥८६६॥

अब यथाख्यात चारित्ररूप उदयाचलका मस्तकमें अपना प्रकाश अर तेजकरि एकै काल त्रिभुवनने प्रकाश करतो अर स्वयमेव असहाय ज्योतिने धारण करतो, दूर गयो है आवरण मार्ग जातैं ऐसो प्रभु मोक्ष लक्ष्मीका मुखका उद्घाटनने प्राप्त होहु ऐसैं कहिकरि वस्त्रकी यवनिका कहिये पडदानै दूर उत्क्षेपण करै ॥ ८६६ ॥

इति श्लोकमंत्रपाठानंतरं—

ओं उसहादिवड्ढमाणाणं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं महइमहावीरवड्ढमाणसामीणं सिज्झउ मे महइमहाविज्जा अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं सयलकलाधराणं सज्जोजादरूवाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेवेंदमणिमत्थयमहियाणं सयललोयस्स संतिपुट्ठिकल्लाणाउ-आरोग्गकराणं बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणगारोवगूढाणं उहयलोयसुहफलयराणं थुइसयसहस्सणिलयाणं परापरपरमप्पाणं

अणाहिणिहणाणं बलिवाहुवलिसदाणं वीरे वीरे ओं हां क्षां सेणवीरे वड्ढमाणवीरे णहसंजयंतवराईए वज्जसिलथंभमयाणं सस्सदत्रंभपइट्ठियाणं उसहाइवीरमंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालपइट्ठियाणं इत्थसंणिहिया मे भवंतु मे भवंतु ठः ठः क्ष क्ष स्वाहा।

इति मंत्रेण मुखादग्रे वस्त्रयवनिकां दूरमुत्सारयेत्।

इति श्रीमुखोद्घाटनं।

ऐसैं श्लोक मंत्र पढनके पीछै 'ओं उसहादि वड्ढमाणाणं' आदि (ऊपर लिखे) मंत्रकरि श्रीमुखतैं अग्र वस्त्र पडदाने दूर करै। येह मुखोद्घाटन विधान है।

तदनंतरमेव रुक्मपात्रस्थितकर्पूरयुक्तसुवर्णशलाकां दक्षिणपाणौ विधृत्य सोऽहं स इति ध्यायन्नाचार्यो नयनोन्मीलनयंत्रे प्रदर्श्य श्लोकमिमं पठेत्।

येनाबद्धनिरूढकर्मविकृतिप्रालंबिका निर्घृणं
छित्वात्मानमजं स्वयंभुवमपूर्वीयं स्वयं प्राप्तवान्।
सोऽयं मोक्षरमाकटाक्षसरणिप्रेमास्पदः श्रीजिनः
साक्षादत्र निरूपितः स खलु मां पायादपायात्सदा॥ ८६७॥

जाने बंधने प्राप्त भये गाढे कर्मनिका विकाररूप पडदा निर्दय होय छेदने प्राप्त किया अर आत्माने अजन्म स्वयंभूरूप अपूर्व पर्यायने प्राप्त किया सो येह मोक्षरूपी लक्ष्मीका कटाक्षका मार्गमें प्रेमको स्थानक श्रीजिन इहां निरूपण कियो सो मोने संसारपापतैं रक्षा करौ सदा॥ ८६७॥

ओं णमो अरहंताणं णाणदंसणचक्खुमयाणं अमियरसायणविमलतेयाणं संतितुट्ठिपुट्ठिवरदसम्मादिट्ठीणं वं झं अमियवरसीणं स्वाहा।

इति स्वर्णशलाकया नेत्रोन्मीलनं कुर्यात्। ततः सद्य एव सूरिमंत्रेण सर्वज्ञत्वोपलंभनं विदध्यात्।

ओं णमो अरहंताणं णाणदंसणचक्खुमयाणं अमियरसायणविमलतेयाणं संतितुट्ठिपुट्ठिवरदसम्मादिट्ठीणं वं झं अमियवरसीणं स्वाहा।

मंत्र पढै ता पीछै तत्काल सूरिमंत्र है उस करि सर्वज्ञपणा प्राप्त करैं।

ओं सत्तक्खरगब्भाणं अरहंताणं णमोत्थि भावेण ।
जो कुणइ अणण्णमणो सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥

इति पदाग्रस्थापितयववलयापसारणं कुर्यात् । ततः—

इस मंत्रकरि यववलयका अपसारण करै । पीछै—

ओं केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणे ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥
असहायणाणदंसणसहिओ इदिकेवली होदि ।
जोयेण जुत्तो त्ति सजोगिजिणो अणाहिणिहणारिसे वुत्तो ॥

इत्येषोऽर्हन् साक्षादवतीर्णो विश्वं पात्विति स्वाहा ।

इति प्रतिमाग्रे पुष्पांजलिः ।

ऐसा पढ़ि पुष्पांजलि प्रतिमाका अग्रभागमें क्षेपणी ।

—:❋:—

अथ ज्ञानकल्याणं।

ऐसा मानि ज्ञान कल्याणका पूजन करै—

तत्र तावदनंतचतुष्टयस्थापनं। ततो घातिक्षयजदशातिशयस्थापनं ततोऽपि देवकृतचतुर्दशातिशयस्थापनं। ततः समवसरणं प्रातिहार्योपास्तिश्च। तथाहि—

प्रथम अनंत चतुष्टय स्थापन ताके पीछे घातियाका नाशतैं उत्पन्न भया दश अतिशय स्थापन करै। ता पीछै देवकृत चोदह अतिशयका स्थापन करणा। ता पीछै समवसरण स्थापन तथा मंडल पूजा करणी।

कैवल्यसूचिशरसंख्यकवर्तिकाभिरारार्तिकं बहुलवाद्यनिनादपूर्वं।
श्रीमज्जिनप्रतिकृतेः शतयज्ञयज्वाचार्या विदध्युरमलं जयघोषणाग्रं॥ ८६८॥

इंद्र अरु यजमान आचार्य जे हैं ते श्रीमान् जिनकी प्रतिमाके अग्र जय घोषणा पूर्वक आरति करै॥ ८६८॥

ओं ह्रीं ज्ञानकल्याणप्राप्ताय जिनायार्घम्। चतुर्वर्तिकाद्योतनं च कुर्यात्। अत्रैव चतुर्विंशतितीर्थकृज्ज्ञानकल्याणकतिथीनुदिश्य अर्घ्यपाद्यानि कार्याणि।

ओं ह्रीं ज्ञान कल्याण प्राप्त जिनेंद्रके अर्थि अर्घ देना। अर इहां ही चौईस तीर्थंकरोंका ज्ञानकल्याण तिथिको उद्देश्यकरि अर्घपाद्य करना।

सत्तामात्रग्राहकं दर्शनं च तद्भेदानां ग्राहकं ज्ञानमुक्तं।
ताभ्यां स्वास्थ्यं पूर्णमुक्तं सुखं तच्छक्तेर्व्यक्तिर्वीर्यमर्चयामि॥ ८६९॥

वस्तुकी सत्तामात्र ग्रहण करनेवाला दर्शन है अर ताके विशेष ग्रहण करै तो ज्ञान है, अर तिनतैं जो पूर्ण स्वस्थता सो सुख कहा है अर तिनकी शक्तिकी प्रगटता है सो वीर्य है। ऐसै भगवानके अनंतरूप है ताहि मैं पूजूं हूं॥ ८६९॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवतेऽनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यविभ्राजते जिनायार्घम्।

ओं ह्रीं अर्हंत अर्थि नमस्कार होहु। अनंत दर्शनज्ञानसुखवीर्यका धारी जिनेंद्र अर्थि अर्घ देना।

सम्यक्त्वं चरितं सुबोधनदृशी वीर्यं ददिर्लाभको
भोगोपादिभुजी हि यस्य नवकं लब्धेः सदा क्षायिकं ।
संपन्नं खलु केवलोद्गमनतस्तं सांप्रतं ध्यायतो
विघ्नानां निचयः प्रणाशनमियात्तत्संस्मृतिप्रार्थनात् ॥ ८७० ॥

क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, अनंत ज्ञान, अनंतदर्शन, अनंत वीर्य, अनंतदान, अनंत लाभ, अनंत भोगोपभोग, या प्रकार लब्धि-निका नवक जाके केवल ज्ञानोत्तर प्रगट भया ताका स्मरण प्रार्थनतैं विघ्ननको समूह नाशने प्राप्त होइ ॥ ८७० ॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते नवकेवललब्धिभ्योऽर्घम् ।

ओं ह्रीं नवकेवललब्धिके अर्थि अर्घ देना ।

सौभिक्ष्यं मुकुरोपमक्षितिरथो व्योमक्रमप्रक्रमः
प्राण्याघातविनिर्गमश्च कवलाहारव्यपायः परैः ।
अक्लेशोपचयश्चतुर्मुखदृशिर्विद्येश्वरत्वं तनो-
रच्छायत्वमकेशवृद्धिरिति वै दिक्संख्यकाः केवले ॥ ८७१ ॥

बहुरि सुभिक्षता अर दर्पण समान पृथ्वी अर आकाशको क्रम निर्मलत्व अर प्राणिमात्र वधका अभाव अर कवलाहारका अभाव अर उप-सर्गाभाव अर चतुर्मुखत्व अर सर्व विद्याका ईश्वरत्व अर शरीरकी छायाका नहीं होना अर नख केश वृद्धिको अभाव ऐसैं केवलज्ञानका दश अतिशय है ॥ ८७१ ॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते दशकेवलातिशयेभ्योऽर्घम् ।

ओं ह्रीं केवलातिशयका अर्घ देना ।

दिव्या वागू जनसौहृदं प्रतिपदं सर्वाह्वगोलारुहा
भूरादर्शतला मृदुस्वसनसन्मोदौ तु भूः शालिनी।
सौरभ्यांबुधरी सुवृष्टिरमला पादक्रमाधोतले
स्वच्छांभोरुहनिर्मितिः खममलं दिग्संमदश्चक्रकं ॥ ८७२ ॥
धर्माख्यां पुरतश्च सज्जनमनोमिथ्यात्वसंस्फेटनं
देवाहूवानपरस्पराधिकमुदा सन्मंगलाष्टाविति।
दिव्यातीशयसंयुतो जिनपतिः शक्राज्ञया रैमुचा
क्लृसे श्रीसमवादिसंस्तातिपदे संतिष्ठवांस्तान्मुदे ॥ ८७३ ॥

अर दिव्यध्वनि अर मनुष्य प्राणीमात्रकै मैत्री अर सर्वऋतुके फलपुष्प संयुक्त वृक्ष अर कंटकरहित भूमि अर मंद सुगंध पवन अर सर्व-धान्यसंपन्नक्षेत्र अर गंधोदक वृष्टि अर भगवानका विहार समय चरण तल कमल रचना, आकाश निर्मल अर दिशाको प्रमोद अर धर्मचक्रका अग्रगमन अर जनका हृदयतें मिथ्यात्वभाव विरति अर देवकृत परस्पर आह्वान, अर मंगलाष्टक ऐसैं येह देवकृत अतिशयसंपन्न इंद्रकी आज्ञा-करि कुवेरदेवने रच्या समवसरणमें विराजमान जिनपतिदेव है सो आनंदके अर्थि होहु ॥ ८७२-८७३ ॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते चतुर्दशदेवकृतातिशयसंपन्नाय जिनायार्घं।

ओं ह्रीं देवनैमित्तिक चौदह अतिशय संपन्नके अर्थि अर्घ देना।

ततः समवशरणमंडले प्रतिमां नीत्वा तत्र पूजां कुर्यात्।
तदनंतर समवसरणमंडलमें प्रतिमा स्थापि पूजा करै।

मानस्तंभसरः सपुष्पविपिनं सखातिका चाभितः
प्राकारादिसुनाट्यभूमिविपिने नाकालयद्मारुहाः।

स्तूपा हर्म्यततिर्ध्वजावलिसभे सद्गंधवेदिक्रमोऽ·
शोकोर्वीरुहसिंहपादनभसिस्थायी जिनः पातु नः ॥ ८७४ ॥

समवसरणमें मानस्तंभ सरोबर पुष्पवाटी वन खाई चौतरफ प्राकार नाट्यशाला वन कल्पवृक्ष स्तूप हर्म्यावली अर ध्वजापंक्ति गंधकुटीकी रचना अशोक वृक्ष सिंहासन अंतरीक्ष विराजमान जिनेंद्र हमारी रक्षा करो ॥ ८७४ ॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते सकलसमवशरणविभूतिसंपन्नाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं सकलविभूतिसंपन्नसमवसरणविराजमान जिनेंद्रके अर्थि अर्घ देना ।

वनस्पतित्वेऽपि गतप्रशोकोऽशोको वभूवातिमदप्रसूनः ।
अनेकसंदर्शकशोकहारी वृक्षो जिनेंद्राश्रयणप्रभावात् ॥ ८७५ ॥

बहुरि वनस्पति पर्यायमें भी गयो है शोक जाको ऐसो अशोक वृक्ष है तो अति सुगंध पुष्पवान् है, अनेक देखनेवारेनिका शोक हरनवारा श्रीजिनेंद्रका आश्रयतैं होय है ॥ ८७५ ॥

ओं ह्रीं अशोकप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं अशोकवृक्षप्रातिहार्यसंयुक्त जिनेंद्रकूं अर्घ ।

श्रेयस्तरुः फलति नोऽमरसौख्यमुच्चैर्हर्षोत्सुकत्वपरिलंभनसन्निभेण ।
देवैः कृता सुमनसां परिवृष्टिरेषा मोदं ददातु भवदुःखजुषां जनानां ॥ ८७६ ॥

पुण्यरूपी वृक्ष हमरै उच्च प्रकार देवपणाका सुखनै फलै है। ई प्रकार हर्षका उत्सुक प्राप्ति मिषकरि या देवनिकरी पुष्पनिकी वर्षा है सो संसारदुःख संयुक्त प्राणीनिकूं आनंद देवो ॥ ८७६ ॥

ओं ह्रीं देवकृतपुष्पवृष्टिप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं देवकृत पुष्पवृष्टि प्रातिहार्यसंपन्न जिनेंद्रकूं अर्घं ।

त्रैलोक्यवस्तुमननस्मरणावबोधो येन स्वयं श्रवणगोचरतां गतेन।
संजायते मुखरदौष्ठविघातशून्यो भूयाद् ध्वनिर्भवगदप्रसरार्तिहर्त्ता ॥ ८७७ ॥

तीन लोकमें वर्तमान वस्तुका मनन अर स्मरणको ज्ञान जाका स्मरणमात्रतैं होय है अर दुष्ट आग्रहीपना अरु प्राणिविघात इनतैं शून्य ऐसा ध्वनि है सो संसाररूप रोगका फैलाव आर्तिका हरनेवारो होहु ॥ ८७७ ॥

ओं ह्रीं दिव्यध्वनिप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम्।
ओं ह्रीं दिव्यध्वनिप्रातिहार्यसंपन्न जिनेंद्रकूं अर्घं।

यक्षेशपाणिलतिकांकुरसंगतानि तुर्याधिषष्टिगणनान्यपि देवनद्याः।
वीचिप्रमाणि भवतो द्विकपार्श्वयोस्ते सच्चामराण्यघचयं मम निर्दलंतु ॥ ८७८ ॥

हे भगवान्! चौसठि यक्षनिका हाथरूप लतिकाके अंकुरमें संगत कहिये प्राप्त अर चौसठि संख्यावारे मानू गंगाके तरंग समान ऐसे चमर जे है ते आपके दोन्यू पसवाडेमैं होते संते मेरा पापका संचयने दूरि करौ ॥ ८७८ ॥

ओं ह्रीं चतुःषष्टिचामरप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम्।
ओं ह्रीं चमर प्रातिहार्य संपन्न जिनेंद्रकूं अर्घ।

सिंहासने छविरियं जिनदेवतायाः केषां मनोऽवधूतपाप्महरी न वा स्यात्।
स्याद्वादसंस्कृतपदार्थगुणप्रकाशोऽस्या मेस्तु निर्हतमदाविलजातशक्तेः ॥ ८७९ ॥

अरु सिंहासनमें अंतरीक्ष विराजमान जिनदेवताकी छवि है सो कौन प्राणीनिका मनगत पापकी हरनेवारी न होय अर यातैं हन्या है मद आदिकी कलुषित मात्र कीश जाकी ऐसा मेरे स्याद्वाद जो अनेकांत ताकरि संस्कारकूं प्राप्त जे पदार्थके गुण तिनिका प्रकाश होहु ॥ ८७९ ॥

ओं ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम्।
ओं ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्यसंपन्न जिनेंद्रकूं अर्घं।

भामंडलेऽवयवपृष्टिविभागरश्मिक्लृप्ते जनस्य भवसप्तकदर्शनेन ।
श्रद्धानमाप्तगुरुधर्मपरंपराणां गाढं भवेत्तदितदेवपतिर्नमस्यः ॥ ८८० ॥

वहुरि भामंडलमें पीठका अवयव विभागके किरणनिकरि रचित ऐसामैं भव्यप्राणीन सात भवनिका देखिवातें आप्त गुरु धर्म इनकी परंपराको श्रद्धान गाढो होय है तातैं तिसकूं प्राप्त भया जो देवपति है सो मेरे नमस्कार करणे योग्य है ॥ ८८० ॥

ओं ह्रीं भामंडलप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं भामंडल प्रातिहार्यसंपन्न जिनेंद्रके अर्थि नमस्कारपूर्वक अर्घ ।

देवस्य मोहविजयं परिशंसितुं द्राक् देवाः स्वहस्ततलतः परिवादयंति ।
वाद्यानि मंगलनिवासकराणि सद्यो मिथ्यात्वमोहजयिनः शुभगानि च स्युः ॥८८१॥

वहुरि देव जे हैं ते देवके मोहको विजय भयो इसकूं शीघ्र प्रकाश करनेकूं अपने हाथके तलतैं वादित्र बजावते भये ॥ ८८१ ॥

ओं ह्रीं दुंदुभिप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं दुंदुभि प्रातिहार्य संपन्न जिनेंद्रकूं अर्घ ।

छत्रत्रयं जिनपमूर्धनि भासमानं त्रैलोक्यराजपतितामभिदर्शयद् वा ।
सोमार्कवह्निप्रतिमं सितपीतरक्तरत्नादिरंजितमिदं मम मंगलाय ॥ ८८२ ॥

जिनराजका मस्तक ऊपरि प्रकाशमान छत्रत्रय तीन लोकका राज्यको पतिपणो दिखावतो मानू चंद्र सूर्य अग्नि समान है प्रतिविंब जाको श्वेत पीत रक्त रत्ननिकरि रंजा हुआ है सो मेरे मंगलके वास्तै होहु ॥ ८८२ ॥

ओं ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यसंपन्नाय जिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यसंयुक्त जिनेंद्रकूं अर्घ ।

त्रालातपत्रचमरध्वजसुप्रतीकभृंगारदर्पणघटाः प्रतिवीथिचारं ।

सन्मंगलानि पुरतो विलसंति यस्य पादारविंदयुगलं शिरसा वहामि ॥ ८८३ ॥

अर ताल कहिये बीजणो अर छत्र, चमर, ध्वजा, ठोणो, झारी, दर्पण, कलस येह मंगल वस्तु है ते समवसरणके गली गली प्रति अग्र भासमान जाके हैं ताका चरणारविंदका युगल सिरकरि धारण करू हूं ॥ ८८३ ॥

ओं ह्रीं अष्टमंगलद्रव्यसंपन्नाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं मंगल द्रव्यसंपन्न जिनेंद्रकूं अर्घं ।

वुद्धीशामरनार्यिकार्यमहती ज्योतिष्कसद्व्यंतर-

नागस्त्रीभवनेशकिंपुरुषसज्ज्योतिष्ककल्पामराः ।

मर्त्या वा पशवश्च यस्य हि सभा आदित्यसंख्या वृष-

पीयूषं स्वमतानुरूपमखिलं स्वादंति तस्मै नमः ॥ ८८४ ॥

अर मुनि अर आर्यिका कल्पवासी देवांगना अर ज्योतिषी देवांगना अर व्यंतर देवांगना भवनवासी देवांगना ये सभा अर भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी देव ये सभा अर मनुष्य पशु या प्रकार बारा संख्यावाली धर्मरूप अमृतने अपना अपना अभिप्रायानुकूल समस्त आस्वाद करें हैं तिस पुरुषके अर्थि नमस्कार होहु ॥ ८८४ ॥

ओं ह्रीं द्वादशसभासंपत्तिसंपन्नाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं द्वादशसभासंपन्न जिनेंद्रकूं अर्घं ।

ज्ञानाभिन्नः सततचिदपावृत्त एषोऽस्ति जीवोऽ-

नाद्यंतः स्याच्छिवजगदितश्चक्रमायोगयोगात् ।

पर्यायार्थैर्नरसुरपशुश्वभ्रभेदादिरर्थ-

याथातथ्यैर्निजसुखचिदानंद एव ह्यसैत्सीत् ॥ ८८५ ॥

अर येह जीवतत्त्व ज्ञानोपयोगतैं अभिन्न है, अर निरंतर चैतन्य स्वभावके आधीन है अर आदि अंतकरि रहित है अर चक्रम कहिये भव परावर्तनका अयोग व योगतैं मुक्ति वा संसारी है अर पर्यायार्थिक नयकरि नर देव अर पशु नारकी आदि भेदवाला है अर द्रव्यार्थिकका यथार्थपणाकरि निजचिदानंदस्वरूप है सो ही सिद्धिकूं प्राप्त होय है ॥ ८८५ ॥

ओं ह्रीं जीवतत्त्वस्वरूपनिरूपकाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं जीवतत्त्वनिरूपक जिनेंद्रकूं अघ ।

रूपी स्पर्शादिभिरपि गुणैः स्वैः प्रधानैर्निरुक्तः

स्कंधाणुभ्यामनणुविवृत्तिव्यापृतः पुद्गलः स्यात् ।

कर्माकर्मप्रकृतिनिगडैर्विश्वमापीड्य हेतु-

र्बंधस्येति प्रभवति जिनं जल्पयंतं नमामि ॥ ८८६ ॥

अर अजीवतत्त्व पुद्गल रूपवान है अर स्पर्शादि अपने प्रधान गुणकरि विवेचनकूं प्राप्त भया है अर स्कंध अणुपणा अर्थात् समुदाय अर विवृत्ति कहिये गतावरण अणुरूप व्यापारने प्राप्त पुद्गल होय है सो यो पुद्गल कर्म नोकर्मको प्रकृतिरूप शृंखलानिकरि संसारगत प्राणीन पीडितकरि बंधको हेतु होय है ऐसा कहनेवारा जिनने नमस्कार करू हूं ॥ ८८६ ॥

ओं ह्रीं पुद्गलतत्त्वस्वरूपप्ररूपकाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं पुद्गलतत्त्वस्वरूपनिरूपक जिनेंद्रकूं अघं ।

लोकस्थानां भवति गमने जीवसत्पुद्गलानां

हेतुर्धर्मः सहचरविधौदास्यमात्रप्रमेयः ।

लोकालोकस्थितिविभजनेऽग्रीण एवं धर्म (?)

स्वास्मानं संगदति जिनपः सो स्तु मे क्लेशहर्त्ता ॥ ८८७ ॥

अर जो लोकस्थित जीव पुद्गलनिके गमनमें उदासीन कारण है अर लोककी स्थितिकी सीमामें अग्रगण्य होय है ऐसा धर्मका स्वरूपने कहै है सो जिनराज क्लेशको हर्ता हमारे होहु ॥ ८८७ ॥

ओं ह्रीं धर्मतत्त्वस्वरूपनिरूपकाय जिनायार्घं ।
ओं ह्री धर्मतत्त्वका निरूपक जिनेंद्रके अर्थि अर्घं ।

वैलक्षण्यं तत उपगतो जीवसत्पुद्गलानां
स्थाता धर्मः सहचरतयौदास्यमात्रेऽपि तेषाम् ।
एवं तस्य स्वभवनमसंदिह्यमानो जिनेंद्रो
मादृक्षाणां भवविधिहतिं संकरोत्वात्मनीनां ॥ ८८८ ॥

अर जातै विलक्षण अर्थात् जीव पुद्गलनिकी स्थिति करनेवारो स्थानको हेतु सहचर उदासीन शील अधर्म है ऐसै ताका होनेमैं निसंदेह करतो जिनेंद्रदेव हम सारिखे प्राणीनिकूं आत्माके अर्थि हित ऐसी संसार वासनाकी हतिनैं भले प्रकार करौ ॥ ८८८ ॥

ओं ह्रीं अधर्मपदार्थस्वरूपप्ररूपकजिनायार्घंम् ।
ओं ह्रीं अधर्मतत्त्वस्वरूप निरूपणकर्ता जिनेंद्रकूं अर्घं ।

जीवाजीवाद्युपधृतितयाऽऽधारभूतो ह्यनंतो
मध्ये तस्य त्रिभुवनमिदं लोकनाम्ना प्रसिद्धं ।
सर्वेषां स्यादवकाशनदः शून्यमूर्तिर्महांश्चा
काशोऽयं तन्निजगुणगणं वक्ति तं पूजयामि ॥ ८८९ ॥

अर जीव अजीव आदि पदार्थनिकूं धारणपणाकरि आधारभूत अनंत है अर ताके मध्य येह त्रिलोक लोकाकाश नामकरि प्रसिद्ध है अर सबकूं अवकाश देनेवारो अर मूर्तिकरि रहित अर महान् आकाश है अर याका निज गुणने प्रभु कहै है ताने मैं पूज हूं ॥ ८८९ ॥

ओं ह्रीं आकाशपदार्थस्वरूपप्ररूपकजिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं आकाश पदार्थ स्वरूपप्ररूपक जिनेंद्रकूं अर्घं ।

वस्तूद्भूतागुणपरिणामस्यानुभूतेश्च हेतुः
सत्तार्थानां यदुपगमनादेव जातिं विधत्ते ।
सोऽयं कालो व्यवहरणकार्यानुमेयः क्रियायाः
कर्तृत्वादित्यकथयदिनो मुक्तिलक्ष्मीं ददातु ॥ ८९० ॥

वस्तु जे पदार्थ तिनमें प्राप्त अगणित परिणामन अर अनुभूति जो वर्तना ताका कारण अर सकल पदार्थनिकी सत्ता जाका अंगीकारतं ही अपनी जातिने धारण करं हैं सो यो व्यवहार कालकरि कि घटी प्रहर आदि करि अनुमान करने योग्य काल क्रियाका कर्त्तापणातैं है ऐसा कहने वाला प्रभु मोकूं मोक्षलक्ष्मी देवो ॥ ८९० ॥

ओं ह्रीं कालपदार्थस्वरूपप्ररूपकजिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं कालपदार्थस्वरूपकथक जिनेंद्रकूं अर्घ ।

कायस्वांतवचःक्रियापरिणतिर्योगः शुभो वाऽशुभ-
स्तत्कर्मागमनायनं निजयुजो रागद्विषोरुद्भवात् ।
ईर्यामार्गभवौषधद्विविधया तत्संविधिं वेदयन्
जीयाच्छ्रीपतिपूज्यपादकमलस्तीर्थंकरः पुण्यगीः ॥ ८९१ ॥

अर काय मन वचनकी क्रियाकी परिणति सो योग है सो शुभ अर अशुभरूप दोय प्रकार है सो तिस रूप कर्मका आगमन करनेवारा रागद्वेष अपना भावानुकूल प्रगट होनेसे होय है। अरु ईर्यापथिक अर सांपरायरूप है ताकी विधिकूं वेदन करनेवारा अनेक लक्ष्मीका स्वामीनिकरि पूज्य है चरण कमल जाका ऐसा पवित्र वाणीयुक्त तीर्थंकर जयवंते रहो ॥ ८९१ ॥

ओं ह्रीं आश्रवतत्त्वस्वरूपप्ररूपाजनायार्घम् ।
ओं ह्रीं आस्रवतत्त्वका निरूपण करनेवारौ जिनेंद्रकूं अर्घं ।

कषायावृतचेतसान्यविषयं स्वत्वं कृतं तद्विधे-
योग्याः कर्मविभावशक्तिसहिता ये पुद्‌गलाश्चात्मना ।
संश्लिष्टा अवगाहनैक्यमटितास्तत्प्रक्रमो बंधभाक्
तं छित्वा निजशुद्धभावविरतिंप्राप्तः स मे स्तात् गुरुः ॥ ८६२ ॥

अर कषायकरि संयुक्त चित्तवाला पुरुषने अन्य वस्तुमें अपना आपा किया अर तिस कर्मके योग्य अर कर्मनिका विभाव ,परिणत शक्ति देनेवारे पुद्‌गल स्कंध है ते आत्मप्रदेशमें संश्लेष करै है अर एकावगाहरूप एकताने प्राप्त भये तिनिका कर्म है सो बंध नाम भजनेवारौ होय है अर उस बंधका प्रकारकूं छेदि अपना भावनिकी शुद्धिने प्राप्त भयो सो मेरा गुरु होहु ॥ ८६२ ॥

ओं ह्रीं बंधतत्त्वस्वरूपप्ररूपकजिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं बंधतत्त्वका निरूपण करनेवारे जिनेंद्रकूं अर्घं ।

तद्रोधः खलु संवरो निगदितो द्रव्यार्थभेदाद् द्विधा
तद्धेतुर्व्रतगुप्तिधर्मसमितिप्रेक्ष्या चरित्रात्मता ।
मूलं निर्जरणस्य कर्मविततेर्नूत्नागमस्य स्वयं
तद्रूपं कथितं गणेश्वरपुरोभागे स आप्तो मम ॥ ८६३ ॥

अर ता बंधतत्त्वका निश्चयकरि रोकना सो संवर द्रव्य भाव भेदतें दोय भेदरूप कह्यो है अर उस संवरको परम कारण व्रत गुप्ति धर्म अर समिति अनुप्रेक्षाचिंतन चारित्र रूपता है सो हो कर्मसंतानका नवीन आगमनका निजराका मूल है अर गणधरादिकके अग्र याको स्वरूप जानै कह्यो सो आप्त मेरे मान्य है ॥ ८६३ ॥

ओं ह्रीं संवरतत्त्वस्वरूपप्ररूपकजिनायाघम् ।
ओं ह्रीं संवरतत्त्वनिरूपण पर जिनेंद्रकूं अर्घं।

स्वोद्भूतानुभवात्तथा कृततपोवीर्येण तच्छातनाद्
द्वेधा निर्जरणं विसंयमियमिस्वाम्याश्रयेणास्ति यत्।
तद्रूपं समवश्रियां गदितवान् भव्यात्मनां श्रेयसः
संप्राप्त्यै स जिनोऽस्तु मे दुरितसंघ्रातस्य संच्छित्तये ॥ ८९४ ॥

अर आप कर्मका अवधिकरि परिपाक होनेतैं अथवा तपका प्रभावकी शक्तिकरि तिस कर्मको शातन कहिये क्षीणपनो होय तातैं निर्जरा दोय प्रकार है अर्थात् सविपाक अर अविपाक भेदतैं अर ताका संसारीमात्र तथा संयमी स्वामी है अर ताको स्वरूप समवसरणमें भव्यनिकूं मोक्षकी प्राप्तिके अर्थि जो कह्यो सो जिन मेरा पापसमूहका छेदन वास्ते होउ ॥ ८९४ ॥

ओं ह्रीं निर्जरास्वरूपप्ररूपक जिनायाघम् ।
ओं ह्रीं निर्जरास्वरूपनिरूपणसमर्थ जिनेंद्रकूं अर्घं।

मोहस्यात्यंतनाशात् ज्ञपितिदृशिचिदाच्छादकाशेषलोपात्।
प्रत्यूहस्यापि मूलंकषविनशनादात्मशक्तेः प्रकाशात्।
निःसापत्नं ज्वलंतीं परमशिवसुखास्वादसंवेद्यमाना
मुक्तिश्रीर्दिव्यतत्त्वं त्विति सकलजनादेयमुक्तं जिनेंद्रैः ॥ ८९५ ॥

अर मोह कर्मका अत्यंत नाशतैं अर ज्ञानावरण दर्शनावरणका समस्तपणाकरि लोपतैं अर अंतरायकर्मका मूलनाशतैं आत्मशक्तिको प्रकाश भयो तातैं निःसपत्न स्वभावनें जाज्वल्यमान करती अर परम मोक्षसुखका आस्वादकरि जानिवे योग्य ऐसी मुक्तिरूपी श्री है सो दिव्य-तत्त्व है ऐसा सकल ही मनुष्यनिकैं ग्रहण करन योग्य श्री जिनेंद्रदेवने कह्यो है ॥ ८९५ ॥

ओं ह्रीं मोक्षतत्त्वस्वरूपनिरूपकाय जिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं मोक्षतत्त्वका निरूपण कर्ता जिनेंद्रकूं अघ ।

देवोऽर्हन् सकलामयव्यपगतो दृष्टेष्टवाग्देशको
भव्यैर्द्धगतरागदोषकलनो मोक्षार्थिभिः श्रेयसे ।
आश्रयः परिसेवनीय उदितज्ञानप्रभौघः स्वयं
शास्ता सर्वहितः प्रमाणपटुभिर्ध्येयो जिनः पातु नः ॥ ८९६ ॥

अर्हंत देव है सो ही देव है, समस्त पापरूप रोगरहित अर प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि अबाधित उपदेशका दाता है अर रागद्वेषकी कलिता-रहित अर महाभाग भव्यनिकरि मोक्षके अभिलाषीनिकरि आत्मकल्याणके अर्थि आश्रय करने योग्य है अर सेवनीय है अर प्रगट भयी ज्ञानकी प्रभाका धारी है अर स्वयं उपदेशक सर्व हितकारी है सो ही प्रमाण नातिधारी पुरुषनिकरि ध्यान करिवे योग्य ऐसा आप्त जिन हमारी रक्षा करौ ॥ ८९६ ॥

ओं ह्रीं आत्मस्वरूपप्ररूपक जिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं आप्तस्वरूप निरूपक जिनेंद्रकूं अर्घ ।

रागद्वेषकलंकपंककणिकाहीनो विसंवादको
निर्वांछो हितदेशनो व्रतगुणग्रामाग्रगण्यः प्रभुः ।
अस्माकं भवपद्धतावनुसरद्बाधार्दितानां महा-
नाराध्यः प्रियकारको गुरुरयं प्रोक्तो जिनेन त्वया ॥ ८९७ ॥

अर रागद्वेषरूप कलंकपंककी कणिकाकरि रहित अर विसंवादकूं नही करनेवारा अर वांछाकरि रहित अर हित उपदेशका दाता अर गुणनिका अर व्रतनिका समूहमैं अग्रगामी अर प्रभु अर संसारमार्गमें अनुसरण करनेवारे हमारेकूं भवातापबाधा मेटिवेकूं आराधन योग्य है ऐसा हे जिनेंद्र तेने प्रियकारक गुरु कह्या है ॥ ८९७ ॥

ओं ह्रीं गुरुस्वरूपप्ररूपकजिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं गुरुस्वरूपनिरूपक जिनेंद्रकूं अर्घं ।

यत्रामूलमनूनमन्यजडतापीडोत्कथाप्रच्युति-

यंत्र श्रेयसि दीपिकेव सरणिः प्राकाश्यमास्कंदते ।

विश्वप्रोतमहार्तिमोहमदिरानिर्भर्त्सनं सद्गुणा-

श्लेषावाप्तिरयं जिनवरैर्गीतो वृषोऽस्तु श्रिये ॥ ८९८ ॥

अर जहां निश्चयकरि मूलसें ही अन्य प्राणीमात्रकी पीडाकी कुकथाका अभाव है अर जहां कल्याण मार्गमें दीपकके समान मार्ग प्रकाशमान होय है अर जहां संसार प्राप्त महान् आर्तिरूप मोहमदिराका ताडन है अर समीचीन गुणप्राप्ति है सो धर्म मोक्षकी लक्ष्मी अर्थि जिनेंद्रदेवने कह्यो है ॥ ८९८ ॥

ओं ह्रीं धर्मस्वरूपप्ररूपकजिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं धर्मस्वरूपनिरूपक जिनेंद्रकूं अर्घं देना ।

शब्दावाच्यमवस्त्वनादिकृतसंकेतेन वस्तुग्रहः

केनापि ध्वनिना भवत्यथ स वै संजायते मातृकृत् ।

सोऽपेक्षासहितो ह्यनेकगुणतस्ता एव तस्मात् स्थितं-

वस्तु स्यात्पदसंस्कृतं तदुदयन् स्याद्वाद एवार्हतः ॥ ८९९ ॥

अर शब्दकरि नहीं कहनेमें आवै सो अवस्तु है अर्थात् वस्तुमात्र है सो कोई शब्दकरि कहनेमें आवै है अर शब्दकरि नहीं कथित होय, सो वस्तु ही नहीं अर ता वस्तुको अनादिकाल संकेत है ताकरि कोई शब्दकरि ग्रहण होय है सो ग्रहण प्रमाता ज्यो प्रमाण करनेवारा ताका

किया होय है, क्यूं कि वो प्रमाता अपेक्षा सहित है अर वे अपेक्षा अनेक गुणतैं उत्पन्न होती है तातैं ऐसा स्थित भया कि वस्तु है सो अनेकांत-रूप स्यात्पदकार संस्कारने प्राप्त हूवाकूं प्रगटकर्ता स्याद्वाद ही अर्हंतका मत है ॥ ८९९ ॥

ओं ह्रीं नमोऽर्हते भगवते स्याद्वादस्वरूपनिरूपकाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं स्याद्वादरूपका निरूपणकर्ता जिनेंद्रकूं अर्घं ।

तीर्थेशां भरतेशिनां हलजुषां नारायणानां ततः

शत्रूणां त्रिपुरद्विषां च महतां सद्भाग्यसंशालिनां ।

पुण्यापुण्यचरित्रमत्र निहितं पूर्वानुयोगं विदन्

दृष्टांतप्रतिपत्तिदं जिनपतिः प्रारब्धवान् शासनं ॥ ९०० ॥

बहुरि तीर्थंकराको अर चक्रवर्तीनिको और वासुदेव बलभद्र प्रतिनारायणनिको अर रुद्र कामदेव आदि समीचीन भाग्यशाली पुण्यवान् महान् पुरुषोंको पुण्य पापको चारित्र जा विषै निरूपण कियो होय सो दृष्टांतमात्र कहनेवारो प्रथमानुयोग है अर जाननेवारो जिनेंद्रदेव शासन रच्यो है ॥ ९०० ॥

ओं ह्रीं प्रथमानुयोगस्वरूपप्ररूपकाय जिनायार्घम् ।

ओं ह्रीं प्रथमानुयोगनिरूपक जिनेंद्रके अर्थि अर्घ ।

संस्थानायामसंख्यागणितमसुभृतां मार्गणास्थानतज्ज-

कर्मोदीर्णोदयादिप्रकथनमधिपो वर्णयामास सम्यक् ।

लोकालोकोक्तभेदे नरकसुरमनुष्यादिसंस्थित्युदंत-

वृत्ति त्वाख्यानमेतत्करणगमनुयोगं प्रकाश्य स्वयंभूः (?) ॥ ९०१ ॥

अर लोकका संस्थान चौडाई संख्याकी गणना है अर प्राणीनिका मार्गणा स्थान अर तातैं उत्पन्न कर्मका उदय उदीर्ण कथन जामें होय

ताकूं जिनेंद्र लोकालोक भेदमें नरक स्वर्ग मनुष्य आदिकी स्थिति वृत्तांत प्रवृत्तिको आख्यान येह करणानुयोगने प्रकाशकरि स्वयंभू आप वर्णन करतौ भयो ॥ ९०१ ॥

ओं ह्रीं करणानुयोगवेदप्रकाशकजिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं करणानुयोग स्वरूपनिरूपक जिनेंद्रकूं अर्घ ।

शीलानां संयमानां व्रतसमितिचरित्रादिसाध्वर्हितानां
सागारार्थोक्तकर्मावधृतविरमणस्थूलधर्मक्रियाणां ।
तत्तत्स्थानोक्तबुद्ध्यं निजनिजहृदयोद्भूततत्त्वं निरूप्य
कर्तव्यत्वोपदेशो यदवधिचरणाख्यानमुक्तं जिनेन ॥ ९०२ ॥

अर शीलसप्तक अर संयम अर व्रत समिति चारित्र आदि साधु पुरुषनिकरि अर्हित कहिये पूजित आचारनिको अरु श्रावकके अर्थयुक्त जे कर्म तिनिकरि निश्चत है विरागभाव जिनमें ऐसी स्थूल धर्म आचरणक्रियाको तहां तहां स्थानमें उक्त अर बुद्ध जैसैं होय तैसैं अपना अपना अभिप्रायको रहस्यने प्रगटकरि कर्तव्यताको उपदेश जिसमें होय सो चरणानुयोगवेद जिनेंद्रने कह्यो है ॥ ९०२ ॥

ओं ह्रीं चरणानुयोगवेदप्रकाशकजिनायार्घम् ।
ओं ह्रीं चरणानुयोग स्वरूपका निरूपणतत्पर जिनेंद्रकूं अर्घं ।

षट्द्रव्यस्वस्वरूपाण्यथ नयघटता तत्प्रमाणस्वरूपं
नामस्थापादिकृत्यं तदधिकरणभिसूतत्वं संस्थापनादि ।
मेयामेयव्यवस्था यदवधिसमिता यत्र षड्भंगवाणी
द्रव्याख्यानं निरूप्य प्रथममभिहितं मोक्षमार्गं जिनेन ॥ ९०३ ॥

अर षट्द्रव्यका निजस्वरूपको अथवा नयनिकी घटना अर प्रमाणका स्वरूप नाम स्थापनादि कार्य सत्संख्याधिकरण भेदरूपतत्त्वको स्थाप-

नादिको तथा प्रमाणकी व्यवस्था जहां अवधिमें प्राप्त ऐसी सप्तभंगवाणी है सो द्रव्यानुयोग व्याख्यान निरूपणकरि प्रथम मोक्षमार्ग जिननै अभिधान कियो है।

ओं ह्रीं द्रव्यानुयोगवेदस्वरूपप्रकाशकाय जिनायार्घम्।
ओं ह्री द्रव्यानुयोग निरूपण समर्थ जिनेंद्रकूं अर्घ।

श्रीमंस्त्वद्भक्तिभारप्रविनतशिरसः केचिदिच्छंति मुक्तिं
ते सद्यः साधुदीक्षाप्रणयनपटवस्त्वत्प्रसादावलंबात्।
केचिद्युच्छंति धर्मं गृहपतिनिरुतं रुद्रमार्गावरूढं
स्वामिन् हस्तावलंबं कुरु शरणागतान् रक्ष रक्षेशनाथ ॥ ९०४ ॥

अर हे श्री भगवान्! तेरी भक्तिका भारकरि नमायो है शिर जिननै ऐसे कितनेक भव्य मुक्तिकी इच्छा करै हैं ते भव्य तत्काल ही तें उपदेशका आलंवनतैं मुनिदीक्षाका साधनमें प्रवीण होय हैं। अर कितनेक भव्य गृहस्थमें युक्त अर ग्यारा प्रतिमामें आरूढ ऐसा धर्मने बां है। तातें हे स्वामिन् तुम ही संसारमें डूबते प्राणीनिकूं हस्तका अवलंबन देउ अर शरण प्राप्त भये है तिनकूं हे ईश! हे नाथ! रक्षा करहु रक्षा करहु ॥ ९०४ ॥

ओं ह्री मुनिश्रावकधर्मोपदेशकजिनायार्घम्।
ओं ह्री मुनिश्रावकरूप द्विविधधर्मप्ररूपक जिनेंद्रके अर्थि अर्घं।

एवमिंद्रः समागत्य स्तुतिमालार्चितक्रमं।
ईशं नत्वा विहारार्थं प्रस्तावमकरोत्सुधीः ॥ ९०५ ॥

अथ सुबुद्धि इंद्र महाराजा ऐसैं आगमनकरि अनेक स्तुतिनिकी मालाकरि पूजित है चरणारविंद जाका ऐसा श्रीभगवानने नमस्कारकरि विहारक्रियाकी प्रस्तावनानै करतौ भयौ ॥ ९०५ ॥

ततः जिनेंद्रवित्रं किंचित्प्रचाल्य विहारक्रम, उद्देश्यः।

ऐसैं समवसरण पूजाका निष्ठापन करै ।

इत्युक्त्वा पुष्पांजलिं समुत्क्षिप्य समवशरणस्याभितो वस्त्रयवनिकां दत्त्वा पूजां समापयेत् ।

ऐसें कहि समवसरणके चौतर्फा पुष्पांजलि क्षेपि वस्त्रकी पडदानें देकरि समवसरणकी समाप्ति कर । तब जिनेंद्रका बिंबनै किंचित् प्रचालि विहारक्रम दिखाना ।

इच्छाविरहितस्यापि भव्यपुण्योदयेरितः ।
विहारमकरोद् देशानार्यान् धर्मोपदेशयन् ॥ ९०६ ॥

अर सो इंद्र इच्छारहित भी अर्हंतके भव्यपुण्यानुसारि विहार देश देश प्रतिकरि आर्य जे भव्य हैं तिनिनै धर्मको उपदेश करावतो भयो ॥ ९०६ ॥

सो ही कहै हैं—

तथाहि—

काश्यां काश्मीरदेशे कुरुषु च मगधे कौशले कामरूपे
कच्छे काले कलिंगे जनपदमहिते जांगलांते कुरादौ ।
किष्किंधे मल्लदेशे सुकृतिजनमनस्तोषदे धर्मवृष्टिं
कुर्वन् शास्ता जिनेंद्रो विहरति नियतं तं यजेऽहं त्रिकालं ॥ ९०७ ॥

काशी देशमें, काश्मीर देशमें, कुरु देशमें, अर मगधमें, तथा कोशलमें, कामरूप देशमें, कच्छ देशमें, कालदेशमें, कलिंगदेशमें, अर नगरनि करि पूजित कुरुजांगल देशमें, तथा किष्किंधमें अर पुण्यवान पुरुषनिका मनकूं तोष देनेवारा मलय देशमें वह शास्ता शिक्षा करनेवारो धर्मवृष्टिने करतो विहार करै हैं ताकूं निश्चय मैं त्रिकाल पूजूं हूं ॥ ९०७ ॥

पांचाले केरले वाऽमृतपदमिहिरोमंद्रचेदीदशार्ण-

वंगांगांधोलिकोशीनरमलयविदर्भेषु गौडे सुसह्ये ।
शीतांशुरश्मिजालादमृतमिव समां धर्मपीयूषधारां
सिंचन् योगाभिरामा परिणमयति च स्वांतशुद्धिं जनानां ॥ ६०८ ॥

तथा पंचाल देशमें, केरल देशमें, मोक्षरूपमार्गमें सूर्य समान जिनेंद्र है सो मंद्र देश, चेदि देश, दशार्ण देश, वंग देश, अंग देश, अंध्रदेश, उलिक देश, उसीनर देश, मलय देश, विदर्भ देशमें तथा गौड देश, सह्य देशमें चंद्रमा अपने किरण समूहतैं अमृत जैसै समान धर्म रूप अमृत-धाराने सींचतो अर मनुष्यनिकी योग जो चितानिरोध ताकरि सुंदर अपना हृदय शुद्धिने परिणमावै है ॥ ६०८ ॥

पुंनाटचौलविषयेऽपि च मौंड्रदेशे सौराष्ट्रमध्यमकलिंदकिरातकादौ।
सुयोग्ये सुदेशमहिते सुविहृत्य धर्मचक्रेण मोहविजयं कृतवान् जनानां ॥ ६०९ ॥

अर पुंनाट चौल देशमें तथा मौड्र देशमें सोराष्ट्रमें मध्यदेशमें कलिंग देश किरात देशमें ऐसे योग्य देश पूजितमें विहारकरि धर्मचक्रकरि मनुष्यनिका मोहका विजयने करतो भयो ॥ ६०९ ॥

ओं ह्री नमोर्हते भगवते विहारावस्थाप्राप्तायदेशे धर्मोपदेशेनोद्धर्त्रे जिनायाघम् ।

ओं ह्रीं अर्हत्देवके अर्थि नमस्कार होहु । भगवान विहारावस्था प्राप्तके अर्थि अर धर्मका उपदेशकरि उद्धार करते जिनेंद्रके अर्थि अर्घ देना।

शुभेह्नि पुनरन्यत्र स्थापयेत्प्रतिमां विभोः ।
इमं योगनिरोधस्य प्रक्रमं स्थापयेच्छुभं ॥ ६१० ॥

ऐसैं शुभ दिनमें भगवानकी प्रतिमाकूं मंडलमेंसे उठाय और जगै स्थापन करना। यो ही योगनिरोधका क्रमनै शुभ जैसै होय तैसे स्थापन करै ॥ ६१० ॥

ओं ह्री शुक्लध्यानविरताय जिनाय पूर्णार्घम् ।
ओं ह्रीं द्वितीयशुक्लध्यानिरत जिनेंद्रके अर्थि पूर्णार्घ देना ।

ततो महार्घेण सुवाद्यघोषपुरस्सरेण त्रिकलोकभर्त्तुः ।
महामहं कुर्युरनर्घ्यपात्रार्पितेन शांतिं प्रपठेयुरिष्टाम् ॥ ६११ ॥

तदनंतर सुंदर वादित्रका शब्द पुरस्सर सुवर्णादि पात्रमें स्थापित महामह अर्घ करि त्रिलोकनाथका परम उत्सव करै अर शांति पाठ पढै, इष्टसिद्धि कर ॥ ६११ ॥

ओं ह्रीं सकलयज्ञाधिकृतजिनदेवगुरुश्रुतादिसकलदेवताभ्योऽर्घम् ।

अत्र प्रतिष्ठासमाप्तौ आचार्यवासवयजमानैः कायोत्सर्गपूर्वकं भक्तिपाठः विधेयाः । निर्वाणभक्तिरेव निर्वाणकल्याणारोपणं । साक्षात्तु न विधेयं स्मरणीयमेवेति दिक ।

ओं ह्रीं सकलयज्ञमें आहूत जिनमुनि श्रुत आदि सकल देवताके अर्थि अर्घ ।

अब इहां प्रतिष्ठा विधिकी समाप्तिमें आचार्य, इंद्र, यजमान येह तीन्यू कायोत्सर्ग पूर्वक पूर्वोक्त भक्तिपाठ करने योग्य हैं। अर पंचकल्याणमें च्यारि कल्याण तो विधानसंयुक्त किया अर पंचमकल्याण मोक्षकल्याण है सो निर्वाण भक्तिपाठमात्र ही आरोपण करना, साक्षात् विधान नहीं करना, स्मरणमात्र ही है, ऐसा अनिर्वाच्य समझि लेना ।

नित्यपूजाविधानार्थं स्थापयेन्मंदिरे नवे ।
पुराणे वा तत्र भांडागारे संस्थापयेद्‌ धनं ॥ ६१२ ॥

ग्रामहट्टक्रयेणैव निर्दोषेण विधीयताम् ।
पूजाकृत्यं सेवकादिपालनं साधुतर्पणं ॥ ६१३ ॥

रथयात्रां पुराकृत्वाऽभिषेकमहनीयतां ।
संपाद्य संघसद्भक्तिं कुर्वीत याजकोत्तमः ॥ ६१४ ॥

अर रथयात्रा पहलीकरि अभिषेकको उत्सव संपादनकरि संघकी वैयावृत्ति यजमान करै ॥ ६१४ ॥

जिनांह्रिस्पर्शसत्पूतामाशिषं परिगृह्य च ।

आचार्यं पूजयेद् भक्त्या यथायोग्योपचारतः ॥ ९१५ ॥

पीछें जिनेंद्रका चरण स्पर्शतें पवित्र पुष्पाशिपमालाने ग्रहण करै अर आचार्यने भक्तिसेती पूजैं यथायोग्य उपचारसैं ॥ ९१५ ॥

सर्वे येऽपि समाहूता जिनयज्ञमहोत्सवे ।
तान्सर्वान् संविसृज्येत भक्तिनम्रशिराः पुनः ॥ ९१६ ॥

अर सर्वजन श्रीयज्ञविधानमें आहूत हैं तिनकूं विसर्जन करै अर भक्तिकरि अपना मस्तककूं नमावै ॥ ९१६ ॥

स्वस्ति स्ताज्जिनशासनाय महतां पुण्यात्मनां पंक्तये
राज्ञे स्वस्ति चतुर्विधाय वृहते संघाय यज्ञाय च ।
सद्धर्माय सधर्मिणेऽस्तु सुकृतांभोवृष्टिरस्तु क्षणं
माभूयादशुभेक्षणं शुभयुजां भूयात्पुनर्दर्शनं ॥ ९१७ ॥

येह जिनेंद्र मत है याके अर्थि कल्याण होहु अर महान् पुण्याधिकारी जनकी पंक्तिके अर्थि कल्याण होहु, अर देशका प्रतिपालक राजाके अर्थि कल्याण होहु अर च्यारि प्रकार मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकारूप संघके वास्तै कल्याण होहु अर यज्ञके अर्थि अर समीचीन धर्मके अर्थि अर साधर्मी जनोंके अर्थि कल्याण होहु अर पुण्यरूप मेघकी वृष्टि होहु अर क्षणमात्र भी अशुभ पदार्थोंका दर्शन मति होहु, शुभका योग-को पुनः कहिये वारंवार दर्शन होहु ॥ ९१७ ॥

शास्त्रान्नभैषजसभीतिरिति प्रदानं पात्राय सद्वृषयुजे नितरां ममास्तु ।
यस्मिन् क्षणे भवति तत्पुनरंतदेव सार्थं स्मरामि न पुनस्तदयोगजातं ॥ ९१८ ॥

अर प्रतिष्ठा करावनेवारा च्यारि प्रकार दान भी निश्चित करै है सो येह है—शास्त्र दान, अन्न दान, औषध दान, अभय दान । येह च्यारि प्रकार मुख्य दान है सो समीचीन धर्मका धारी पात्रके अर्थि नित्य मेरे होहु । अर जा क्षणमें येह दान होय तिस ही क्षणमें येह समूह-नै मै स्मरण करू हूं बहुरि इनका अयोग कहिये नहीं होना मात्रकूं नहीं स्मरण करू हूं ॥ ९१८ ॥

सिद्धप्रतिष्ठा यदि तत्र योगसंरोधनं पूज्यचतुर्घनानि ।

कर्माणि संयोज्य चतुःप्रदीपानुत्तारयेत्तत्र शिवोर्ध्वगंतॄन् ॥ ९१९ ॥

अर जब सिद्धविंब प्रतिष्ठा करनी होय तहां योग निरोधताईं पूजाकरि चतुःप्रकार घन घातिकर्म वेदनीय गोत्र नाम आयु इनका संयोगकरि उतारै अर शिव कहिये मोक्षमें ऊर्ध्वगमन करनेवारे करै अर्थात समानकाल निर्वाण करै ॥ ९१९ ॥

पंचलघ्वच्चारणमात्रमयोगपंथानमाशु विनियुंज्यात् ।

तत्रैकसमय एव सिद्धत्वं प्राप्य तत्र भासंति ॥ ९२० ॥

अरु पीछे पंच लघु अक्षरका उच्चारणमात्रकाल अयोगमार्गनै नियोगरूपकरि एक समयमें ही सिद्धपणाने प्राप्त होय तहां भासमान होय है ॥ ९२० ॥

तत्राष्टगुणानां पूजा कार्या सम्यक्त्वमुख्यसुविधीनां ।

अन्यो विधिर्विधेयस्तावानेवात्र गुरुकुलाद् बुद्ध्वा ॥ ९२१ ॥

तहां आठ गुण जो सम्यक्त्वणादि विधिकी पूजा करै, अन्यविधि गुरुतैं उपदिष्ट होय सो करै ॥ ९२१ ॥

पूजाकर्मविधूननाय मदवेदेंदुप्रकृत्यस्तकृद्-

यंत्रे मंडलमालिखेद् वसुदलान्वीते पृथक् शासनं ।

संयोज्यामरनायकान् शिवपदप्रासान् यजेत्तद्गुणा-

नेवं युक्तिविशारदेन पटुना कार्यो विधिर्भूयशः ॥ ९२२ ॥

अर अष्ट कर्मनिका छेदन अर्थि एक सौ अडचालीस कर्म प्रकृतिका अस्त करनेवारे यंत्र मंडलमें अष्टकोष्ठकयुक्तमें शासन कहिये स्याद्वादवाणीने संयोजनकरि अर सिद्ध परमेष्ठीने यजन करै अर शिवमें प्राप्त जो अनंतगुण तिनमें मुख्य गुणनिनैं पूजै ऐसैं युक्तिमें चतुर प्रवीण आचार्यने बहु प्रकार विधि करना योग्य है ॥ ९२२ ॥

अथ प्रशस्तिः ।

कुंदकुंदाग्रशिष्येण जयसेनेन निर्मितः ।
पाठोऽयं सुधियां सम्यक् कर्तव्यायास्तु योगतः ॥ ९२३ ॥

अर आचार्य गुरुपरिपाटी कहै है—कि मैं कुंद कुंद नाम महान् मुनिवरका पट्टधारी शिष्य जयसेन नामकने रचा ऐसा येह पाठ सम्यग्बुद्धिधारीनिके योगसें करने योग्य है ॥ ९२३ ॥

श्रीदक्षिणे कुंकुणनाम्नि देशे सह्याद्रिणा संगतसीम्नि पूते ।
श्रीरत्नभूध्रोपरिदीर्घचैत्यं लालाट्टराज्ञा विधिनोर्जितं यत् ॥ ९२४ ॥

श्रीमान् दक्षिण दिशामें कुंकुण नाम देशमें सह्याचलकरि समीप सीमावारा पवित्र श्रीरत्नगिरि ऊपरि जिनेंद्र चंद्रप्रभका वड़ा उन्नत चैत्यालय लालाट्ट नाम राजाका वणाया हुआ है ॥ ९२४ ॥

तत्कार्यमुद्दिश्य गुरोरनुज्ञामादाय कोलापुरवासिहर्षात् ।
दिनद्वये संलिखितः प्रतिज्ञापूर्त्यर्थमेवं श्रुतसंविधत्ति ॥ ९२५ ॥

अर वहां प्रतिष्ठा होनेका उद्देशकरि गुरु जो कुंदकुंद स्वामी तिनिकी आज्ञा पाय कोल्हापुर नगरमें रहनेवाले राजाका हर्षतें प्रतिज्ञा परिपूर्ति निमित्त इस शास्त्रका रचनेका विधान है ॥ ९२५ ॥

वसुविंदुरिति प्राहुस्तदादि गुरवो यतः ।
जयसेनापराख्यामां तन्नमोऽस्तु हितर्षिणां ॥ ९२६ ॥

उस दिनसें गुरुजन मोकूं 'वसुविंदु' अर्थात् वसु जो अष्टकर्म तिनकूं विंदु देनेवारा कि छेदन करनेवारा नामयुक्त किया । जयसेन प्राचीन नाम है, यामै हितके वांछक पुरुषनके भ्रम मत होहु ॥ ९२६ ॥

इति श्रीमत्कुंदकुंदपट्टोदयभूधरदिवामणि श्रीजयसेनाचार्यविरचितः प्रतिष्ठासारः संपूर्तिमपीफणत् । ऐं ह्रीं स्याद्वादनायकाय नमः ।

इति श्री कुंदकुंद आचार्यका पट्टरूप उदयाचल पर सूर्य समान वसुविंदु नाम आचार्यकृत प्रतिष्ठापाठकी वचनिका संपूर्ण भई ॥ सर्वसंघके अर्थि मंगल होहु ।

॥ समाप्त ॥